माणिकचन्द्रदिगम्बरजैनग्रन्थमाला, प्रथम पुष्प।

लघीयस्त्रयादिसंग्रहः।

अर्थात्

१ भट्टाकलङ्कदेवकृतं लघीयस्त्रयम्

अनन्तकीर्तिरचिततात्पर्यवृत्तिसहितम्,

२ भट्टाकलङ्कदेवकृतं स्वरूपसम्बोधनम्,

३-४ अनन्तकीर्तिकृतलघुबृहत्सर्वज्ञसिद्धी च।

पण्डित कल्लापा भरमाप्पा निटवे

इत्यनेन संशोधितः।

प्रकाशिका—

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थमालासमितिः।

श्रीवीर नि० संवत् २४४२।

विक्रमाब्द १९७२।

printed by :—

Ratan Parkhi and Co. Art Press Bombay only Cover page.

Kallapa Bharmapa Nitve at the Jainendra Press, Kolhapur–
from page No. 1 to 204,

Crishnarao Sakharam Patker, at .the LaxmiNarayan Press,
Bombay, the remaining.

Published by Nathuram Premi Honorary Secretary
Manickchandra D. Jain Granth Mala
Hirabag Near C. P. Tank Bombay,

निवेदन।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचन्दजी जे. पी. के कृती नामको स्मरण रखनेके लिए कौनसा कार्य किया जाय, जिस समय इस विषयपर विचार किया गया उस समय यही निश्चय किया गया कि उनके नामसे एक ग्रंथमाला निकाली जाय जिसमें संस्कृत और प्राकृतके प्राचीन ग्रन्थोंके प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया जाय। ग्रन्थोंका प्रकाशित करना और उनका प्रचार करना, यह सेठजीका बहुत ही प्यारा कार्य था, अतएव उनके स्मारकमें भी यही कार्य किया जाना सबने पसन्द किया और तदनुसार स्मारकफण्डकमेटीकी सम्मतिसे यह कार्य शुरू कर दिया गया। कमेटीने इस कार्यके लिए एक स्वतंत्र समिति भी बना दी जिसकी अनुमतिसे ग्रन्थोंका चुनाव, आमद खर्चकी व्यवस्था आदि कार्य सम्पादित होते हैं।

ग्रन्थमालाके दो अंक लघीयस्त्रयादिसंग्रह और सागारधर्मामृत एक साथ ही प्रकाशित किये जाते हैं। आगेके लिए कवि हस्तिमल्लकृत **विक्रांत-कौरवीयनाटक**, और महाकवि वादिराजसूरिकृत '**पार्श्वनाथचरित**' ये दो ग्रंथ तैयार कराये जा रहे हैं जो सम्भवतः दो दो महीनेके अंतरसे प्रकाशित हो जायँगे।

ग्रंथमालाका प्रत्येक ग्रंथ लागतके मूल्यपर बेचा जायगा, यह निश्चय हो चुका है, इसलिए यह आशा नहीं कि ग्रन्थमालामें कुछ मुनाफा रहेगा जिसके द्वारा यह कार्य स्थायीरूपमें चलता रहेगा। इसके सिवाय इसका फण्ड भी इतना नहीं है जिसके व्याजसे इसका खर्च चलता रहे, अतएव धर्मात्मा भाइयोंको चाहिये कि एक तो ग्रंथमालाके फण्डको बढ़ानेका प्रयत्न करें और दूसरे इसके द्वारा प्रकाशीत हुए ग्रन्थोंकी सौ सौ पचास

पचास, या कमसे कम दश दश पाँच पाँच प्रतियाँ खरीदकर जैनसंस्था-ओंको, विद्यार्थियोंको, निर्धनोंको और अन्यधर्मी विद्वानोंको दान कर दिया करें। यदि जैनसमाजके धर्मात्माओंने इस ओर ध्यान दिया, तो हम विश्वास दिलाते हैं कि इस संस्थाके द्वारा सैकड़ों लुप्तप्राय और दुर्लभ जैनग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा और विश्वसाहित्यमें जैनसाहित्य भी एक गणनीय साहित्य समझा जाने लगेगा।

हीराबाग, बम्बई।
कार्तिक वदी २
सं० १९७२

विनीत—
नाथूरामप्रेमी।
(अवैतनिक मंत्री)

ग्रन्थसूची ।

माणिकचन्ददिगम्बर-जैनग्रन्थमालाकी

नियमावली।

१. इस ग्रन्थमालामें केवल दिगम्बर जैन सम्प्रदायके संस्कृत और प्राकृत भाषाके प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित होंगे। यदि कमेटी उचित समझेगी तो कभी कोई देशभाषाका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित कर सकेगी।

२. इसमें जितने ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उनका मूल्य लागत मात्र रक्खा जायगा। लगतमें ग्रन्थ सम्पादन कराई, संशोधन कराई, छपाई, बँधवाई आदिके सिवाय आफ़िस खर्च, व्याज और कमीशन भी शामिल समझा जायगा।

३. यदि कोई धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी तैयार कराईमें जो खर्च पड़ा है वह, अथवा उसका तीन चतुर्थांश, सहायतामें देंगे तो उनके नामका स्मरणपत्र और यदि वे चाहेंगे तो उनका फोटू भी उस ग्रन्थकी तमाम प्रतियोंमें लगा दिया जायगा। जो महाशय इससे कम सहायता करेंगे उनका भी नाम आदि यथायोग्य छपवा दिया जायगा।

४. यदि सहायता करनेवाले महाशय चाहेंगे तो उनकी इच्छानुसार कुछ प्रतियाँ जिनकी संख्या सहायताके मूल्यसे अधिक न होगी मुफ्तमें वितरण करनेके लिए दे दी जायंगीं।

५. इसमें ग्रन्थमालाकी कमेटीद्वारा चुने हुए ग्रन्थ ही प्रकाशित होंगे।

पत्रव्यवहार करनेका पता--

नाथूराम प्रेमी,
हीराबाग, पो० गिरगांव; बम्बई।

माणिकचन्द-दिगम्बर-जैनग्रन्थ-माला समिति

(प्रबन्धकारिणी सभाके सभ्य)

स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द हीराचन्दजी जे. पी. के स्मारक फंडमें।

चन्दा देनेवालोंकी सूची।

[जिन नामोंके साथ * चिह्न लगा है, उनका चन्दा वसूल नहीं हुआ है।]

१००१) श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजी दानवीर
५०१) गुरमुखराय सुखानन्दजी
२५१) गुरमुखराय निहालचन्दजी
२५१) नाथारंगजी गांधी
२०१) अनूपचन्द माणिकचन्दजी
१०१) खेमचन्द मोतीचन्दजी
१०१) हीराचन्द नेमचन्दजी, शोलापुर
१०१) रेवचन्द धनजी, गुँजोटीवाला, शोलापुर
१०१) *कीकाभाई किशनदास
१०१) सूरजमल लल्लूभाई जवेरी
५१) चुन्नीलाल हेमचन्द जरीवाला
५१) प्रेमानन्ददास नारायणदास, बोरसदवाला
५१) ठाकुरदास भगवानदास जौहरी
५१) रेवाशंकर जगजीवनदास जौहरी
५१) लल्लूभाई लखमीचन्द चौकसी
५१) *भागमलजी प्रभुदयालजी
५१) पदमचन्दजी भूरामल
५१) डाह्याभाई प्रेमचन्द जवेरी
५१) देवजी रायसी
५१) दोसी जयचन्द मानचन्द पूनावाला
२५) छगनलाल धनजी, भावनगरवाला

२५) *माणिकचन्द लाभचन्द चौकसी
२५) ताराचन्द दामोदरदास
२९) मुकतागिरि नारायण पेन्टर
२५) अमथालाल खीमचन्द , पाडनाकुवा
२१) छगनलाल वेचरदास, मालावाडा
२१) चुनीलाल कालीदास, उजेडिया
२१) मिस्त्री लल्लू खुशाल, वीसनगर
१५) माणिकलाल जकसी जवेरी
१५) जसकरन मयाचन्द मेहता
१५) वैद्य मरमन्ना वमन्ना उपाध्याय
१५) हीरालाल निहालचन्द मोदी
१५) जैसिंहभाई हरजीवनदास, अहमदाबाद
१५) *उगरचन्द रेवाचन्द शीवनाला
१५) नगीनदास माणिकलाल
१५) हीराचन्द उगरचन्द, फतेपुर
१५) रिखबदास मन्नालाल,
१५) उगरचन्द रायचन्द, पाटनाकुवा
१५) मास्टर मगनलाल दामोदरदास दी. गु.जैन.बो.सुपरिन्टेन्ड
११) *उत्तमचन्द रिखवचन्द, अंकलेश्वरवाला
११) त्रिभुवनदास रणछोड़दास
११) चिरंजीलाल मथुरावाला
११) अमीचन्द दलीचन्द सीववाला
११) अमृतलाल गुलाबचन्द परताबगढ़वाला
११) *कस्तूरचन्द छावड़ा इन्दोरवाला
११) घासीराम लखमीचन्द, सनावद
११) कालीदास अमरसी, सेर दलाल

११) केशवलाल वच्छराज जवेरी
११) कस्तूरचन्द अमूलक नरोड़ावाला
११) रामचन्द मोतीचन्द, कडेगांव.
११) जीवनलाल जेठालाल, सोनासणवाला
११) नारायणदास रणछोड़दास, मालवाड़ावाला
११) जेसिंगभाई मंछाचंद जवेरी
१०) जसकरण गोदर
११) पंडित लालन
११) तलकचन्द सखाराम जवेरी
५) भाऊ रामचन्द कवाल
५) दुलीचन्दजी सिंघई, क्लर्क तीर्थक्षेत्रकमेटी
५) अमृतलाल विट्ठलदास धामी
५) माणिकचन्द रायचन्द ओराणवाला
५) चुन्नीलाल जयचन्द वदराडवाला
५) चुन्नीलाल माणिकचन्द, फतेपुरवाला
५) जगमोहन चुन्नीलाल
५) हेमचन्द हरखचन्द ईडरवाला
३) *नारायणराव इन्स्पेक्टर, तीर्थक्षेत्रकमेटी
२) कस्तूरचन्द बेचरदास
१) सेठ बापू पूनाजी
५) त्रेलाभाई नरपत दानावाला, हीराबाग
१५) कालीदास जेसिंगभाई
५१) चुन्नीलाल जवेरचन्द जवेरी
६) शा जीवराज वनमालीदास, नरोड़ा
५) शिवलाल धर्मचन्द, नरोड़ावाला
५) छगनलाल गंगादास

२५) दूदू हरीचन्द रेवाजी, फलटन
१) कचरादास कालीदास, देलवाड़वाला
१५) बाई जीवकोर, स्वर्गीय प्राणलाल हलोचन्दकी विधवा।
११) रामचद्र त्रिभुवन, घोघा
२) वखरिया जमुनादास कुवेरदास
४) हीरालाल किशनदास, बरोडावाला
१) भाई घासीरामजी, मैनेजर राजगिरिक्षेत्र
१५) सुदासनके समस्त हूमड़ जैनपंच
१५) जोधपुरके समस्त जैनपंच
५) मोतीलाल दशरथसा, बड़वाहा
५) सेठ मूलचन्दजी सराफ, बरवासागर
१०) धनकुमारसिंह वकसर
२२॥)बारसीके समस्त पंच
२) हीराचन्द गीगा भावनगर
६१) कीलाचन्द छगनलाल, इन्दौरवाला
५८।=)बड़वानीके समस्त दिगम्बर जैन पंच
१२) अमथालाल नारायणजी, नरसीपुर
११) नथूभाई अमथालाल नाराणजी, नरसीपुर
१०) लल्लूभाई नारायणजी
८) हरगोविंददास नारायणजी ,,
४) अबुलेख नारायणजी ,,
५) बावचन्द गुलावचन्द ,,
२-) पीताम्बरदास देवचन्द, ,,
॥) मलूकचन्द रघुनाथ ,,
५०१) I बालचंद उगरचंद बम्बई।

I ५०१) सेठजीकी मूर्ति बनवानेके लिए और १००) माणिकचन्द्रग्रन्थ-मालाके लिए।

श्रीपरमात्मने नमः ॥

ग्रंथकर्तॄणां सामान्यतः परिचायकं वृत्तं ।

श्रीभट्टाकलङ्कः ।

स्वस्ति श्रीमद्दिगम्बराचार्यवर्याणां परम्परायां श्रीस्वामिसमंतभद्रजीवनसमयमतिक्रम्य ये ये विद्वद्वरेण्याः समभूवन् तेषु भगवानकलंकः सकलाभिरूपगरिष्ठस्समभूत् । नायं भगवान् केवलं ग्रंथरचनचातुर्येणैव कृतधियां स्तुतिपथमवातरत् किंतु तदानींतनदुर्वादिविजयसंपादितजिनधर्मपुनर्जीवनोपकारेणाऽपि, इति जानन्तु । अयमपरोऽप्यस्य महाभागस्यावतारप्रभावो यदेतज्जीवनकालानंतरं कर्णाटदेशे विद्यानंदप्रभाचंद्रमाणिक्यनंदिवादिसिंहकुमारसेनाद्योऽनेके तार्किकशिरोमणयः समुद्भूयेमं सर्वज्ञप्रणीतधर्ममवितथमजेयत्वेन प्रकाशयांचक्रुः । स्तुत्यं जन्म यदीदृशमेव । वादिराजप्रशंसायां "सदसि यदकलंकः कीर्तने धर्मकीर्तिः" इत्यादिश्लोकेन वादिराजे अकलंकाद्दार्याभेदनिर्देशात् सुलभमस्य सदसि वाक्पाटवमप्यनुमातुं सुधीभिः।

एतस्य च भट्टाकलंकेत्यपरेण भट्टपदसंवलितेन नाम्ना तदानीमतिदुःसंपाद्यभट्टेतिबिरुदसम्पादनमपि ज्ञाप्यते एव । तथाऽयं लघ्व्युपपदधार्यप्यासीत् । लघुसमंतभद्रविद्यानंदाभ्यां तु 'सकलतार्किकचक्रचूडामणि' इति विशेषणवैशिष्ट्येनायं स्वोपज्ञग्रंथादौ स्मृतः । इत्येतत्सर्वमेतस्य महाभागस्य ज्ञानोत्कर्षमेव प्रकाशयति ।

राजवार्तिकालंकारप्रथमाध्यायांत्यश्लोकादयमकलंको लघुह-व्वनाम्नो राज्ञः पुत्र आसीदित्यवगम्यते। लघुहव्वनामा कश्चन माण्डलिको भूपो मान्यखेट(मलखेड)नगरस्या-समंतात् स्वां राजधानीमकल्पयदित्यनुमीयते। राजावलि-कथातस्तु श्रीमदकलंकदेवस्य जन्म कांचीपुरेऽभूदिति विज्ञा-यते। अयमकृतदारपरिग्रह एवासीत्। अनेन च पोन्तकग्रा-मवर्तिबौद्धविद्यालये शास्त्रज्ञानमधिगतं। स्थानमिदं ट्रिवटूरग्राम-निकटे तत्रत्यैः परंपरातः प्रदर्श्यते।

कथांतरानुसारतस्तु तत्रभवानयमकलंकः सुधापुरे देशीय-गणाचार्यपदमधिष्ठित आसीदिति विज्ञायते। नगरमिदानीं उत्तरकनारादेशे 'सोड' इति नाम्ना प्रसिद्धमास्ते देशीयग-णेति देवसंघान्तर्गतैकशाखानामाभूदिति च।

वादिविजयिनाऽनेन पंडितप्रवरेण साकं हिमशीतलभूप-सभायां तत्रत्यपंडितानां महान् विवादः समजनि। अयं हिमशीतलभूपतिः पल्लववंशीयः कांचीनगरीं (कांजीवरम्) स्वां राजधानीं प्रकल्प्य तामेवाध्यतिष्ठत्। भूपतिरयं बौद्ध आसीदत उपरि निर्दिष्टा विवदिषवो बौद्धा एवासन्निति विस्पष्टमेव। तदानीं पराभूतिप्रकुपितेन राज्ञा सर्वे ते बौद्ध-पंडिताः स्वराजधानीतः सिलोनदेशीयकैंडीग्रामं प्रति निर्वा-सिताः। इदं विवादवृत्तं श्रवणबेळगुळपुण्यग्रामोपलब्ध-मल्लिषेणप्रशस्तितोऽवगम्यते। अन्यच्चायं पंडितधौरेयः साहस-

तुंगमहीपतेः सभायामपि विवादयाच्आयै गतवानासीदित्यपि मल्लिषेणप्रशस्तित एवावगम्यते । अयं च साहसतुंगमहाराजो राष्ट्रकूट—(राठोर)—वंशीय आसीत् । एतस्य प्रसिद्धे नामनी शुभतुंग इति कृष्णराज इति च आस्तां । अनेन खेंदु-वसुमित-(८१०)-विक्रमसंवत्सरमारभ्य लोचनाभिवसुमित-वत्सरं (८५२) यावत् राज्यसुखमनुबभूवे इति बहुप्रमाणतो निश्चेतुं शक्यते । तेन चायमेवात्रभवतोऽकलंकस्वामिनः स्थितिकाल इति सुविस्पष्टं ।

विद्वदग्रेसरस्यैतस्य गुरुपरंपरा, कतरस्माद्गुरोः सकाशा-दिदमनल्पं शास्त्रविज्ञानमधिगतमिति च नोपलभ्यते । मल्लि-षेणप्रशस्तितः केवलं पुष्पषेणाख्य एतस्य सतीर्थ्यो वा गुरुतनयो वाऽऽसीदित्येवावगम्यते ।

श्रीमदकलंकदेवप्रणीता ग्रंथा अधो लिख्यंते—

१ अष्टशती— श्रीसमंतभद्रस्वामिविरचितदेवागमस्तोत्र-भाष्यमिदं अष्टसहस्रीपुस्तकांतर्मुद्रितं ।

२ राजवार्तिकालंकारः— भगवदुमास्वातिप्रणीततत्त्वार्थ-सूत्रभाष्यमिदं काश्यां सनातनजैनग्रंथमालायां मुद्रितं ।

३ न्यायविनिश्चयः— अस्यैकमेव पुस्तकं श्रीवादिरा-जकृतवृत्तिसहितं आरानगरीयसिद्धांतभवने वर्तते ।

४ लघीयस्त्रयं ।

५ बृहत्त्रयं— ग्रंथोऽयं कोल्हापूरनगरीयजैनग्रंथभांडागारे वर्त्तते इति श्रूयते ।

६ न्यायचूलिका— अयमपि श्रीमदकलंकदेवप्रणीत इति श्रूयते परं नोपलभ्यते ।

७ अकलंकस्तोत्रं— मुद्रितमिदं । परमिदमकलंकप्रणीतं स्यान्नवेति संदेहः ।

८ स्वरूपसंबोधनं ।

अन्येऽपि केचन ग्रंथाः श्रीमदकलंकभगवत्प्रणीताः स्युरित्यनुमीयते ।

सर्वमिदं भगवदकलंकदेववृत्तं जैनहितैषिनामकमासिकपुस्तके एकादशतमभागे ७।८ अंकयोर्विस्तरशो लिखितमस्माभिरत्र तु संक्षिप्य जिज्ञासुविद्वज्जनसंतोषाय प्रकाशितमिति शम् ॥

श्रीमदभयचन्द्रसूरिः ।

भट्टाकलंकप्रणीतलघीयस्त्रयव्याख्यानग्रंथा अनेके स्युरित्यनुमीयते । द्वौ व्याख्याग्रंथौ इदानीमुपलब्धौ तयोरेकः श्रीप्रभाचंद्राचार्यप्रणीतो न्यायकुमुदचंद्रोदयनामा अपरश्च स्याद्वादभूषणापरनाम्नी तात्पर्यवृत्तिः । इयं तात्पर्यवृत्तिः श्रीमदभयचंद्रसूरिप्रणीता न्यायकुमुदचंद्रोदयादर्वाचीना । यतस्त-

त्रणेत्रा 'प्रभाचन्द्रादद: सर्वं' (पृ० १८) 'अकलंकप्रभा-भासितं' (पृ० २८) 'अकलंकप्रभाभारद्योतितं' (पृ. ९२) इति च तत्र तत्र प्रभापदसंवलितः प्रभाचंद्रासंबोधनानुप्रसक्त-सार्थक्यो वाक्यविन्यासः प्राणायि। ततोऽनुमीयते न्यायकुमुद-चंद्रोदयादनंतरभावित्वमेतस्याः ।

अयं श्रीमदभयचंद्रसूरिः अमुकस्मिन्नेव समये बभूवेति निर्णेतुं नैव शक्यते । एतद्ग्रंथविरचनारंभे श्रीमदनंतवीर्या-चार्यप्रणामापचितिविधानमिदमनुमापयति न्यायकुमुदचंद्रोद-प्रणेत्रनंतरभावित्वमेतस्य पंडितप्रवरस्य । श्रीमदनंतवी-र्याचार्यसमयस्तु ऋतुनागखेंदुमित-(१०९६)-विक्रमसं-वत्सरपूर्वापरीभूतः काल इति प्रमाणांतरान्निश्चीयते । तेन च तदुत्तरभावित्वमेतस्य निश्चेतव्यं । परमत्र किञ्चिद्बाधकमपि वर्तते । यतोऽयं तत्रभवानभयचंद्रसूरिरात्मानं मुनिचंद्रमुनीं-द्रांतेवासिनं प्रथयति । तद्यथा—

नाभ्यासस्तादृगस्ति प्रवचनविषयो नैव बुद्धिश्च तादृक्,
नोपाध्यायोऽपि शिक्षानियमनसमयस्तादृशोऽस्तीह काले ।
किं त्वेतन्मे मुनींदुव्रतपतिचरणाराधनोपात्तपुण्यं,
श्रीमद्भट्टाकलंकप्रकरणविवृतावस्ति सामर्थ्यहेतुः ॥ १ ॥
जिनाधीशं मुनिं चंद्रमकलंकं पुनः पुनः ॥

मुनिचंद्रनामा कश्चित्पंडितप्रवरः ऋतुवसुलोचनेंदुमित-(११८६)-विक्रमसंवत्सरसमये आसीदिति प्रमाणांतराद्व-

गम्यते। स च रट्टराजस्य कार्त्तवीर्यसंज्ञस्य गुरुरासीदिति च। तेन यद्ययं श्रीमानभयचंद्रो मुनिचंद्रांतेवास्यभविष्यत् तदा श्रीविक्रमार्कस्य त्रयोदशशततमाब्दामभविष्यदिति सिध्यति॥

अन्यदपि— श्रीज्ञानभूषणाचार्यांतेवासिना श्रीनेमिचंद्राचार्यवर्येण विरचिता गोम्मटसारग्रंथप्रवरस्यैका टीका वर्तते। इयं तु प्रतापगढनगरे तथा जयपुरस्थपाटोदीमंदिरे च संपूर्णा वर्तते। अस्यां भगवान् नेमिचंद्रः— दाक्षिणात्याचार्यमुनिचंद्रादधिगतसिद्धांतागमोऽहं धर्मचंद्राभयचंद्रलाक्षवर्णिनामनुजिघृक्षयेमां व्याख्यां व्यरचमिति— सुविस्पष्टं निर्दिशति। पाटोदीमंदिरस्थपुस्तकस्य प्रांतेऽयं श्लोकश्चोपलभ्यते—

निर्ग्रंथाचार्यवर्येण त्रैविद्यचक्रवर्तिना॥
संशोध्याभयचंद्रेणालेखि प्रथमपुस्तकं॥ १॥ इति।

इतश्च श्रीनेमिचंद्रविरचितगोम्मटसारव्याख्यायाः प्रथमं पुस्तकमभयचंद्रेणालेखीति विज्ञायते। अयमेव चाभयचंद्रो नेमिचंद्रगुरोर्मुनिचंद्रस्यापि शिष्यत्वं स्वीचकारेत्येतदपि नासंभवि। परं लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तिप्रणेता श्रीमानभयचंद्रो यदि श्रीनेमिचंद्रेण गोमटसारव्याख्याप्रणयनेनानुगृहीतादभयचंद्रतोऽभिन्नः स्यात्तर्हि सः वसुखमुनींदुमित–(१७०८)-विक्रमसंवत्सरपूर्वापरीभूतकाले स्यादिति। यतश्च गोमटसारवृत्तिरियं श्रीवीरनिर्वाणतो मुन्यर्षींदुलोचनमित–(२१७७) संवत्सरे बभूवेति ज्ञायते॥

श्रीमदनंतकीर्तिः ।

श्रीमदनंतकीर्त्याचार्यस्येदानीं यावदिमौ लघुबृहत्सर्वज्ञसिद्ध्यभिधानकौ ग्रंथौ समुपलब्धौ । अत्रापि न तेन महाभागेन स्वपरिचायकं किमपि व्यलेखि । अतोऽस्य जनिस्थानादिविषये निश्चयेन न किमपि लिखितुं पारयामः । किन्त्वेतावदेव निवेदयामो यदयं विद्वन्मुकुटहीरः श्रीवादिराजसूरितः प्राक्समजनीति । यतश्च श्रीवादिराजेनाधिगतोऽयं पंडितप्रवरः-

आत्मनैवाद्वितीयेन जीवसिद्धिं निबध्नता ।
अनंतकीर्तिना मुक्तिरात्रिमार्गेव लक्ष्यते ॥ इति ॥

अयं श्रीवादिराजः पार्श्वनाथकाव्यप्रणेताऽऽसीत् । तच्च काव्यमनेन लोचनवसुखेंदु–(१०८२)–मितविक्रमसंवत्सरे व्यरचीति विज्ञायते । अनेनैव च श्रीवादिराजकृतनामनिबंधनश्लोकेन श्रीमदनंतकीर्तिना जीवसिध्द्यभिधोऽन्योऽपि ग्रंथो निरमायीति ज्ञायते । इतोऽधिकमस्मिन् पंडितप्रवरविषये न लभ्यते । केवलमस्य सर्वज्ञसिद्धिग्रंथस्यांतिमश्लोकात् एतावदेव ज्ञातुं शक्यते यदयं विद्वद्वरिष्ठो महाकीर्तिभाजनमभूदिति ।

समस्तभुवनव्यापियशसाऽनंतकीर्तिना ।
कृतेयमुज्वला सिद्धिर्धर्मज्ञस्य निरर्गला ॥ इति शम् ॥

निवेदकः—

नाथूराम प्रेमी.

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ लघीयस्त्रयम् ।

जिनाधीशं मुनिं चन्द्रमकलङ्कं पुनः पुनः ॥
अनन्तवीर्यमानौमि स्याद्वादन्यायनायकम् ॥ १ ॥
न तज्ज्ञात्वाऽभिमानेन किन्तु मादृक्प्रतीतये ॥
लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तिं वक्ष्ये यथाश्रुतम् ॥ २ ॥

श्रीमतो न्यायशास्त्ररत्नाकरस्यामेयप्रमेयमणिगणगर्भस्याति-गम्भीरस्य बालानां दुरवगाहतया हिताहितविशेषविज्ञानार्थं प्रवचनार्थमुध्दृत्य प्रतिपिपादयिषुः सकलतार्किकचक्रचूडा-मणिमरीचिमेचकितचरणनखमयूखोल्लेखो भगवान् भट्टाकलङ्क-देवः पोतायमानं लघीयस्त्रयाख्यं प्रकरणं प्रारभमाणस्तदादौ निर्विघ्नतादिफलचतुष्टयजुष्टं परममङ्गलमङ्गीकुरुते—

धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु ।
स्याद्वादिभ्यो नमो नमः ॥
वृषभादिमहावीरा- ।
न्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये ॥ १ ॥

अवयवार्थप्रतिपत्तिपूर्विका समुदायार्थप्रतिपत्तिरिति न्यायादस्यादिश्लोकस्य तावदवयवार्थः कथ्यते ॥ अस्तु भूयात् । किं? नमो नमः भृशं पुनः पुनर्वा नमस्कारः प्रणाम इत्यर्थः । अनेन नमस्कृतावास्तिक्यमास्थितं भृशादौ द्विर्वचनविधानात् ॥ केभ्यः? वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः । वृषभः पुरुजिनः आदिः प्रथमावयवो येषां ते वृषभादयः । महावीरो वर्धमानजिनः अन्तोऽवसानावयवो येषां ते महावीरान्ताः । वृषभादयश्च ते महावीरान्ताश्च ते तथोक्तास्तेभ्यः । नमः-शब्दयोगे चतुर्थीविधानात् । इदमेवाह परममङ्गलं यज्जिनेन्द्रनमनं नाम मलगालनमङ्गादालनलक्षणफलस्यात एव समाप्तेऽपि (?) । मलं पापं गालयति ध्वंसयति मङ्गं पुण्यं लात्यादत्ते अस्मादिति वा मङ्गलमिति निर्वचनात् । ननु जिनेन्द्रनमस्कारवत् श्रुतादिनमस्कारस्यापि मंगलत्वेन तेऽपि किमिति न नमस्कृता इत्याशंक्येदं विशेषणमाह— धर्मतीर्थकरेभ्य इति । धर्म एव तीर्थं, धर्मस्य प्रतिपादकं तीर्थं, धर्मास्य प्रवर्तनं तीर्थमिति वा धर्मतीर्थं प्रवचनं परमागम इति यावत् । तत्कुर्वन्ति स्वोपज्ञतया प्रतिपादयन्तीति धर्मतीर्थकरास्तेभ्यः । कोऽयं धर्म इति चेत्— उत्तमक्षमादिलक्षणो जीवादिवस्तुस्वभावो जीवस्य सुखप्रदः शुभधर्मरूपः पुद्गलपरिणामश्च धर्म इत्युच्यते । स एव तीर्थं संसारोत्तरणकारणत्वादुत्तमक्षमादेः सामानाधिकरण्याविरोधात् । तस्य तीर्थ-

मित्यप्यविरुद्धं जीवादितत्त्वप्रतिपादकत्वात्प्रवचनस्य । तस्मै तीर्थमिति चानुमतमेवाभिनवपुण्यास्रवप्रयोजनत्वात्परमागमस्येत्यत इदमुपपन्नं । वृषभादिमहावीरान्ता अर्हन्त एव स्वहितैषिभिर्नमस्कार्या धर्मतीर्थकरत्वात् । योऽर्हन्न भवति स न धर्मतीर्थकरो यथा रथ्यापुरुषः । धर्मतीर्थकराश्चैते तस्मात्त एव नमस्कारार्हा इत्यविनाभावनियमनिश्चयैकलक्षणात्साधनात्साध्यसिद्धिरबाधनात् । नन्वनैकान्तिकमिदं धर्मतीर्थत्वं अनर्हत्स्वपि सुगतादिषु दर्शनात् । तेऽपि हि स्वाभिप्रेतधर्मागमप्रतिपादकत्वेन तत्तद्वादिभिरभिधीयन्ते इति चेत्तद्व्यवच्छेदनार्थमाह– स्याद्वादिभ्य इति । स्यात्कथञ्चित् सदसदात्मकं वस्तु वदन्तीत्येवंशीलाः स्याद्वादिनस्तेभ्य इति । तथा हि अर्हन्त एव धर्मतीर्थकराः स्याद्वादित्वात् । न खल्वनर्हतां स्याद्वादित्वमुपपन्नं यतो धर्मतीर्थकरत्वं तेषां प्रकल्प्येत । क्षणिकनित्यत्वादिसर्वथैकान्तवादित्वेन तद्विरुद्धत्वात् । ननु किमर्थं मंगलं शास्त्रकारेणाभिधीयते इत्याशङ्कायामाह— स्वात्मोपलब्धये स्वस्य नमस्कर्तुरात्मा अनन्तज्ञानादि स्वरूपं तस्योपलब्धिः सिद्धिस्तस्यै । सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिरित्यभिधानात् । ज्ञानावरणादिमलविलयादनन्तज्ञानादिस्वरूपलाभस्य मंगलफलत्वोपपत्तेः ॥

ननु सुगतादीनां सर्वथैकान्तवादिनामपि धर्मतीर्थकरत्वमविरुद्धमेव बाधकप्रमाणाभावात् तत्तीर्थेऽपि प्रमाणादिलक्षण-

प्रतिपादनसम्भवादिति प्रत्यवस्थां निराकुर्वन् स्याद्वादवर्त्मनो निष्कण्टकशुध्यर्थमाह—

सन्तानेषु निरन्वयक्षणिकचित्तानामसत्स्वेव चे-। त्तत्त्वाहेतुफलात्मनां स्वपरसङ्कल्पेन बुद्धः स्वयम्॥ सत्त्वार्थं व्यवतिष्ठते करुणया मिथ्याविकल्पात्मकः। स्यान्नित्यत्ववदेव तत्र समये नार्थक्रिया वस्तुनः ॥ २ ॥

बुद्धः क्षणिकैकान्तवादी । चेद्यदि । स्वयं आत्मना । व्यवतिष्ठते न निर्वाति (?)। किमर्थं सत्त्वार्थं दुःखाद्विनेयजनोद्धरणार्थं । कया करुणया कृपया । 'तिष्ठन्त्येव पराधीना येषां तु महती कृपा' इति वचनात् । केन व्यवतिष्ठते स्वपरसङ्कल्पेन स्वः प्रतिपादको बुद्धः परः प्रतिपाद्यो दिङ्नागादिः तयोः संकल्पोऽसतः सदारोपो यस्तेन । केषु सन्तानेषु प्रबन्धेषु । किंविशिष्टेषु असत्स्वेव अपरमार्थसत्स्वेव । केषां निरन्वयक्षणिकचित्तानां क्षणे निरंशकालविशेषे भवानि क्षणिकानि, चित्तानि ज्ञानानि, क्षणिकानि चित्तानि क्षणिकचित्तानि; अन्वयो द्रव्यं तस्मान्निष्क्रान्तानि निरन्वयानि परस्परात्यन्तभिन्नानीत्यर्थः । तानि च तानि क्षणिकचित्तानि च

तेषां। कथम्भूतानां तत्त्वाहेतुफलात्मनां हेतुः कारणं फलं च कार्यं ते आत्मानौ स्वरूपे येषां तानि तथोक्तानि। तत्त्वे परमार्थे न हेतुफलात्मानि तत्त्वाहेतुफलात्मानि तेषामिति। तथा च बुद्धः कथं धर्मतीर्थकरः स्यादित्यभिप्रायः। मिथ्याविकल्पात्मकत्वात् मिथ्या असत्यौ विकल्पः स्वरूपसङ्कल्पः आत्मा स्वरूपं यस्यासौ तथोक्तः। प्रथमान्तस्यापि हेतुप्रयोगसम्भवात्। किंवत् नित्यत्ववत् यथा वस्तुन. सर्वथानित्यत्वे परमार्थेऽसति व्यवतिष्ठमाना ईश्वरकपिलब्रह्माणो धर्मतीर्थकरा भवन्ति मिथ्याविकल्पात्मकत्वात्तथा बुद्धोऽपीत्यर्थः॥ ननु सर्वविदिष्टमेव प्रतिभासाद्वैतस्यैव परमार्थसत्त्वादिति कश्चित् प्रत्याह— तत्रेत्यादि, तत्र तस्मिन् समये संगतः समस्तज्ञानेष्वनुगतोऽयः प्रतिभासः समयस्तस्मिन् प्रतिभासाद्वैते। वस्तुतोऽद्वयपदार्थस्य। अर्थक्रियाऽनुभवो न स्यात् मिथ्याविकल्पात्मकत्वाविशेषात्। ननु स्वप्नेन्द्रजालप्रत्ययवत्सर्वप्रत्ययानां निरालम्बनत्वेन कथमनुमानस्य प्रामाण्यं यतोऽर्हन्नेव धर्मतीर्थकरः साध्यत इति माध्यमिकमतमाशंक्याह— तत्र तस्मिन् समये समः स्वप्नोद्बोधसाधारणोऽयो बोधस्तस्मिन्। अर्थस्य हेयोपादेयरूपस्य। क्रिया हानोपादानलक्षणा। न स्यात्। कथं वस्तुतः परमार्थतः। पाठान्तरापेक्षयेदमुक्तं। न खल्वप्रमाणात्साधनादिव्यवस्थाऽतिप्रसंगात्। अनेन विभ्रमैकान्तोऽपि निरस्तः। तत एव यथा क्षणिकत्वाद्येकान्तानां मिथ्यावि-

कल्पात्मकत्वं तथा यथाऽवसरं शास्त्रकारः स्वयमेव वक्ष्यतीत्युपरम्यते ॥

तदेवं कण्टकशुद्धिं विधाय सम्बन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजननिर्देशपूर्वकं प्रमाणस्य लक्षणमेदतेभेदप्रकाशनार्थमिदं सूत्रमाह—

प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं ।

मुख्यसंव्यवहारतः ॥

परोक्षं शेषविज्ञानं ।

प्रमाणे इति संग्रहः ॥३॥

चत्वारो हि प्रतिपाद्याः । व्युत्पन्नोऽव्युत्पन्नः सन्दिग्धो विपर्यस्तश्च । तत्र नाद्यतुर्यौ व्युत्पाद्यौ व्युत्पित्साविरहात् । अव्युत्पन्नस्तु लोभभयादिना व्युत्पित्साभावाव्युत्पाद्यः । सन्दिग्धश्च स्वसन्दिग्धार्थप्रश्नकाले व्युत्पाद्यः । तदेतद्व्युत्पाद्यद्वयं प्रति प्रमाणस्योद्देशलक्षणपरीक्षाः प्रतिपाद्यन्ते शास्त्रप्रवृत्तेस्त्रिविधत्वात् । तत्रार्थस्य नाममात्रकथनमुद्देशः । उद्दिष्टस्यासाधारणस्वरूपनिरूपणं लक्षणम् । प्रमाणबलात्तल्लक्षणविप्रतिपत्तिपक्षनिरासः परीक्षा । तत्र प्रमितिरित्युद्देशः । सर्वशून्यवादिनामपि स्वेष्टानिष्टसाधनदूषणान्यथानुपपत्त्या तदभ्युपगमप्रसिद्धेः । तच्च ज्ञानमेव भवतीति लक्षणनिर्देशः

अव्याप्त्यादिदोषविधुरत्वात् । प्रमाणत्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतु-वादरूपा परीक्षा । ततस्तल्लक्षणविप्रतिपत्तिनिराकरणात् । तथाहि प्रकर्षेण संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन मिमीते जानाति स्वपरस्वरूपं, मीयतेऽनेनेति मितिमात्रं वा प्रमाण-मिति व्युत्पत्तेः । निश्चयव्यवहाराभ्यां द्रव्यपर्याययोरभेदेत-रविवक्षया तथा निरुक्तेः सम्भवात् । न चाज्ञानेन संशया-दिव्यवच्छेदः शक्यस्तदविरोधात् । [illegible] हि [illegible] तस्य व्यवच्छेदकं [illegible] [illegible]-व्यवच्छेदकं [illegible] सन्निकर्षादिति [illegible]-न्तिघ्नुवीत । न हि [illegible]ऽपि चक्षुस्संयुक्तसमवायलक्षणः सन्निकर्षो [illegible] तत्प्रमाहेतुः । न चक्षुषोऽपि रूप-सन्निकर्षोऽस्ति तस्याप्राप्तार्थप्रकाशकत्वात् । न खलु पर्वता-द्यर्थप्रदेशं प्रति चक्षुर्गच्छति नाप्यसौ चक्षुर्देशमागच्छति येन तत्संयोगः स्यात् । योग्यप्रदेशावस्थानस्यैव तयोः प्रतीतेः । तत्तेज संयोगोऽस्त्येवेति चेन्न तेजःसंयोगात्तमस एव विच्छे-दान्न संशयादेरविरोधादित्युक्तमेव । तन्न सन्निकर्षः प्रमाणमचेत-नत्वात् घटादिवत् । नापि कारकसाकल्यं तस्याप्यचेतन-त्वाविशेषात् । किञ्च कारकसाकल्यस्य प्रमाणत्वे कर्तृक-र्मादीनामपोद्धारायोगान्निरालम्बनं निष्फलं च प्रमाणं स्यात् । कारकसाकल्ययोरत्यन्तभेदादयमदोष इति चेत्तदा कथं प्रमा-णतत्साकल्ययोरभेदः स्यात् । प्रमाणस्य करणत्वेन तदा-

त्मकत्वायोगात् । अकरणमेव प्रमाणमिति चेन्न क्रियाकार-
कव्यतिरेकेण तत्सिद्धेरर्थक्रियाशून्यत्वात् खपुष्पवत् । कार-
कसमुदायपक्षेऽपि तत्प्रमितौ तत्साकल्यकरणप्रमाणान्तरे
कल्प्यमाने तत्प्रमितावपि तथेत्यनवस्थाप्रसंगात् । ततो न
कारकसाकल्यमपि प्रमाणमज्ञानत्वादेव । इन्द्रियवृत्तिः प्रमा-
णमित्यप्यसम्भाव्यमचेतनत्वाविशेषात् सन्निकर्षवत् । किञ्च
इन्द्रियाणां वृत्तिरुन्मीलनादिव्यापारः संशयादिव्यवच्छेदो वा
प्रथमपक्षे न प्रमाणता व्यभिचारात् । क्वचित्संशयादावपि
तद्व्यवच्छेदयोगात् । द्वितीयपक्षे तु ज्ञानमेव प्रमाणमित्यायातं
अज्ञानात्तद्व्यवच्छेदानुपलब्धेः । ज्ञानोत्पत्तिकारणत्वादिन्द्रिया-
णामुपचारतः प्रमाणत्वं सर्वत्रानुमतमेव । ज्ञातृव्यापारस्य
प्रामाण्यमपि ज्ञानात्मकत्वे सत्येव सुघटं । संशयादिव्यवच्छि-
त्तिफलस्य तेनैव व्याप्यत्वात् । अज्ञानात्मकत्वे तु तत्र
तद्व्यवच्छेदकं किञ्चिदर्थान्तरमनुसरणीयं तत्रापि तथात्वेऽन-
वस्थापत्तेः । नन्वज्ञानमपि सन्निकर्षादिकं संशयादिव्यवच्छेद-
कारणमस्तु को दोष इति चेन्न । संशयादेरज्ञानविशेषत्वेन
ज्ञानसामान्येन व्याप्यत्वात् । न च व्यापकेन व्याप्यं व्यव-
च्छेद्यतेऽन्यथा व्याप्यव्यापकभावविरोधात् । ननु संशयादेरज्ञा-
नविशेषत्वेन ज्ञानसामान्येन व्याप्यत्वात्कथं ज्ञानेन विरोध
इति चेन्न । अत्र सम्यग्ज्ञानस्यैव ज्ञानत्वेन विवक्षितत्वात्संश-
यादेश्च मिथ्याज्ञानत्वेन सम्यग्ज्ञानेन विरोधसिद्धेः । ततः

*

साधूक्तं ज्ञानमेव प्रमाणमज्ञाननिवृत्त्यन्यथानुपपत्तेरिति ॥ ननु ज्ञानं प्रमाणमस्तु विज्ञानाकारगोचरे एव। तत्तु निर्विकल्पकमेव विकल्पस्यावस्तुविषयत्वादिति सौगतविप्रतिपत्तिं निराकुर्वन्नाह— विज्ञानमिति। विशेषस्य जात्याद्याकारस्य ज्ञानमवबोधनं निश्चयो यस्य तद्विज्ञानं। विशेषेण वा संशयादिव्यवच्छेदेन ज्ञानमवबोधनं यस्य तद्विज्ञानमिति। न पुनर्निर्विकल्पकं दर्शनं तस्य व्यवहारानुपयोगात्। न खलु हानादिरूपं फलं व्यवहारिणां निर्विकल्पकदर्शनेन निर्वर्त्यते अन्यथा निश्चयवैफल्यप्रसङ्गात्। विभ्रमैकान्तेऽपि संव्यवहारविशेषानुपपत्तेः। संशयादिव्यवच्छेदादेव हि ज्ञानं संव्यवहारहेतुर्न तु भ्रान्तेः। यतः सर्वमपि ज्ञानं भ्रान्तं स्यात्। ननु निश्चयात्मकमपि ज्ञानं न बहिरर्थालम्बनं तस्यैवाभावादिति ज्ञानाद्वैतवादिनः। अर्थनिश्चयात्मकमेव ज्ञानं न स्वरूपावबोधकं स्वात्मनि क्रियाविरोधादिति यौगादयः। तदेतन्मतद्वयनिराकरणार्थमिदमेवाभ्योप्यते— विज्ञानमिति— विविधं स्वापूर्वार्थगोचरं ज्ञानमवबोधनं यस्य तद्विज्ञानमिति व्याख्यानात्। न हि बहिरर्थशून्यं ज्ञानं प्रमाणं यतो बहिरर्थशून्यता तस्य साध्येत। तत्साधनानुमानस्य बहिरर्थालम्बनत्वात्। अन्यथा साध्यसाधनयोरविशेषात्। किञ्च ज्ञानसत्त्वमन्तर्मुखानुभवबलादभ्युपगच्छन् बहिर्मुखानुभवबलात् ज्ञेयं नाभ्युपगच्छतीति किमपि महादद्भुतम्। एकस्य सम्यक्त्वम-

न्यस्य मिथ्यात्वमित्यपि स्वेच्छाकारित्वमेव न प्रेक्षावत्त्वमविशेषात्। तन्न बहिरर्थशून्यं ज्ञानम्। न च प्रमाणान्तरेण निश्चितोऽपि संशयाद्यालीढापूर्वार्थ इत्युच्यते तत्रैव प्रमाणस्य साफल्यात्। नापि स्वरूपानवबोधनं, अवबोधनस्य प्रकाशरूपत्वात्। तस्य च स्वपरविषयत्वेन प्रतीतिसिद्धत्वात्। इदं नीलादिकमहं वेद्मीत्यन्तर्बहिरालम्बनस्यानुभवस्य सिद्धेः। अन्यथा बाह्यार्थानुभवस्याप्यपलापः। स्वात्मनि क्रियाविरोध इत्यप्यनुपपन्नं, अन्यतरानुपलम्भसाध्यत्वाद्विरोधस्य। उपलभ्यमाने च ज्ञाने स्वरूपावबोधनद्वये प्रदीपवत्। यथैव हि प्रदीपप्रकाशनयोरेकत्राविरोधः सकलसम्मतस्तथा स्वरूपावबोधनयोरप्यात्मन्यविरोधोऽङ्गीकर्तव्य एव न्यायायातत्वात्। अन्यथा पक्षपातप्रसङ्गात्। ततः साधूक्तं विज्ञानं स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानमिति ॥

तच्च प्रत्यक्षमेवेति चार्वाकाः विप्रतिपद्यन्ते। प्रत्यक्षानुमाने एवेति सौगतवैशेषिकाः। प्रत्यक्षानुमानागमा इति साङ्ख्याः। प्रत्यक्षानुमानोपमानागमानीति नैयायिकाः। प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्तय इति प्रभाकराः। प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्यभावा इति भाट्टाः। तत्समस्तविप्रतिपत्तिविक्षेपार्थमिदमाह- प्रमाणे इति संग्रह इति। सकलप्रमाणभेदप्रभेदानां संख्यासङ्ग्रहो द्वैविध्यमेव, नैकत्वादि, तत्रान्य-

भेदानामन्तर्भावात् । संक्षेपेण सामस्त्येन वा ग्रहः सङ्ग्रह इति व्याख्यानात् । ननु प्रमाणमित्येकत्वसंख्ययैवालं तत्रैवे-तत्सङ्ख्यान्तर्भावात् किं तद्द्वित्वेनेति चेन्न । भेदगणनाया एव संख्यात्वादेकत्वस्य चाभेदत्वात् । द्रव्यार्थिकनयविवक्षया तद-भ्युपगमात् । पर्यायार्थिकनयविवक्षया तु प्रमाणभेदानां द्वित्वस्यैव सङ्ग्रहत्वात् । नन्वस्तु द्वित्वं प्रमाणस्य प्रत्यक्षा-नुमानभेदादित्याशङ्कामपाकुर्वन् प्रत्यक्षपरोक्षभेदादिति मनसि कृत्वा तत्राद्यं तावदाह— प्रत्यक्षं विशदमिति यद्विशदं स्पष्ट-प्रतिभासनं ज्ञानं तत्प्रत्यक्षप्रमाणं भवति । अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव क्षीणोपशान्तावरणं क्षीणावरणं वा प्रतिनियतं परानपेक्षं तत् प्रत्यक्षमिति व्युत्पत्तेः । न अविशदस्वरूपस्य प्रमाणस्य प्रत्यक्षत्वमुपपन्नं अतिप्रसङ्गात् । तच्च प्रत्यक्षं द्विधेति प्रतिपादयति— मुख्यसंव्यवहारतः । मुख्यं च संव्यवहारश्च तावाश्रित्य प्रत्यक्षं द्वेधा भवतीति भावः । तत्र मुख्यं प्रत्यक्षमवधिमनःपर्ययकेवलभेदभिन्नं अशेषतो वैशद्यादिन्द्रियादिनिरपेक्षत्वाच्च । स्वावरणविशेषविश्लेषप्रादुर्भूतं हि तन्मुख्यतः प्रत्यक्षव्यपदेशभाग्भवति प्रत्यक्षमन्यदिति सिद्धान्तानुरोधात् प्रत्यक्षताऽनुपचारात् । यत्पुनरिन्द्रियानि-न्द्रियनिमित्तं मतिज्ञानं तत्सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षमित्युच्यते देशतो वैशद्यसम्भवात् । समीचीनप्रवृत्तिरूपो व्यवहारः संव्यवहारस्तमाश्रित्य प्रवृत्तेः प्रत्यक्षतोपचाराविरोधात् । आद्ये

परोक्षमिति हि मुख्यवचनं ततो नायमपसिद्धान्तः । इदानीं परोक्षलक्षणमाह- परोक्षं शेषमिति । शेषमवितथं ज्ञानं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदभिन्नं परोक्षं प्रमाणमित्याख्यायते । तस्य परप्रत्ययापेक्षया प्रवृत्तेः प्रत्यक्षादिनिमित्तत्वात्स्मृत्यादेः । अत्र प्रमाणे इत्यनेनाभिधेयवत्त्वमस्य शास्त्रस्य सूचितं भवति । अनेन प्रमाणनयनिक्षेपाणामभिधानात्तच्छून्यस्यैव वन्ध्यासुतो यातीत्यादिवदनादरणीयत्वात् । सम्बन्धश्च वाच्यवाचकभावलक्षणः सुघट एव । शास्त्रतदभिधेययोस्तत्सद्भावात् । अन्यथा दश दाडिमानि षडपूपा इत्यादिवाक्यवदप्रयोजकत्वात् । शक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनं च साक्षात्प्रमाणादिविषयाज्ञाननिवृत्तिलक्षणमुपलक्ष्यत एव, शास्त्राध्ययनानन्तरभावित्वात्तस्य । परम्परया तु हानादिरूपं हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वात्प्रवचनस्य । निष्प्रयोजनस्य प्रवृत्त्यनङ्गत्वात्काकदन्तपरीक्षावत् । ततः साधूक्तं प्रत्यक्षमित्यादि ॥

ननु विशदं प्रत्यक्षमित्युक्तं तत्कीदृशं ज्ञानस्य वैशद्यमित्याशंक्याह—

अनुमाद्यतिरेकेण विशेषप्रतिभासनम् ॥
तद्वैशद्यं मतं बुद्धेरवैशद्यमतः परम् ॥ ४ ॥

तन्मतमिति स्याद्वादिभिः । किं वैशद्यं विशदस्य भावो वैशद्यं । कस्याः बुद्धेः शानस्य । किं तत् यद्विशेषप्रतिभासनं विशेषस्य वर्णसंस्थानाद्याकारस्य प्रतिभासनमवबोधनं । विशेषेण वा प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन प्रतिभासनं । कथं अनुमाद्यतिरेकेण अनुमानमादिर्येषामागमादीनां तेभ्योऽतिरेक आधिक्यं तदनादरणं तेन । न खल्वनुमानादिसाधारणं विशेषप्रतिभासनं प्रत्यक्षस्य प्रतीतं यतस्तेषामपि वैशद्यं सम्भवेत् । अत उक्तलक्षणाद्वैशद्यात्परमन्यद्व्यवहितप्रतिभासनमवैशद्यमित्युच्यते । तस्यानुमानादिषु परोक्षभेदेषु व्यवस्थितत्वात् । एवं ज्ञानस्य बाह्यार्थापेक्षयैव वैशद्यावैशद्ये देवैः प्रणीते । स्वरूपापेक्षया तु सकलमपि ज्ञानं विशदमेव स्वसंवेदने ज्ञानान्तराव्यवधानात् । तस्य ज्ञानस्य प्रामाण्याप्रामाण्ये अपि बहिरर्थापेक्षयैव न स्वरूपापेक्षया । तत्र सर्वसंवेदनस्य प्रामाण्याभावात् । भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः ॥ बहिःप्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥ इति वचनात् ॥

अथ सांव्यवहारिकप्रत्यक्षस्य कारणभेदनिर्णयार्थमिदमाह—

अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः ॥
अवग्रहे विशेषाकांक्षेहाऽवायो विनिश्चयः ॥५॥
धारणा स्मृतिहेतुस्तन्मतिज्ञानं चतुर्विधम् ॥

सोपस्कारत्वात्सूत्राणामेवं व्याख्यायते। उत्पद्यते। कः सत्तालोकः सत्तायाः समस्तार्थसाधारणस्य सत्त्वसामान्यस्य आलोको निर्विकल्पकग्रहणं दर्शनमिति यावत्। सामान्यग्रहणं दर्शनमित्याम्नायात्। ननु मतिज्ञानप्रकरणे किमिति दर्शनमप्रकृतमुपक्रान्तमिति चेन्न। ज्ञानात्पूर्वपरिणामप्रदर्शनार्थत्वात्। दर्शनपूर्वं ज्ञानं छद्मस्थानामिति वचनात्। ननु स्वरूपग्रहणं दर्शनमिति गद्धान्तेन कथं न विरोध इति चेन्न। अभिप्रायभेदात्। परविप्रतिपत्तिनिरासार्थं हि न्यायशास्त्रं ततस्तदभ्युपगतस्य निर्विकल्पकदर्शनस्य प्रामाण्यविघातार्थं स्याद्वादिभिः सामान्यग्रहणमित्याख्यायते। स्वरूपग्रहणावस्थायां छद्मस्थानां बहिरर्थविशेषग्रहणाभावात्। प्रामाण्यं च बहिरर्थापेक्षयैव विचार्यते। व्यवहारोपयोगात्। न खलु प्रदीपः स्वरूपप्रकाशनाय व्यवहारिभिरन्विष्यते। ततो बहिरर्थविशेषव्यवहारानुपयोगाद्दर्शनस्य। ज्ञानमेव प्रमाणं तदुपयोगात्। विकल्पात्मकत्वात्तस्य। तत्त्वतस्तु स्वरूपग्रहणमेव दर्शनं केवलिनां तयोर्युगपत्प्रवृत्तेः। अन्यथा ज्ञानस्य सामान्यविशेषात्मकवस्तुविषयत्वाभावप्रसङ्गात्। कस्मात्सत्तालोक उत्पद्यत इत्याह— अक्षार्थयोगे— अक्षाणीन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि पञ्च। मनश्च षष्ठं। तानि च द्विविधानि द्रव्यभावभेदात्। तत्र पुद्गलपरिणामो द्रव्येन्द्रियं निर्वृत्त्युपकरणलक्षणम्। भावेन्द्रियं जीवपरिणामो लब्ध्युपयोगभेदम्। तत्रार्थग्रहणशक्ति-

लब्धिः । अर्थग्रहणव्यापार उपयोगः । निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियं लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियमिति वचनात् । ननु कथं मनस इन्द्रियत्वमिति चेदन्तःकरणत्वेन तदविरोधात् । अर्थो विषयस्तयोर्योगः सन्निपातो योग्यदेशावस्थानं । तस्मिन् सति उत्पद्यते इत्यर्थः । नन्वक्षवदर्थोऽपि तत्कारणं प्रसक्तमिति चेन्न तद्व्यापारानुपलब्धेः । अन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवत् । न हि नयनादिव्यापारवदर्थव्यापारो ज्ञानोत्पत्तौ कारणमुपलभ्यते तस्यौदासीन्यात् । ततः पुनः स एवावग्रहो भवति । किंविशिष्टः अर्थाकारविकल्पधीः अर्थो विषयस्तस्याकारो वर्णसंस्थानादिविशेषः तस्य विकल्पधीः निश्चयात्मकं ज्ञानं । अयमर्थः दर्शनमेव ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविजृम्भितमर्थविशेषग्रहणलक्षणावग्रहरूपतया परिणमत इति यथा आकाशे इदं वस्त्विति । ततः स एवावग्रहः पुनरीहा भवति । किंरूपा विशेषाकांक्षा विशेषस्य बलाकात्वादेराकांक्षा भवितव्यता प्रत्ययरूपा यथा बलाकया भवितव्यमिति । ततः सैवेहाऽवायो भवति । किंलक्षणो विनिश्चयः आकांक्षितविशेषनिर्णय इत्यर्थः । यथा बलाकैवेयमिति । ततः स एवावायो धारणा भवति । किंलक्षणा स्मृतिहेतुः स्मृतेरतीतार्थावमर्शस्य हेतुः कारणम् । इदमेव हि संस्कारस्य लक्षणं यत्कालान्तरेऽप्यविस्मरणमिति । तदेतन्मतिज्ञानं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षमवग्रहादिभेदाच्चतुर्विधं चतुः-

भवतीत्यर्थः । एतच्च प्रतीन्द्रियमवबोद्धव्यम् ॥

अथ तस्य भेदान् प्रमाणफलव्यवहारं च निरूपयति—

बह्वाद्यवग्रहाद्यष्टचत्वारिंशत्स्वसंविदाम् ॥
पूर्वपूर्वप्रमाणत्वं फलं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ ६ ॥

बहुरादिर्येषां ते बह्वादयोऽर्थविशेषाः । बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाः सप्रतिपक्षा द्वादश । तेषां प्रत्येकमवग्रहादयश्चत्वारोऽर्थग्रहविशेषाः तेषामष्टचत्वारिंशत् । बह्वादिभिरवग्रहादयो गुणिता अष्टचत्वारिंशद्भेदा भवन्तीत्यर्थः । प्रतीन्द्रियमेतावद्भेदसम्भवात् षड्भिर्गुणिता अर्थं प्रत्यष्टाशीत्युत्तरा द्विशती प्रतिपत्तव्या । व्यञ्जनं प्रति पुनरवग्रह एव । चक्षुर्मनोरहितैरिन्द्रियैर्बह्वादीनामष्टचत्वारिंशद्भेदास्तत्रेहादेरसम्भवात् । अव्यक्तस्य शब्दादिसमूहस्य व्यञ्जनत्वात् । तत्र बह्वादयो मनाङ्निरूप्यन्ते । बहुरनेकोऽर्थः यथा बहुजनः । तत्प्रतिपक्ष एको जनः । बहुविधो नानाजातिभिन्नः यथा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रा इति । तत्प्रतिपक्ष एकविधः यथा ब्राह्मणा इति । क्षिप्रं झटिति इद ज्ञानस्य विशेषणम् । यथा एकसंस्थया ग्रहणम् । तद्विपक्षः शनैर्ग्रहणम् । अनिःसृतः संवृतो यथा जले पुष्करशेषमग्नो हस्ती । निस्सृतो विवृतः यथा सर्वोन्मग्नो हस्ती । अनुक्तोऽभिप्रायगतो यथाऽग्न्यानयने शरावादिः । उक्तः प्रतिपादितः यथा स्फुटमानयेति ।

ध्रुवमवस्थितं इदं च ज्ञानविशेषणम्। अध्रुवमनवस्थितं यथा भिन्नभाजनजलम्। अथवा ध्रुवः स्थिरः पर्वतादिः। अध्रुव. अस्थिरो विद्युदादिः। एतद्विषयत्वेनावग्रहादयो विशिष्यन्ते। एवं व्यञ्जनेऽपि योज्याः। तदेतदुभयसङ्कलने षट्त्रिंशदुत्तरा त्रिशती मतिज्ञानस्य भेदा भवन्ति। ननु बहिरर्थावलम्बनत्वेनैव ज्ञानस्य तद्भेदसम्भवात्कथं स्वव्यवसायात्मकमिति चेदुच्यते। स्वसंविदामिति। अत्रापिशब्दस्याध्याहारः कर्तव्यः। न केवलमर्थसंविदामेते भेदाः किन्तु स्वसंविदामपि अवग्रहादयो भवन्तीत्यर्थः। स्वस्य ज्ञानस्वरूपस्य संविद्वेदनं ज्ञानान्तरानपेक्षमनुभवनं येषां ते स्वसंविद इति व्याख्यानात्। न हि ज्ञानमस्वसंवेदनमर्थसंवेदनविरोधप्रसङ्गात्। स्वरूपस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वेऽनवस्थाप्रसङ्गात्। ततो ज्ञानं परोक्षमेवेति वदन्मीमांसकः, ज्ञानान्तरप्रत्यक्षमिति यौगाः, चेतनमिति सांख्यः, पृथिव्यादिपरिणाम इति चार्वाकश्च प्रतिक्षिप्ताः। तन्मतस्य प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधितत्वात्। नन्ववग्रहस्य प्रमाणत्वे फलाभावः प्रसज्यते इत्याशंक्याह– पूर्वपूर्वप्रमाणत्वं स्यात्, वीप्सायां द्विर्वचनम्। पूर्वपूर्वस्यावग्रहादेर्यथा प्रमाणत्वं स्यात्तथोत्तरोत्तरमीहादिकं साक्षात्फलं स्यादिति प्रमाणफलयोः कथञ्चिद्भेदोपपत्तेः। सर्वथा तयोर्भेदेऽभेदे वाऽर्थक्रियानुपपत्तेः। विवक्षातः कारकप्रवृत्तिरिति न्यायात्। यदेव चिद्द्रव्यमनुगताकारमखण्डमन्वयज्ञानबलात्प्रसिद्धं तदेव पूर्वोत्तराकारपरिहा-

राव्याप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेन परिणममानं व्यतिरेकज्ञानबलात्प्रतिपर्यायं भिन्नमनुभूयते इति प्रमाणफलव्यवहारोपपत्तेः। परम्पराफलं तु हानादिकं सर्वत्र साधारणमेव। तच्च प्रमाणत्वं ज्ञानस्याभ्यस्तविषये स्वतः सिध्येत् तत्र ज्ञानान्तरानपेक्षणात्। अनभ्यस्तविषये तु परतः प्रमाणान्तरतः सिध्येत् तत्रानुमानाद्यपेक्षणात्। न सर्वथा अतिप्रसङ्गादनवस्थानाच्च। ततो युक्तमुक्तं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षमवग्रहादीति॥

अकलङ्कशशाङ्कैर्यद्विशदं प्रतिभासितम्॥
प्रभाबलाददः सर्वं सौरी वृत्तिर्व्यनक्ति वः॥ १॥

इत्यभयचन्द्रसूरिकृतौ लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तौ स्याद्वादभूषणसञ्ज्ञायां प्रत्यक्षपरिच्छेदः प्रथमः॥

अथ प्रमाणस्य विषयविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमिदमाह—

तद्द्रव्यपर्यायात्मार्थो बहिरन्तश्च तत्त्वतः॥७॥

प्रमाणमित्यनुवर्तमानमत्र षष्ठ्यन्तमभिसम्बध्यते। अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति न्यायात्। अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थो विषयो भवति। कस्य प्रमाणस्य। कः बहिरचेतनो घटादिः। न केवलं बहिः अपि तु अन्तश्च अन्तश्चेतन आत्मा च प्रमाणस्य स्वार्थव्यवसायात्मकत्वेन प्रतिपादितत्वात्। किंविशिष्टः द्रव्यपर्यायात्मा द्रव्यमन्विताकारः पर्या-

यश्च व्यावृत्ताकारस्तावात्मानौ स्वभावौ धर्मौ यस्य स तथोक्तः। कथं तत्त्वतः परमार्थत न कल्पनयेत्यर्थः। कुतस्तत्कस्माद्धेतोः अर्थत्वान्यथानुपपत्तेरित्यर्थः। तथाहि प्रमाणार्थो जीवादिर्द्रव्यपर्यायात्मा प्रमाणार्थत्वात्। यो द्रव्यपर्यायात्मा न भवति स न प्रमाणार्थो यथा वन्ध्यास्तनन्धयः। प्रमाणार्थश्च जीवादिस्तस्मात् द्रव्यपर्यायात्मेति। न खल्वेकान्ततो द्रव्यमेव पर्याय एव परस्परनिरपेक्षं तद्द्वयमेव वाऽर्थक्रियासमर्थं यतः प्रमाणविषयः स्यात्। तत्तदेकान्ते क्रमयौगपद्यविरहेणार्थक्रियानुपपत्तेः। तयोरनेकान्तेन व्याप्तत्वात्तदभाव्यानुपपत्तेः। ताभ्यां चार्थक्रियाया व्याप्यत्वात्। तथा च प्रमेयस्य व्याप्यत्वात्। व्यापकानुपलम्भः परम्परयाऽपि व्याप्याभावं साधयत्येव। व्याप्योपलब्धिर्वा व्यापकविधिं साधयति किं नश्चिन्तया। नन्वर्थक्रिया प्रमेयस्य कथं व्यापिकेति चेन्न। उत्पादव्ययध्रौव्यपरिणतिलक्षणार्थक्रियायामेव बहिरन्तर्वाऽर्थे प्रमाणप्रवृत्तेः। अन्यथा गृहीतग्राहित्वेन निर्विषयत्वेन च ज्ञानानामप्रामाण्यात् असत्त्वाच्च। न खलु तादृगर्थक्रियां विना सत्त्वं स्वप्नेऽप्युपलब्धम्। न ह्यसत्प्रमेयमतिप्रसङ्गात्। न वनेकान्तः क्रमयौगपद्ययोः कथं व्यापक इति चेन्न। पर्यायापेक्षया देशकालक्रमस्य द्रव्यापेक्षया च यौगपद्यस्य सम्भवात्। ननु वैशेषिकमते भेदैकान्ते द्रव्यपर्याययोः प्रमेयत्वमविरुद्धमेव। तथाहि द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः षट् पदार्था भाव-

रूपाः। तत्र द्रव्यं नवविधं। गुणाश्चतुर्विंशतिः। कर्माणि पञ्च। सामान्यं द्विधा। विशेषा अनेके। समवाय एक इति। अभावरूपास्तु चत्वारः प्रागभावप्रध्वंसाभावेतरेतराभावात्यन्ताभावा इति। सोऽयं सदसद्वर्गः परस्परमत्यन्तभिन्नः प्रमाणार्थ, इति चेन्न। अत्यन्तभेदे सम्बन्धानुपपत्तेः। समवायोऽस्तीति चेन्न तस्य सर्वसाधारण्येनानियामकत्वात्। यथैव हि ज्ञानादीनामात्मनि समवायस्तथा पृथिव्यादावपि तत्प्रसङ्गात्। किं च द्रव्याद्भिन्नानां गुणानामद्रव्यत्ववत् सत्तासामान्याद्भिन्नानां द्रव्यादीनामप्यसत्त्वं किं न स्यात् विशेषाभावात्। द्रव्यमनुगतस्वरूपं चेत्सामान्यमेव। व्यावृत्तस्वरूपत्वे तु विशेष एव। एवं गुणादिष्वपि योज्यमिति। पदार्थद्वैतप्रसङ्गश्च। नीरूपः प्रमाणार्थोऽनुपपन्न एव। अन्यथा केशोण्डुकज्ञानादीनां निर्विषयाणामपि प्रामाण्यप्रसङ्गात्। अभावप्रमाणभावो विषयोऽस्तीति चेत् केशोण्डुकज्ञानेऽपि केशोण्डुकमविशेषात्। तत्र केशोण्डुकस्य कल्पितत्वान्मिथ्यात्वमिति चेदभावस्यापि नीरूपत्वान्मिथ्यात्वं किं न स्यात्। अतो दुराग्रहग्रहं परित्यज्य भावाभावात्मक एव कथञ्चित्प्रमाणार्थोऽनुमन्तव्यः। तन्न वैशेषिकमतं सुमतं दृष्टेष्टविरोधात्। अथ प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानेषु षोडशपदार्थेषु नैयायिकमतेषु आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमन प्रवृत्तिदोष-

प्रेत्यभावफलदुःखापवर्गभेदात् द्वादशविधस्य प्रमेयत्वमुपपद्यत इति चेन्न। अत्रापि भेदैकान्ते सम्बन्धानुपपत्तेः। इन्द्रिय-बुद्धिमनसामर्थोपलब्धिसाधनत्वेन प्रमेयत्वानुपपत्तेश्च। आत्म-नश्च प्रमातृत्वात्, प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं प्रमितिरित्यन्तर्भे-दोपगमात्। संशयादीनामप्रमेयत्वे च व्यवस्थानुपपत्तेः। भेदैकान्ते सङ्ग्रहविरोधात्। प्रत्यक्षादीनामनन्तर्भावाच्च। तन्न षोडशपदार्थव्यवस्था सम्भवति।

तत्त्वचतुष्टयं प्रमेयं चार्वाकपरिकल्पितमत्यन्तभिन्नं युज्यत इति चेन्न। जीवतत्त्वस्य पञ्चमस्य सद्भावात्। तेषां परस्पर-तोऽत्यन्तभेदासम्भवाच्च। तत्त्वद्वयव्यवस्थानात्। पृथिव्या-दिविकार एव चैतन्यं न तत्वान्तरमिति चेत् महदद्भुतमिदं यदत्यन्तविलक्षणयोर्भूतचेतनयोरभेदः सलक्षणानां च पृथि-व्यादीनां भेद इति। संविल्लक्षणं हि चैतन्यं स्पर्शादिलक्षणानि भूतानीति भेदस्य स्पर्शादिमत्त्वेन तेषामभेदस्य च प्रतीतेः। नन्वस्तु भेदैकान्तेऽयं दोषः। अभेदैकान्ते द्रव्यपर्याययोः प्रमेयत्वं युक्तं भेदानामविद्याकल्पितत्वात्। अनवस्थानाच्च। न खलु भेदा अनन्ताः प्रमीयन्तेऽशक्यत्वात्। प्रत्यक्षेण हि निर्विशेषं प्रमीयते। कल्पना पुनस्तत्र भेदान् कल्पयति ततोऽद्वैतमेव तत्त्वमिति ब्रह्माद्वैतिनो ज्ञानाद्वैतिनश्च मन्यन्ते। तदपि प्रमाणबाधितमेव। क्रियाकारकभेदाभावेऽर्थक्रियानुप-पत्तेः। असत्त्वात् यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसदिति-

वचनात्। अद्वैतशब्दः स्वाभिधेयप्रत्यनीकाविनाभावी नञ्पूर्वाखण्डपदत्वादगौरित्यादिपदवदित्याद्यनुमानबाधितत्वाच्च। कर्मफलपरलोकादिभेदविरोधाच्च। किञ्च द्वैतसिद्धिः साधनात्तद्विना वा? यदि साधनात् द्वैतप्रसङ्गः साध्यसाधनयोर्भेदेन प्रवृत्तेः। तद्विनेति चेत् वाङ्मात्रेण सर्वं सर्वस्यापि यथेष्टं सिध्यति। ततो नाद्वैतैकान्ते प्रमेयत्वं प्रमाणविरोधात्। ननु सांख्यपरिकल्पितेऽभेदैकान्ते प्रकृत्यादितत्त्वस्य प्रमेयत्वमुपपन्नं सर्वत्राविर्भावतिरोभाववशात्प्रधानपरिणामसम्भवादिति चेत्तदप्यसङ्गतम्। अभेदैकान्ते खल्वाविर्भावतिरोभावयोरेवासम्भवात् कौतस्कुतः परिणामः। प्रकृतिपुरुषयोरपि भेदाभावप्रसङ्गात्। अर्थक्रियानुपपत्तेश्च। नह्यभेदैकान्तेऽर्थक्रिया सम्भवति क्रमाभावात्। तदेवं भेदैकान्ततदभेदैकान्तेऽपि प्रमेयत्वस्यासम्भवात्तत्त्वतो द्रव्यपर्यायात्मकमेव चेतनाचेतनात्मकं प्रमेयमिति सुस्थितम्॥

अथैकान्तेऽर्थक्रियाविरोधितामेव सुलक्षणं प्ररूपयति—

अर्थक्रिया न युज्येत नित्यक्षणिकपक्षयोः॥
क्रमाक्रमाभ्यां भावानां सा लक्षणतया मता १

अर्थस्य कार्यस्य क्रिया करणं निष्पत्तिर्न युज्येत न युक्तिमधिरोहेत्। केषां भावानां चेतनाचेतनपदार्थानां। काभ्यां क्रमाक्रमाभ्यां क्रमो देशकालव्याप्तिः अक्रमश्च यौगपद्यं ताभ्यां

त्वाभित्येत्यर्थः। कयोः नित्यक्षणिकपक्षयोः नित्यपक्षः सर्वथा कौटस्थ्यपरिग्रहः। क्षणिकपक्षस्तु सर्वथाऽनित्याभिनिवेशः तयोर्द्वयोरपि। तथाहि न खलु कूटस्थनित्यस्य क्रमेण कार्यकरणमुपपन्नं सर्वकार्याणामेककार्योत्पादनकाले एव तस्योत्पादनसामर्थ्यात् सहकारिसान्निध्यस्याकिञ्चित्करत्वात्। तदा तत्करणसामर्थ्याभावे नित्यत्वहानिप्रसङ्गात्। असमर्थस्वभावपरित्यागेन समर्थस्वभावोपादानेन च परिणममानस्यैवानित्यत्वात्। नापि यौगपद्येन, पूर्वसमये कृतकृत्यत्वेन तस्योत्तरसमयेऽप्यर्थक्रियाविरहात् असत्त्वप्रसंगात् स्वभावनानात्वप्रसङ्गाच्च। न ह्येकेनैव स्वभावेनानेककार्यकरणं युक्तमतिप्रसङ्गात् कार्याभेदप्रसङ्गाच्च। सहकारिवैचित्र्यात्कार्यवैचित्र्यमित्यप्ययुक्तं स्वभावमभिन्दतां सहकारित्वानुपपत्तेः। ततः क्रमयौगपद्यविरहादर्थक्रियाविरहः सिद्ध एव सर्वथानित्यपक्षे इति तस्यासत्त्वमेवेत्यर्थः। व्यापकानुपलम्भस्य व्याप्याभावं प्रति गमकत्वात्॥ क्षणिकस्यापि न क्रमेण कार्यकारित्वं देशकालक्रमस्य तत्रासम्भवात्॥ यो यत्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः॥ न देशकालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह विद्यते॥ १॥ इति वचनात्॥ अन्यथा क्षणिकत्वविरोधात्। सन्तानापेक्षया क्रमोऽस्तीति चेन्न। तस्यावस्तुत्वात्। किञ्च संतान एव कार्यकारी स्वलक्षणं वा स्यात्? आद्यपक्षे तस्यैव वस्तुत्वात् किं क्षणिकवस्तुकल्पनया। द्वितीयपक्षे तु सन्तानस्यावस्तु-

त्वात्तदपेक्षं क्रमेण कार्यकारित्वमप्यवास्तवं स्यात्। तृतीयपक्षे कथञ्चिन्नित्यानित्यात्मकत्वं वस्तुन आयातम्। तन्न क्रमेण कार्यकारित्वं क्षणिकस्य। नापि यौगपद्येन विभ्रमप्रसङ्गात्। कारणकाल एव कार्यस्योत्पत्तेस्तत्कार्यस्यापि तदैवोत्पत्ते-रिति। ननु मा भून्नित्यक्षणिकपक्षयोरर्थक्रिया का नो हानिरित्याशंक्याह- सेत्यादि- साऽर्थक्रिया ज्ञप्त्युत्पत्तिलक्षणा भावानां सद्भूतानामर्थानां। लक्षणतया लक्ष्यते ज्ञायते अनेनेति लक्षणं लिङ्गमित्यर्थः। तस्य भावो लक्षणता तया लिङ्गत्वेन मता सकलास्तिकैरभ्युपगता व्यापकत्वात्। व्यापका-नुपलम्भश्च नित्यक्षणिकपक्षयोर्व्याप्यस्य सत्त्वस्य निषेधं साध-यतीति भावः। तथैवाख्यानात्। सत्त्वं हि प्रत्यक्षसिद्धं बहिरन्तश्च स्वव्यापिकामर्थक्रियां गमयति। साऽपि ध्रौव्यो-त्पादव्ययपरिणतिलक्षणा क्रमयौगपद्ये स्वव्यापके ज्ञापयति। ते च स्वव्यापकमनेकान्तं साधयतः। तद्विरुद्धं च सर्वथैकान्तं निषेधयत इति भावः। तत उत्पादव्ययध्रौव्यपरिणामवत एवा-र्थक्रियासम्भवाद्द्रव्यपर्यायात्मा प्रमाणविषय इति सुस्थितम्॥

ननु कथमेकस्यानेकाकारव्यापित्वमेकार्थक्रियाकारित्वं च अनेकत्वे वा कथमेकत्वं विरोधात् इति प्रत्यवस्थामवहस्तयन् अनेकान्ते विरोधाभावं दर्शयति—

नाभेदेऽपि विरुध्येत विक्रियाऽविक्रियैव वा॥

नैव विरुध्येत प्रत्यक्षादिना न बाध्येत। का विक्रिया विशेषेण कालभेदेन क्रिया पूर्वोत्तराकारपरिहारस्थितिलक्षण-परिणतिः। न केवलं विक्रिया, अपित्वविक्रिया वा युगपदनेकाकारव्याप्तिलक्षणाऽपि नैव विरुध्येत। क अभेदेऽपि कथंचित् द्रव्यार्थिकनयापेक्षया विवक्षितेऽभेदेऽन्वयेऽनुगताकारेऽपि। तदपेक्षया वस्तुधर्माणामव्यतिरेकात् यदेव हि मृदेकद्रव्यं पिण्डाद्याकारपरिणतं तदेव तमाकारं परिहरत् घटाकारमुत्तरमास्कंदत्प्रतीयते। न च प्रतीयमाने विरोधः शक्यः कल्पयितुं तस्यानुपलम्भसाध्यत्वात्। अपिशब्दाद्भेदेऽपीत्याक्षिप्यते। कथंचित् पर्यायार्थिकनयविवक्षया भेदे व्यतिरेकेऽपि द्रव्यपर्याययोरर्पिते क्रमयौगपद्ये न विरुध्येते यतोऽर्थक्रिया विरुध्येत। पूर्वाकारनिवृत्तावेवोत्तरपर्यायप्रादुर्भावात्। अन्यथा संकरादिदोषप्रसंगात्। तदेवं कथंचिद्भेदाभेदात्मकं नित्यानित्यात्मकं सदसदात्मकं च तत्त्वमभ्युपगंतव्यम्। तत्रैवार्थक्रियासंभवनादन्यथा विरोधात्॥

एतदेवानेकान्तात्मकत्वं वस्तुनः सौगताभिप्रेतदृष्टान्तबलेन समर्थयते—

मिथ्येतरात्मकं दृश्यादृश्यभेदेतरात्मकं। [illegible]॥
चित्रं सदसदात्मैकं तत्त्वं साधयति स्वतः॥

विज्ञानवादिनो बौद्धा एवमभिमन्यंते— ज्ञानं बहिरा-

कारविषयत्वेन मिथ्या स्वरूपालंबनत्वेनामिथ्या। स्वरूपापेक्षयाऽदृश्यं ग्राह्याकारापेक्षया दृश्यं। ग्राह्यग्राहकाकारापेक्षया भेदः संवेदनापेक्षया चाभेद इति। एवं मिथ्यामिथ्यात्मकं दृश्यादृश्यात्मकं भेदाभेदात्मकं च चित्तं ज्ञानं स्वतः स्वरूपेण साधयति ज्ञापयति। किं तत्त्वं जीवाजीवादि। किंविशिष्टं सदसदात्म सत्सत्त्वं असदसत्त्वं ते आत्मानौ स्वभावौ यस्य तत्तथोक्तं। ननु द्रव्यादिसदात्मकं प्रागभावादि चासदात्मकं भिन्नमेव तत्त्वं द्वयमेव सिद्धमिति। तद्व्यवच्छेदार्थमाह— एकमभिन्नं प्रमाणादेशादेकमपि द्रव्यपर्यायार्थादेशात्सदसदात्मकं जीवादि तत्त्वं प्रसिद्धं प्रमाणबलाच्चित्रज्ञानवदित्यर्थः। यतश्चित्रज्ञानमेकमपि मिथ्येतराद्यनेकात्मकमविरुद्धं तद्वज्जीवाद्यपि सदसदात्मकमविरुद्धमुपलंभात्। एवमेकानेकात्मकं नित्यानित्यात्मकं च वस्तु न्यायबलादनुमंतव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यपरिणतिलक्षणार्थक्रियान्यथानुपपत्तेरिति भावः। अतो विरोधाभावाद्वैयधिकरण्यमपि निराकृतमेव। एकाधिकरणत्वेन सदसदादिधर्माणामुपलब्धेः। ननु येन रूपेण सत्त्वं तेन सत्त्वासत्त्वयोरनेकांतात्प्रसंगः संकर इति चेन्न। अर्पणाभेदात्। स्वरूपाद्यर्पणया सत्त्वस्यैव पररूपाद्यर्पणया चासत्त्वस्यैव विधानात्। प्रमाणार्पणयैवोभयात्मकत्वप्रतिपादनात्। एतेन व्यतिरेकोऽप्यनेकांते निरस्तः। स्वद्रव्यादिविवक्षयाऽसत्त्वस्याप्रतिपादनात्॥ स्या-

न्मतं— सत्त्वासत्त्वयोर्वस्तुनो भेदाभेदात्मकत्वात्तयोरपि ततोऽ
परभेदात्मकत्वकल्पनायामनवस्थाप्रसंगादिति । तदेतदविचा-
रितवचनं । द्रव्यार्थिकनयविवक्षया हि वस्त्वभेदात्मकं प्रति-
पाद्यते । अभेदश्च द्रव्यमेव, नच तस्यापरं द्रव्यांतरं रूप-
मस्ति । पर्यायार्थिकनयविवक्षया तु भेदात्मकं । भेदश्च
पर्याय एव, न चास्यान्यत्पर्यायांतरं रूपं येनानवस्था
स्यात् आदेशवशात् प्रतिनियतधर्मव्यवस्थानात् । प्रमाण-
विवक्षया हि वस्त्वनेकांतात्मकं तत्रानवस्थानस्याप्यदोष-
त्वात् । मूलक्षतेरभावात् । व्यवहारोपयोगि स्वरूपं हि
मूलमुच्यते । तच्च द्रव्यं पर्यायस्तदात्मकं वस्तु वा तत्त-
न्नयप्रमाणप्राधान्यात्सिद्धं व्यवहाराय कल्पते इति । वस्तु-
न्यनंतधर्माणां व्यवहारानुपयोगात् यतस्तदनवस्था दोषाय
स्यात् । ज्ञातृशक्तिवैकल्याच्चानवस्थानं वस्तुधर्माणां तत्सा-
कल्यं तु कस्यचित्सर्वं सुस्थितमेव सकलप्रमाणप्रमेयप्रपञ्चव्या-
पित्वात्तज्ज्ञानस्य । तन्नानवस्थादोषोऽनेकांते संभवति । ननु
वस्तुन्यनेकांतात्मनि इदमित्थमिति निर्णयाभावात् संशयः
स्यात्ततस्तत्सत्त्वासिद्धिरिति चेन्न । नयार्पणायां सदेव
सर्वं स्वरूपादिचतुष्टयापेक्षया । असदेव सर्वं पररूपादि-
चतुष्टयापेक्षयेति निर्णयसद्भावात् । प्रमाणार्पणायां त्वनेकां-
तात्मकं सर्वमित्यपि निर्णयात् । असदारोपो हि संशयो
नाम नायमनेकांतोऽसन् प्रमाणसिद्धत्वात् । यत उभयात्मक-

ग्रहणं संशयः स्यात्तन्न वस्तुनो भावः प्रकल्पेत निर्णीतस्य भावात्मकत्वात् । ततो विरोधादिदोषरहितमनेकांतात्मकमेकाशीतिविकल्पं वस्तु स्थित्युत्पादव्ययात्मकत्वादवगंतव्यं । भूतभवद्भाविकालभेदात्प्रत्येकं स्थित्यादीनां त्रिविधत्वेन नव भेदाः। तथाहि स्थितं तिष्ठति स्थास्यति । उत्पन्नं उत्पद्यते उत्पत्स्यते । नष्टं नश्यति नंक्ष्यतीति । तत्परिणामानां स्थितत्वादीनां नवानामपि प्रत्येकं स्थितादिनवप्रकारसम्भवादेकाशीतिविकल्पोपपत्तेः । तदेवं सुस्थितो बहिरन्तश्च प्रमाणार्थो द्रव्यपर्यायात्मेति ॥

अकलंकप्रभाव्यक्तं प्रमेयमखिलं पुनः ।
पश्यंति मादृशाः किं न प्रबुद्धाः शुद्धदृष्टय. ॥ १ ॥

इत्यभयचंद्रसूरिकृतौ लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तौ स्यद्वादभूषणसंज्ञायां प्रमाणविषयपरिच्छेदो द्वितीयः ॥ २ ॥

अथेदानीं परोक्षस्य कारणभेदप्ररूपणामाह--

ज्ञानमाद्यं मतिस्संज्ञा चिंता चाभिनिबोधनं ॥
प्राङ्नामयोजनाच्छेषं श्रुतं शब्दानुयोजनात् १

शेषं यदविशदं परोक्षमित्युक्तं तदित्यर्थः । कतिधा स्मृतिः संज्ञा चिंता आभिनिबोधकं श्रुतं चेति चशब्देन स्मृतेः समुच्चयात् । एतच्च पंचविधं परोक्षं नामयोजनात्प्राक् शब्दप्रयोगात् पूर्वमुत्पद्यत इत्यध्याहारः । चशब्दो भिन्नप्रक्रमत्वेनात्रापि

संबध्यते । न केवलमेवमपि तु शब्दानुयोजनाच्च शब्दोच्चारमात्र समुत्पद्यते इत्यर्थः । तस्य कारणमाह— मतिः मतिसंज्ञं ज्ञानं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षमाद्यं कारणमित्यर्थः । तत्र धारणाबलोद्भूताऽतीतार्थविषया तदिति परामर्शिनी स्मृतिः । न स्मृतिः प्रमाणं गृहीतग्राहित्वादिति चेन्न । तद्विषयस्यातीताकारस्य प्रत्यक्षादिनाऽगृहीतत्वात् । असति प्रवृत्तेः स्मृतेरप्रामाण्यमित्यप्यचारु । देशादिविशेषेण सत एव ग्रहणात् सर्वथाऽसत्त्वानुपपत्तेः । अन्यथा प्रत्यक्षविषयस्याप्यसत्त्वमसंगात् । ततः स्मृतिः प्रमाणं प्रत्यभिज्ञानप्रामाण्यान्यथानुपपत्तेः । किं पुनः प्रत्यभिज्ञानमिति चेदुच्यते । प्रत्यक्षस्मृतिहेतुकं संकलनमनुसंधानं प्रत्यभिज्ञानं संज्ञा । यथा स एवायं देवदत्तः, गोसदृशो गवयः, गोविलक्षणो महिषः, इदमस्मादल्पं, इदं महत्, इदमस्माद् दूरं, इदमस्मात्प्रांशु, वृक्षोऽयमित्यादि पूर्वोत्तराकारव्यापिनो द्रव्यस्य तद्विषयस्य दर्शनस्मरणाभ्यामगृहीतत्वात् । तर्कप्रमाणान्यथानुपपत्तेश्च प्रत्यभिज्ञानं प्रमाणं । अन्यथा दत्तग्रहादिसकलव्यवहारविलोपापत्तेः । कः पुनस्तर्क इति चेदुच्यते । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां व्याप्तिज्ञानं दर्शनस्मरणाभ्यामगृहीतप्रत्यभिज्ञाननिबंधनं तर्कः चिंता, यथाऽग्नौ सत्येव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति ॥

नन्वविनाभावस्य प्रत्यक्षेणानुमानेन वा निर्णयात्किमिति तर्काख्यं प्रमाणांतरं परिकल्पितमित्याशंकायामाह—

अविकल्पधिया लिंगं न किंचित्संप्रतीयते ॥
नानुमानादसिद्धत्वात् प्रमाणांतरमांजसं ॥ २ ॥

लिंगं साध्यसाधनयोरविनाभावः। किंचिदीषदपि। न संप्रतीयते न सामस्त्येन ज्ञायते। कया अविकल्पधिया निर्विकल्पकप्रत्यक्षेण सौगताभिप्रेतेन। यावान् कश्चिद्धूमः स सर्वोऽपि अग्निजन्मैवानग्निजन्मा वा न भवतीत्येतावद्विकल्पविकलत्वात् तस्य। अन्यथा सविकल्पकत्वापत्तेः। नन्वस्तु सविकल्पकात्प्रत्यक्षादविनाभावनिर्णय इत्यप्ययुक्तं। तस्यापि संबंधवर्तमानविषयत्वेन देशकालांतरव्यवहितसाध्यसाधनव्यक्तिगतव्याप्तिविकल्पानुपपत्तेः। तन्न प्रत्यक्षेणाविनाभावनिर्णयः। नाप्यनुमानात् तस्यैवासिद्धत्वात्। व्याप्तिग्रहणपूर्वकत्वादनुमानोत्थानस्य। अनुमानांतरात्तत्राप्यविनाभावनिर्णये चानवस्थाप्रसंगात्। प्रथमानुमानात् द्वितीयानुमाने व्याप्तिनिर्णय इति चेत्सोऽयं परस्पराश्रयदोषः। तन्नानुमानमपि व्याप्तिग्राहकमिति तद्ग्राहकं प्रमाणांतरं तर्काख्यं। आंजसं पारमार्थिकं न मिथ्या विकल्पात्मकमभ्युपगंतव्यं। अन्यथाऽनुमानप्रामाण्यायोगात् ॥

किं पुनरनुमानं प्रमाणमित्यनुयोगे सूत्रमिदमाह—

लिंगात्साध्याविनाभावाभिनिबोधैकलक्षणात्।
लिंगिधीरनुमानं तत्फलं हानादिबुद्धयः ॥ ३ ॥

अनुमानं प्रमाणं भवति। किं लिंगिधीर्लिंगिनः साध्यस्य धीर्ज्ञानमित्यर्थः। लिंगमविनाभावसंबंधोऽस्यास्तीति लिंगीति विग्रहात्। तस्योत्पत्तिकारणमाह— लिंगात् साधनात्। साध्याविनाभावाभिनिबोधैकलक्षणात् साध्येन इष्टाबाधितासिद्धरूपेण सहाविनाभावोऽन्यथानुपपत्तिनियमः तस्याभितो देशकालांतरव्याप्त्या निबोधो निर्णयः स एकं प्रधानं लक्षणं स्वरूपं यस्य तत्तथोक्तं तस्माल्लिंगादुत्पद्यमाना लिंगिधीरनुमानमित्यर्थः। नन्वस्य तर्कफलत्वात्कथं प्रमाणत्वमित्याशंक्याह— तत्फलं हानादिबुद्धयः हानं परिहारः आदिशब्देनोपादानमुपेक्षा च गृह्यते। तासां बुद्धयो विकल्पास्तस्यानुमानस्य फलं भवंति। ततः फलहेतुत्वादनुमानं प्रमाणं प्रत्यक्षवदित्यभिप्रायः। न चास्याप्रामाण्ये प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमुपपन्नं अगौणत्वादिहेतुप्रयोगानुपपत्तेः। क्वचिदभ्यस्तविषये स्वतःप्रामाण्यसिद्धावपि तस्यानभ्यस्तविषयेऽनुमानत एव तत्सिद्धिः। परलोकादिनिषेधस्याप्यनुपलब्धिसाध्यत्वेन नानुमानमपलापार्हं। परचैतन्यप्रतिपत्तौ वा व्यवहारादिलिंगजानुमानप्रामाण्यात्। तन्नानुमानमप्रमाणं कल्पनीयं युक्तिविरोधात्। ननु पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षाद्व्यावृत्तिरिति रूपत्रयस्य हेतुलक्षणत्वादेकलक्षणत्वमनुपपन्नं। अन्यथाऽसिद्धविरुद्धानैकांतिकदोषाव्यवच्छेदादिति चेन्न असाधारणस्वरूपस्यैव लक्षणत्वात्। न खलु रूपत्रयमसाधारणं

स श्यामस्तत्पुत्रादित्यादौ हेत्वाभासेऽपि दर्शनात्। विवादाध्यासिते तत्पुत्रे अन्यत्र श्यामे च तत्पुत्रत्वात्। अश्यामे च क्वचित्तत्पुत्रत्वस्यासत्त्वात्। अत्र विपक्षाद्व्यावृत्तेर्नियमाभावादहेतुलक्षणत्वमिति चेन्न स एवाविनाभावस्तल्लक्षणमस्तु किमन्येनांतर्गड्डुना। तदुक्तं—

"अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं" इति।

अनेनासत्प्रतिपक्षत्वमबाधितविषयत्वमपि तल्लक्षणं निरस्तं अविनाभावाभावे गमकत्वायोगात्। सोऽप्यविनाभावो द्वेधा वर्तते सह क्रमेणचेति। तत्र सहाविनाभावः सहचारिणो रूपरसयोर्व्यापकयोश्च वृक्षत्वशिंशिपात्वयोः साध्यसाधनयोर्वर्तते। क्रमाविनाभावस्तु पूर्वोत्तरचरयोः कृत्तिकोदयशकटोदययोः कार्यकारणयोर्धूमधूमध्वजयोश्च वर्तते॥

ननु तादात्म्यतदुत्पत्तिभ्यामविनाभावो वर्तते। ततो व्याप्यमेव व्यापकस्य लिंगं कार्यं च कारणस्येति द्विविधमेव विधिसाधनमिति सौगतविप्रतिपत्तिं निराकुर्वन् कारणस्यापि लिंगत्वमाह-

चंद्रादेर्जलचंद्रादिप्रतिपत्तिस्तथाऽनुमा॥ ४॥

चंद्र आदिर्यस्यादित्यादेरसौ चंद्रादिस्तस्मात्कारणभूतात्। जले स्वच्छांभसि। चंद्रादेश्चंद्रादिप्रतिबिंबस्य। प्रतिपत्तिरवबोधोऽनुमानमनुमंतव्यमव्यभिचारात्। किंवत् तथा कार्यात्कारणप्रतिपत्तिवत्। अविनाभावो हि गम्यगमकभावनि-

बंधनं । न कार्यत्वमन्यद्वा । अविकलसामर्थ्यस्य कारणस्य कार्यजननं प्रत्यव्यभिचारात् । न खलु पादपस्यातपच्छायाव्यभिचारो मणिमंत्राद्यप्रतिबद्धसामर्थ्यस्याग्नेः स्फोटादिव्यभिचारो वाऽस्ति । अन्यथा न कदाऽपि कार्योत्पत्तिरित्यसत्त्वमेव वस्तुनः स्यात् । अर्थक्रियाविरहात् ॥

इदानीं पूर्वचरस्यापि लिंगत्वं ख्यापयन्नाह—

भविष्यत्प्रतिपद्येत शकटं कृत्तिकोदयात् ॥
श्व आदित्य उदेतेति ग्रहणं वा भविष्यति ५

सोपस्काराणि हि सूत्राणि । तदेवं व्याख्यायते । शकटं रोहिणी धर्मी । मुहूर्तांते भविष्यदुदेष्यदिति साध्यधर्मः । कुतः? कृत्तिकोदयादिति साधनं । न खलु कृत्तिकोदयः शकटोदयस्य कार्यं स्वभावो वा । केवलमविनाभावबलाद्गमयत्येव स्वोत्तरचरमिति प्रतिपद्येतानुमन्येत सर्वोऽपि जन इति । तथा श्वः प्रातरादित्यः सूर्यः । उदेता उदेष्यति । अद्यादित्योदयादिति प्रतिपद्येत । तथा श्वो ग्रहणं राहुस्पर्शो भविष्यति एवंविधफलकांकादिति वा प्रतिप्रद्येत । सर्वत्राव्यभिचारात् । क्रमभावनियमस्य कार्यकारणवत् पूर्वोत्तरचरयोरप्यविरोधात् । तदेवं पक्षधर्मत्वादिकं विनाऽपि हेतोरन्यथानुपपत्तिसामर्थ्याद्गमकत्वसंभवात् । कार्यस्वभावानुपलब्धिभेदात् त्रैविध्यनियमोऽपि लिंगस्यापास्तः । अनेनैव कारणं

कार्यं संयोगि समवायि विरोधि चेति पंचधा लिंग-
मिति नैयायिकमतमप्यपाकृतं । उक्तहेतूनामत्रानंतर्भावात् ।
मात्रामात्रिककार्यविरोधसहचारिस्वस्वामिवध्यघातकसंयोगिभे-
दात्सप्तधा लिंगमिति सांख्यकल्पितांगसंख्यानियमोऽपि न
संभवतीति ज्ञेयं ॥

अथेदानीं दृश्यानुपलब्धिरिव निषेधसाधनं नादृश्यानुपल-
ब्धिरित्येकांतं निराकुर्वन्नाह—

अदृश्यपरचित्तादेरभावं लौकिका विदुः ॥
तदाकारविकारादेरन्यथानुपपत्तितः ॥ ६ ॥

विदुर्जानंति । के लौकिकाः अपिशब्दोऽत्र द्रष्टव्यः ।
तेन लौकिका गोपालादयोऽपि किं पुनः परीक्षका इत्यर्थः ।
कं अभावं असत्तां । कस्य अदृश्यपरचित्तादेः परेषामातुराणां
चित्तं चैतन्यमादिर्यस्यासौ परचित्तादिः । अदृश्यश्चासौ परचि-
त्तादिश्च स तथोक्तस्तस्य । आदिशब्देन भूतग्रहव्याधिप्रकृ-
तिर्गृह्यते । यस्य सूक्ष्मस्वभावः । कुतः तदित्यादि । तस्य
परचित्तादेः कार्यभूतोऽविनाभावी आकार उष्णस्पर्शादिलक्षण-
स्तस्य विकारोऽन्यथाभाव आदिर्यस्य वचनविशेषारोग्यादे-
स्तस्यानुपपत्तितः असंभवात् । कथं अन्यथा अदृश्यपरचित्ता-
देरभावं विना । न खलु परचित्तभूतव्याध्यादयो दृश्यंते
सूक्ष्मत्वात् । नाप्यदृश्यस्याभावः साधयितुमशक्योऽन्यथा

संस्कर्तृणां पातकित्वप्रसंगात् । तद्भावेऽप्यनाश्वासात् । यथैव स्वभ्यस्तस्वर्गाद्याकारोपलंभात्परचित्तादेर्भाव: साध्यते तथा तदनुपालंभादभावोऽपीत्यर्थ: । ननु कार्योपलब्धे: कारणसत्ता सुघटा साधयितुं न तु तदनुपालंभात् कारणाभाव: । कारणस्य कार्येण सहाविनाभावाभावादिति चेन्न । एवं निर्बंधाभावात् । कार्यजननसमर्थस्य कारणस्य तेनाविनाभावोपपत्ते: । सति समर्थे कारणे कार्यस्यावश्यं भावात् । अन्यथा न कदापि कार्योत्पत्तिरिति सर्वस्यार्थक्रियाकारित्वाभावात् शून्यताप्रसंगात् । तत उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदाल्लिंगं द्विविधं । तत्रोपलब्धिर्विधौ साध्ये षोढा प्रतिषेधे च तथा । अनुपलब्धिश्च प्रतिषेधे सप्तधा । विधौ तु त्रिधेति सुव्यवस्थितं । सर्वत्राविनाभावनियमनिश्चयैकलक्षणत्वाद्गमकत्वसिद्धे: । नन्वदृश्यानुपलब्धेरभावे संशय एव स्यादिति चेन्न । एवमुपलब्धे: स्वचित्ताभावेऽपि संशयप्रसंगात् । किंच बहिरंतश्च निरंशं तत्त्वं न प्रमाणपदवीमधिरोहति । क्रमाक्रमाभ्यामनेकस्वभावे बहिरंतस्तत्त्वे प्रमाणस्य प्रवृत्ते: । तत: प्रमाणबाधितविषयत्वात्सौगतपरिकल्पितं सर्वं सत्त्वादिसाधनमकिंचित्करं विरुद्धमेव वा स्यादिति कुतस्तन्मतेऽनुमानस्य प्रामाण्यमिति ॥

ननु स्याद्वादिनामप्यनेकात्मकस्य तत्त्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वादनुमानवैफल्यप्रसंग इत्याशंकायामिदमाह—

वीक्ष्याणुपारिमांडल्यक्षणभंगाद्यवीक्षणं ॥
स्वसंविद्विषयाकारविवेकानुपलंभवत् ॥ ७ ॥

वीक्ष्यमुपलब्धिलक्षणप्राप्तं स्थूलं तस्याणवः सूक्ष्मा भावा अवयवास्तेषां पारिमांडल्यं वर्तुलत्वमन्योन्यविवेकः क्षणेक्षणे भंगः क्षणभंगः समयं प्रति नाश इत्यर्थः। स आदिर्यस्य कार्यकारणसामर्थ्यादेरसौ तथोक्तः वीक्ष्याणुपारिमांडल्यं च क्षणभंगादिश्च तत्तथोक्तं। तस्यावीक्षणं प्रत्यक्षेणानुपलंभोऽशक्तिः। न खलु सांव्यवहारिकप्रत्यक्षेण क्षणभंगादिर्वीक्ष्यते तेन स्थिरस्थूलसाधारणाकारस्यैव वीक्षणात्। योगिप्रत्यक्षस्यैव तद्वीक्षणसामर्थ्यात्। ततस्तत्रानुमानमेव जागर्ति तस्य तन्निर्णयसामर्थ्यादित्यर्थः। सत्त्वात्प्रमेयत्वादर्थक्रियाकारित्वादित्यादिहेतूनां कथंचिदनेकानित्यादिधर्मव्याप्यत्वात्तद-विनाभावप्रसिद्धेः। प्रकृतार्थे दृष्टांतमाह— स्वसंविदित्यादि। स्वसंवित्स्वसंवेदनं तस्या विषयाकारो घटाद्याकारस्तस्माद्विवेको व्यावृत्तिस्तस्यानुपलंभः प्रत्यक्षेणाग्रहणं तद्वत्। यथा ज्ञानस्य स्वरूपप्रतिभासने बहिरर्थाकारनिवृत्तिर्विद्यमानेनापि न प्रतिभासते सौगतानां तस्य तादृक्सामर्थ्याभावात् तथा बहिरंतश्चाणुपारिमांडल्यादि प्रत्यक्षेण न प्रतिभासते तत्सा-शक्त्यभावात्। अतोऽनुमानमनेकांतमते सफलमित्यर्थः ॥

ननु मायात्सौगतमतेऽनुपलब्धिर्लिंगं कार्यस्वभावलिंगद्वयं भविष्यतीति चेत्तदपि न घटते इत्याह—

अनंशं बहिरंतश्च प्रत्यक्षं तदभासनात् ।
कस्तत्स्वभावो हेतुः स्यात्किं तत्कार्यं यतोऽनुमा

यत् सौगतैः परिकल्पितं । बहिरचेतनमंतश्चेतनं । निरंशं अंशा द्रव्यक्षेत्रकालभावविभागास्तेभ्यो निष्क्रांतं निरंशं तदप्रत्यक्षं प्रत्यक्षाविषयः । कुत. तदभासनात् तस्य निरंशत्वस्याभासनादननुभवात् । न खलु द्रव्यादिविभागरहितं चिदचिद्वा तत्त्वं प्रत्यक्षबुद्धौ प्रतिभासते । तत्र नित्यानित्याद्यनेकांशव्यापित्वेन वस्तुनः प्रतीतेः । ततस्तस्य निरंशस्य प्रत्यक्षतोऽसिद्धस्य स्वभावो धर्मः को हेतुर्लिंगं स्यात् । न कोऽपीत्यर्थः । प्रमाणतोऽसिद्धस्याहेतुत्वात् । तस्य कार्यं च किं नु हेतुः स्यात् । सर्वथानिरंशस्यापरिणामिनः कार्यकारणायोगात् । यतोऽनुमा भवेदित्याक्षेपवचनं न कुतोऽपीत्यर्थः । तन्न सौगतमतेऽनुमानं प्रामाण्यमास्कंदत्यनुपपत्तेः ॥

किं चानुमानं विकल्पात्मकं सौगतमते न सिध्यत्येवेति प्रतिपादयति—

धीर्विकल्पाविकल्पात्मा बहिरंतश्च किं पुनः ॥
निश्चयात्मा स्वतः सिध्येत्परतोऽप्यनवास्थितेः ९

[illegible] पुनः सिध्येत् न [illegible]दित्यर्थः । का धीर्बुद्धिः । [illegible]ष्टा निश्चयात्माऽनुमानबुद्धिरित्यर्थः । पुनरपि कथं-[illegible] विकल्पाविकल्पात्मा विकल्पो व्यवसायः अविकल्पोऽव्य[illegible]ः तावात्मानौ यस्याः सा तथोक्ता । क बहिरं-तश्च अत्र यथासंख्यमभिसंबंधः कर्तव्यः । बहिर्घटादिविषये विकल्पात्मा अंतः स्वरूपे निर्विकल्पात्मा चेति । कुतो न सिध्येत् स्वतः स्वसंवेदनात्तस्य निर्विकल्पकत्वेन विकल्पाविषयत्वात् । सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं स्वसंवेदन-मिति वचनात् । न केवलं स्वतः, अपि तु परतोऽपि किं पुनः सिध्यति परस्माद्विकल्पांतरादपि न सिध्यतीत्यर्थः । कुतः अनवस्थितेः तदपि विकल्पांतरतः स्वतो न सिध्य-त्यगोचरत्वात् । तत्रापि तत्सिध्यर्थं विकल्पांतरं कल्पनीय-मिति कचिदप्यनुपरमात् । ततोऽनुमानस्यासिद्धेः कथं बौद्धकल्पितः प्रमाणसंख्यानियमो घटत इति भावः ॥

ननु भवतामपि प्रमाणद्वैविध्यनियमो न व्यवतिष्ठते उपमानस्य प्रमाणांतरस्यासंग्रहादिति नैयायिकादिप्रत्यवस्थां विहस्तयँस्तन्मतेऽपि संख्यानियमं विघटयति—

उपमानं प्रसिद्धार्थसाधर्म्यात्साध्यसाधनं ॥
तद्वैधर्म्यात्प्रमाणं किं स्यात्संज्ञिप्रतिपादनं ॥

अत्र यदित्येतदध्याह्रियते । प्रसिद्धप्रमाणेन निश्चि-

तोऽर्थो गोरूपस्तेन साधर्म्यात् सादृश्यात्। उपजायमानं साध्यस्य ज्ञेयस्य तत्सादृश्यविशिष्टस्य गवयलक्षणस्य साधनं गोसदृशो गवय इति ज्ञानं यद्युपमानं प्रमाणांतरमभ्युपगम्यते। तदा तद्वैधर्म्यात् प्रसिद्धार्थवैसादृश्यादुपजायमानं साध्यसाधनं गोविलक्षणो महिष इति ज्ञानं। किं प्रमाणं स्यात् तस्य किं नामेत्याक्षेपः। न हि तदुपमानमेव तल्लक्षणाभावात्। नापि प्रत्यक्षादि भिन्नविषयत्वाद्भिन्नसामग्रीप्रभवत्वाच्च। तथा संज्ञिनो वाच्यस्य प्रतिपादनं च विवक्षितसंज्ञाविषयत्वेन संकलनं यथा वृक्षोऽयमिति। तदपि किं नाम प्रमाणं स्यादित्याक्षिप्यते। न खलु संज्ञासंज्ञिसंबंधज्ञानमप्रमाणं आगमप्रामाण्यविलोपापत्तेः। उपमानाप्रमाण्यापत्तेश्च॥

एतदेव समर्थयते—

प्रत्यक्षार्थांतरापेक्षा संबंधप्रतिपद्यतः॥
तत्प्रमाणं न चेत्सर्वमुपमानं कुतस्तथा॥११॥

यतो यस्माज्ज्ञानाद्भवति। का संबंधप्रतिपत् संबंधस्य वाच्यवाचकभावस्य प्रतिपत् ज्ञप्तिः। किंविशिष्टा प्रत्यक्षार्थांतरापेक्षा प्रकृतात् शब्दलक्षणादर्थादन्योऽर्थोऽर्थांतरं प्रत्यक्षं च तदर्थांतरं च प्रत्याक्षार्थांतरं वृक्षादि तत्तथोक्तं। तस्यापेक्षा यस्यां सा प्रत्यक्षार्थांतरापेक्षा। तज्ज्ञानं चेद्यदि न प्रमाणं स्यात्तदा

तर्हि सर्वं नैयायिकमीमांसकादिकल्पितं उपमानं कुतः प्रमाणं स्यादविशेषात् । न हि सादृश्यसंबंधज्ञानं प्रमाणं न पुनर्वाच्यवाचकसंबंधज्ञानमिति विशेषोऽस्ति । ततः संज्ञासंज्ञिसंकलनमपि प्रमाणांतरमेव भविष्यतीति कुतः प्रमाणसंख्यानियमः ॥

न केवलमेतदेव प्रमाणांतरमपि तु अन्यदपीति दर्शयन्नाह—

इदमल्पं महद् दूरमासन्नं प्रांशु नेति वा ॥
व्यपेक्षातः समक्षेऽर्थे विकल्पः साधनांतरं १२

साधनांतरं प्रमाणांतरं स्यात् । किं विकल्पो निश्चयः । तस्योल्लेखमाह— इदमस्मादल्पं । इदमस्मान्महत् । इदमस्मादासन्नं । इदमस्मात्प्रांशु दीर्घं । इदमस्मान्न प्रांशु इति । वाशब्दः परस्परसमुच्चये । कस्मिन् समक्षे प्रत्यक्षे पदार्थे । कुतः व्यपेक्षातः विरुद्धस्य प्रतिपक्षस्यापेक्षा कथंचिदजहद्वृत्तिस्तत इति । एवमल्पमहत्त्वादिसंकल्पनमपि परप्रमाणसंख्यानियमं विघटयतीत्यर्थः ॥ ननु स्याद्वादिनामप्येवं प्रमाणसंख्या कथं न विहन्यत इति चेन्न । तन्मते परोक्षभेदे प्रत्यभिज्ञाने सादृश्यसंकलनादीनामंतर्भावात् । नन्वर्थापत्तेः प्रमाणांतरत्वमनुमंतव्यमेव तस्याः क्वाप्यनंतर्भावादिति चेन्न । अनुमानेऽतर्भावात् । नदीपूरादेरुपरि वृष्ट्याद्यविनाभावित्वेन लिंगत्वात् । लिंगजज्ञानस्य चानुमानत्वात् । पक्षधर्मत्वाभावात्तस्यालिंगत्वमिति चेन्न । अपक्षधर्मस्यापि

हेतुत्वसमर्थनात् । अविनाभावो हि गम्यगमकभावनिबंधनं नान्यत् । स चात्राप्यस्तीत्यर्थापत्तिरनुमानमेव । एतेनाभावः प्रमाणांतरमित्यपि निरस्तं । प्रत्यक्षादिप्रमाणस्यैव भावाभावात्मवस्तुविषयत्वेन तथा व्यवहारात् । न खल्वेकांततो भावविषयं प्रमाणमभावविषयं वा ततोऽर्थक्रियानुपपत्तेः । यद्यभावः स्वतंत्रः स्यात्तदा तद्ग्राहकप्रमाणांतरं कल्पनीयं । तस्य घटो नास्तीति भावतंत्रस्यैवोपलंभात् । भावग्राहकेणैव तद्ग्रहणात् । किं च भावग्राहकज्ञानादभावग्राहकं ज्ञानमन्यदेवेति निर्बंधे सामान्यग्राहकाद्विशेषग्राहकं नित्यत्वग्राहकादनित्यत्वग्राहकमपि प्रमाणांतरमेव भवेदिति न क्वाप्यवयविसिद्धिः स्यात् । तन्नाभावाख्यं प्रमाणांतरं विषयाभावात्केशोंडुकज्ञानवदिति सुस्थितं परोक्षं स्मृत्याद्यविशदज्ञानत्वादत्रैव सकलास्पष्टज्ञानानामंतर्भावादिति ॥

> स्पृष्टोऽकलंकचंद्रोद्गवीभिर्विशदेतरः ॥
> तत्र प्रमाणभेदे स्यात्सौरी गौः किं न भासिनी ॥ १ ॥

इत्यभयचंद्रसूरिकृतौ लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तौ स्याद्वादभूषणायां परोक्षपरिच्छेदस्तृतीयः ॥ ३ ॥

एवं सम्यग्ज्ञानलक्षणप्रमाणं प्रत्यक्षपरोक्षभेदं द्रव्यपर्यायात्मकार्थविषयमज्ञाननिवृत्त्यादिफलं च प्रतिपाद्येदानीं प्रमाणाभासं निरूपयन्नाह—

प्रत्यक्षाभं कथंचित्स्यात्प्रमाणं तैमिरादिकं ।
यद्यथैवाविसंवादि प्रमाणं तत्तथा मतं ॥ १ ॥

स्याद्भवेत् । किं प्रत्यक्षाभं प्रत्यक्षप्रमाणाभासमित्यर्थः अक्षमिंद्रियानिंद्रियं प्रति नियतं प्रत्यक्षं ज्ञानमात्रं तदिवाभातीति व्युत्पत्तेः । किंविशिष्टं तैमिरादिकं तिमिरादागतं तैमिरं तदादिर्यस्याशुभ्रमणादेस्तथोक्तं । तर्त्कि स्यात् प्रमाणं भवति । कथं कथंचित् भावप्रमेयापेक्षया द्रव्यापेक्षया वा न सर्वथा प्रमाणाभासमेव । बहिरर्थाकारविषय एव ज्ञानस्य विसंवादात् । स्वरूपापेक्षया तस्याविसंवादात् । अत्राविनाभावं दर्शयति यदित्यादि— यत ज्ञानं यथैव यावद्विषयावबोधनप्रकारेणाविसंवादि विसंवादो गृहीतार्थव्यभिचारस्तद्रहितं अविसंवादि तत् ज्ञानं तथा तावद्विषयावबोधनप्रकारेण प्रमाणं मतमिष्टं परीक्षकैरिति । तथाहि सर्वं संशयादिकं प्रमाणाभासं स्वरूपापेक्षया द्रव्यापेक्षया वा प्रमाणं भवति तत्राविसंवादित्वात् । यद्यत्राविसंवादि तत्तत्र प्रमाणं यथा रसे रसज्ञानं । अविसंवादि च संशयादिकं स्वरूपे द्रव्यरूपादौ वा । ततस्तत्र तत्कथंचित्प्रमाणमिति । विसंवाद एव खल्वप्रामाण्यनिबंधनं अविसंवादश्च प्रामाण्यनिबंधनमिति न्यायस्य सकलवादिसंमतत्वात् । सर्वथाप्रमाणाभासत्वस्य न्यायशून्यत्वात् । बहिःप्रमेयापेक्षायां प्रमाणं

संविभं च ते इति वचनात् । न हि ज्ञानं स्वरूपे विसं-
वादि तस्याहंप्रत्ययसिद्धत्वात् । प्रसिद्धे च विषये प्रवर्त-
मानं कथमप्रमाणं स्यादिति ॥

अथेदानीं यत्सौगतैः परिकल्प्यते विकल्पज्ञानं प्रत्यक्षा-
भासमिति तन्निराकुर्वन्नाह—

स्वसंवेद्यं विकल्पानां विशदार्थावभासनं ॥
संहृताशेषचिंतायां सविकल्पावभासनात् ॥२॥

भवति । किं स्वसंवेद्यं स्वेन तत्त्वज्ञानात्मना संवेद्यं ग्राह्यं
स्वसंवेद्यं ज्ञानस्वरूपमित्यर्थः । वेद्यवेदकाकारद्वयाविरोधात्
ज्ञानस्य अन्यथा अवस्तुत्वापत्तेः । किंविशिष्टं विशदार्था-
वभासनं अर्थस्य परमार्थसतोऽवभासनमवबोधनमर्थावभा-
सनं । विशदं स्पष्टं तच्च तदर्थावभासनं च तत्तथोक्तं ।
केषां विकल्पानां घटोऽयं गौरयं शुक्लोऽयं गायकोऽयमि-
त्यादि निश्चयज्ञानानां । कुतः सविकल्पावभासनात् विकल्पो
जात्याद्याकारावबोधः सह विकल्पेनेति सविकल्पकं तस्याव-
भासनादनुभवात् । कदा संहृताशेषचिंतायां संहृता नष्टा
अशेषाः स्मृत्याद्यश्रिता विकल्पा यस्यामवस्थायां सा
तथोक्ता तस्यां । चक्षुरादिबुद्धौ जात्याद्याकारविशेषस्याव-
बोधनस्याप्रतिहतत्वात्ततो विकल्पज्ञानस्य प्रत्यक्षाभासत्वम-
युक्तमित्यर्थः ॥

ननु स्वसंवेदनादिप्रत्यक्षबुद्धौ विकल्पा न संत्येवानुप-लक्षणादिति प्रत्यवस्थां निराकुर्वन्नाह—

प्रतिसंविदितोत्पत्तिव्ययाः सत्योऽपि कल्पनाः ॥
प्रत्यक्षेषु न लक्षेरँस्तत्स्वलक्षणभेदवत् ॥ ३ ॥

न लक्षेरन् न विविच्येरन् । काः कल्पना. विकल्पाः । केषु प्रत्यक्षेषु स्वसंवेदनादिषु । किंविशिष्टा अपि सत्योऽपि विद्यमाना अपि । पुनः कथंभूताः प्रतिसंविदितोत्प-त्तिव्ययाः उत्पत्तिः स्वरूपलाभः व्ययोऽभावप्रत्ययः प्रति-संविदितौ प्रतिप्राणिसमुपलब्धौ उत्पत्तिव्ययौ यासां तास्त-थोक्ताः । न खलु सत्त्वं विना उत्पादव्ययवत्त्वमनुभूयते । अन्यथाऽतिप्रसंगात् । न चोत्पादव्ययवत्त्वं विकल्पानामसिद्धं कार्यकारणप्रबंधेन प्रवर्तमानत्वात् । न हि निर्विकल्पकाद्वि-कल्प उत्पत्तुमर्हति । तस्याकिंचित्करणत्वात् विकल्पोत्पादन-शक्तिवैकल्यात् । ननु सतां विकल्पानां प्रत्यक्षबुद्धावनुपलक्षणे किं कारणमिति चेत्प्रसिपत्तुरशक्तिरप्रणिधानं चेति ब्रूमः । अत्र निदर्शनमाह— तदित्यादि । तेषां विकल्पानां स्वलक्षणं स्वरूपं तस्य भेदः सजातीयविजातीयव्यावृत्तिः स इव तद्वत् । अयमर्थः यथा प्रतीतोत्पादव्यया सत्यपि स्वलक्षणव्यावृत्तिः कल्पनासु न लक्ष्यते अनुमानत एव तत्सिद्धेः. तथा प्रत्यक्षेषु कल्पना अपि न लक्ष्यंत इति । तर्हि कथमलक्षितानां तासां

तत्रास्तित्वसिद्धिरिति चेन्न । पुनस्तद्विषयस्मरणान्यथानुपपत्त्या तत्सिद्धेः । संहृतसकलविकल्पावस्था ह्यश्वं विकल्पयतो गोदर्शनावस्था । तत्रापि गोदर्शनं निश्चयात्मकमेव पुनस्तद्विषयस्मरणान्यथानुपपत्तेः । यत्र निश्चयाभावस्तत्र स्मरणं नोत्पद्यते यथा गच्छत्तृणस्पर्शने । अस्ति च पुनः तत्स्मरणमित्यनुमानविकल्पास्तित्वसिद्धेः तत्स्वलक्षणव्यावृत्तिसिद्धिवत् । न हि तद्व्यावृत्तिरध्यक्षतः सिद्धा तथाऽननुभवनात् । ततः स्थितं निश्चयः प्रमाणमविसंवादादिति ॥

एतदेव समर्थयमानः प्राह—

अक्षधीस्मृतिसंज्ञाभिश्चिंतयाऽऽभिनिबोधिकैः ॥
व्यवहाराविसंवादस्तदाभासस्ततोऽन्यथा ॥४॥

प्रमाणमित्यनुवर्तते । तेनाभिसंबंधादक्षध्यादीनां प्रथमांतत्वमर्थवशाद्विभक्तिविपरिणाम इति न्यायात् । तत एवं व्याख्यायते— अक्षधीस्मृतिसंज्ञाभिश्चिंतयाऽऽभिनिबोधिकैश्च व्यवहारे हानोपदानरूपेऽविसंवादोऽव्यभिचारः सकलव्यवहारिणां प्रतीतिसिद्धः । ततस्तानि प्रमाणं भवंतीत्यर्थः । अक्षैर्जनिता धीः अक्षधीः । सांव्यवहारिकप्रत्यक्षं । स्मृतिरतीतार्थावमर्शिनी । संज्ञा प्रत्यभिज्ञा । चिंता तर्कः आभिनिबोधिकमनुमानं । अभिनिबोधो हेतोरन्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयस्तत्र भवमाभिनिबोधिकमिति व्याख्यानात् । एतैश्च प्रमेयं

परिच्छेद्य प्रवर्तमानो हानादिफले न विसंवाद्यते इति कथं न प्रामाण्यं तेषामिति । नन्वेवं तेषां प्रामाण्यं कथमित्याशंकां निराकरोति– ततो व्यवहाराविसंवादादन्यथा तद्विसंवाद-प्रकारेण । तदाभासः प्रमाणाभासोऽक्षाध्यादेरिति । न खल्व-र्थक्रियाव्यभिचारिणः प्रमाणत्वमतिप्रसंगात् । तत्र प्रत्यक्षा-भासाः संशयविपर्यासानध्यवसायादर्शनादयः । अतस्मिँस्तदिति परामर्शः स्मृत्याभासः । अतत्सदृशे तत्सदृशमिदमतस्मिँस्तदेवेद मित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासः । असंबद्धे व्याप्तिग्रहणं तर्का-भासः । असिद्धविरुद्धानैकांतिकाकिंचित्करा हेत्वाभासाः । प्रत्यक्षादिबाधितः साध्याभासः । साध्यसाधनोभयविकला दृष्टांताभासाः । विस्तरः परीक्षामुखालंकारादौ द्रष्टव्यः ॥

अथेदानीं श्रुतज्ञानस्य प्रमाणेतरव्यवस्थां प्रतिपादयति–

प्रमाणं श्रुतमर्थेषु सिद्धं द्वीपांतरादिषु ॥
अनाश्वासं न कुर्वीरन् क्वचित्तद्व्यभिचारतः ॥५॥

व्यवहाराविसंवाद इत्यनुवर्तते । आप्तवचनादिनिबंधनं मतिपूर्वकमर्थज्ञानं श्रुतं तच्च प्रमाणं सिद्धमेव । केन सिद्ध-मिति चेत् व्यवहाराविसंवादादित्युच्यते । प्रत्यक्षादिवत् । केषु अर्थेषु प्रमेयेषु । कीदृक्षु द्वीपांतरादिषु प्रकृतो जंबूद्वीपः । तस्मादन्ये धातकीखंडादयो द्वीपांतराणि तान्यादिर्येषां काल-स्वभावव्यवहितानां ते तथोक्ताः तेषु । देशकालाकारविप्रकृ-

ह्येष्वित्यर्थः । न हि श्रुतादर्थं परिच्छिद्य प्रवर्तमानो रसाय-नादिक्रियायां विसंवाद्यते ग्रहणादौ वा मलयादिप्राप्तौ वा । ततोऽनाश्वासमविश्वासं न कुर्वीरन् परीक्षकाः । कुतः क्वचि-द्व्यभिचारतः क्वचिन्नदीतीरे मोदकादिप्रतिपादने तस्य श्रुतस्य व्यभिचारो विसंवादस्तस्मात् । न हि क्वचिद्विसंवादादप्रामाण्ये ज्ञानस्य सर्वत्राप्रामाण्यं शंकनीयं प्रत्यक्षादिष्वपि तथात्वप्रसं-गात् सकलव्यवहारविलोपापत्तेः । श्रुतविषये वादिनां विप्रति-पत्तिदर्शनादप्रामाण्यमिति चेत् प्रत्यक्षादावपि तत एवाप्रामाण्य-मस्तु विशेषाभावात् । यथैव हि परलोकपुण्यपापसर्वज्ञादौ श्रुत-विषये वादिनां विप्रतिपत्तिस्तथा प्रत्यक्षादिविषयेऽपि जीवाद्यर्थे सदसन्नित्यानित्यादिविप्रतिपत्तिरस्तीति । ततोऽविसंवादकृता प्रामाण्येतरव्यवस्था श्रुतस्यान्यस्य वा प्रतिपत्तव्या न्यायत्वात् ॥

श्रुतस्य सर्वत्राप्रामाण्यशंकायामतिप्रसंगं दर्शयति—

प्रायः श्रुतेर्विसंवादात्प्रतिबंधमपश्यतां ॥
सर्वत्र चेदनाश्वासः सोऽक्षलिंगधियां समः ६

चेद्यदि भवेत् । कः अनाश्वासः अविश्वासः । क सर्वत्र अविसंवादिश्रुतिप्रामाण्ये । केषां प्रतिबंधमपश्यतां शब्दार्थयोः सहजयोग्यतालक्षणं संबंधमनीक्षमाणानां सौग-तानां । कस्मात् विसंवादात् । कस्याः श्रुतेरागमस्य । कथं प्रायः क्वचित्कदाचिदित्यर्थः । तदा सोऽनाश्वासः

समः समानः । कासां अक्षलिंगधियां अक्षमिंद्रियं लिं हेतुः ताभ्यां जनिता धियो ज्ञानानि तासामपि प्रसक्त-मित्यर्थः । क्वचित्कदाचिद्विसंवाददर्शनात् । अदुष्टकारण-जन्यं प्रत्यक्षमनुमान वा अर्थे न विसंवदतीति चेदाप्त-वचनाददुष्टादुद्भूतं श्रुतमपि किं विसंवदेदिति समानं ॥

सर्वत्र श्रुतस्यानाश्वासेऽनिष्टांतरमावेदयति –

आप्तोक्तेर्हेतुवादाच्च बहिरर्थाविनिश्चये ॥

सत्येतरव्यवस्था का साधनेतरतापि कुतः ॥७॥

का भवेन्न काऽपीत्यर्थः । का सा सत्येतरव्यवस्था सत्यं सुगतवचनं इतरच्चासत्यं कपिलादिवचनं तयोर्व्यवस्था विभागः । तथा साधनेतरता च साधनं इष्टसिद्धिनिबं-धनं लिंगं सत्त्वादि इतरच्च साधनाभासं तयोर्भावः साधनेतरता । साऽपि कुतः कस्माद्व्यवतिष्ठते इत्यर्थः । कस्मिन् सति बहिरर्थाविनिश्चये बहिरर्थस्य विप्रकृष्टस्य प्रमेयस्या-विनिश्चयेऽप्रतीतौ । कस्मादाप्तोक्तेः यो यत्रावंचकः स तत्राप्तः तस्योक्तिर्वचनं ततः । न केवलमाप्तोक्तेरपि तु हेतुवा-दाच्च साधनप्रयोगाच्च । अयमर्थः आप्तोक्तेर्बहिरर्थाविनिश्चये सुगतेतरवचनयोः सत्येतरव्यवस्था का ? अर्थाविषयत्वावि-शेषात् । हेतुवादाच्च बहिरर्थाविनिश्चये साधनेतरता कुतः बहिरर्थशून्यत्वाविशेषादिति ॥

ननु अस्तु सुगतवचनस्याप्यप्रामाण्यं प्रत्यक्षानुमानयोरेव प्रामाण्यमस्तु पुंसां विचित्राभिप्रायत्वेनार्थव्यभिचारादिति दाशबलशंकां निरस्यति—

पुंसश्चित्राभिसंधेश्चेद्वागर्थव्यभिचारिणी ॥
कार्यं दृष्टं विजातीयाच्छक्यं कारणभेदि किं ८

चेद्यदि । वागाप्तवचनं । अर्थव्यभिचारिणी बाह्यार्थविसंवादिनी स्यात् । कस्मात् चित्राभिसंधेः । चित्रः सत्यासत्यादिनानारूपोऽभिसंधिरभिप्रायो विवक्षा तस्मात् । कस्य पुंसो वक्तुः सरागा अपि वीतरागवच्चेष्टंते इति वचनात् । तर्हि विजातीयादपि कारणात् कार्यं दृष्टमविरुद्धं स्यात् । ततस्तत्कारणभेदि कारणं प्रतिनियतं स्वात्मलाभनिबंधनं भिनत्ति विजातीयाद्विशिनष्टीत्येवंशीलं किं शक्यं स्यान्न स्यादेवेत्यर्थः । तस्य यतः कुतश्चिदुत्पत्तेरविरोधात् । न ह्यनियतकारणजन्यं कार्यं कारणभेदं गमयत्यशक्तेः । ततः कार्यस्य कारणव्यभिचारादलिंगत्वमित्यनुमानोच्छेद इति भावः । सत् विवेचितं कार्यं कारणं नातिवर्तत इति तद्वत् सुप्रयुक्ता वागपि यथार्थविवक्षां नातिवर्तते इति नियमर्थव्यभिचारः । ननु विवक्षाधिरूढ एव वागर्थो न बाह्य इति चेन्न । विवक्षायास्तदव्यभिचारात् । वक्तुरिच्छा हि विवक्षा । न च बाह्यार्थनियमं तदिच्छानियमो युज्यते

अतिप्रसंगात् । करशाखाशिखरगधिकरणकरेणुशतास्तित्वादि-प्रतिपादनवचनानां प्रतारणत्वादप्रामाण्यसिद्धेः । रागद्वेषमोहाक्रांतपुरुषवचनस्यागमाभासत्वात् । ततः सिद्धं श्रुतं प्रमाणं द्वीपांतराद्यर्थेषु विसंवादाभावादिति साधूक्तं ॥

प्रमाणाभं कथंचिद्यद्कलंकप्रभांजितं ॥
गावः सौर्यो विवृण्वंति तदेतत्स्यान्मताश्रयात् ॥१॥

इत्यभयचंद्रसूरिकृतौ लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तौ स्याद्वादभूषण-संज्ञायां प्रमाणाभासपरिच्छेदश्चतुर्थः ॥

इति भट्टाकलंकशशांकस्मृते लघीयस्त्रये
प्रमाणप्रदेशः प्रथमः

नमो नमन्मरुमौलिमिलत्पदनखांशवे ॥
स्वांतध्वांतप्रतिध्वंसप्रशंसाय जिनांशवे ॥ १ ॥

अथेदानी प्रमाणं तदाभासं परीक्ष्य नयतदाभासलक्षण-परीक्षार्थमाह—

भेदाभेदात्मके ज्ञेये भेदाभेदाभिसंधयः ॥
एतेऽपेक्षानपेक्षाभ्यां लक्ष्यंते नयदुर्नयाः ॥ १ ॥

लक्ष्यंते निश्चीयंते । के नयदुर्नयाः नयाश्च दुर्नया नयाभासाश्च नयदुर्नयाः । काभ्यां अपेक्षानपेक्षाभ्यां अपेक्षा प्रतिपक्षधर्माकांक्षा अनपेक्षा ततोऽन्या सर्वथैकांतः ताभ्यां

किंविशिष्टास्ते ये भेदाभेदाभिसंधयः भेदो विशेषः पर्यायो व्यतिरेकश्च अभेदः सामान्यमेकत्वं सादृश्यं च भेदश्चाभेदश्च भेदाभेदौ तयोर्भेदाभेदयोरभिसंधयोऽभिप्रायाः श्रुतज्ञानिनो विकल्पा इत्यर्थः । कस्मिन् ज्ञेये प्रमेये जीवादौ । किंविशिष्टे भेदाभेदात्मके भेदाभेदावात्मानौ स्वभावौ यस्य तत्तथोक्तं तस्मिन् । न खल्वेकांततो भेदात्मकमभेदात्मकं वा प्रमेयमुपलब्धं । अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययबलादुभयात्मकस्यैवोपलब्धेः । प्रमाणस्यानेकांतविषयत्वात् । अनेकांतः प्रमाणादिति वचनात् । न चोभयात्मकत्वेनार्पितं व्यवहारयोग्यं वस्तु । ततस्तदुपयोगिन एकांतस्य नयाधीनत्वान्नया उच्यंते । तदेकांतोऽर्पितान्नयादिति राद्धांतात् । ते च परस्परापेक्षा एव व्यवहाराय कल्पंते । अन्यथा तद्विलोपहेतुत्वेन दुर्नयत्वात् । निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृदिति स्वामिभिरभिधानात् । ते च द्विविधाः द्रव्यार्थिकाः पर्यायार्थिकाश्चेति । द्रव्यं सामान्यमभेदोऽन्वय उत्सर्गोऽर्थो विषयो येषां ते द्रव्यार्थिकाः । पर्यायो विशेषो भेदो व्यतिरेकोऽपवादोऽर्थो विषयो येषां ते पर्यायार्थिका इति निरुक्तेः। तत्र द्रव्यं द्विधा शुद्धद्रव्यमशुद्धद्रव्यं चेति । सत्सामान्यं हि शुद्धद्रव्यं । जीवतत्त्वादि पुनरशुद्धं द्रव्यमिति ॥

ननु देशकालाकारभेदादत्यंतभिन्ना एव भावाः परमार्थसंतो न सत्सामान्यमिति बौद्धविप्रतिपत्तिं निराकुर्वन्नाह—

जीवाजीवप्रभेदा यदंतर्लीनास्तदस्ति सत् ।
एकं यथा स्वनिर्भासि ज्ञानं जीवः स्वपर्ययैः २

अस्ति विद्यते प्रतीयते । तत्किं सत् सत्तासामान्यं । किंविशिष्टं यदित्यादि यस्मिन्नंतर्लीना अंतर्भूताः । के जीवाजीवप्रभेदाः । जीवश्चेतनालक्षणः । अजीवः पुनस्तद्विपर्ययः पुद्गलादिः । प्रभेदाश्च त्रसस्थावराद्यवांतरविशेषाः । जीवाजीवौ च प्रभेदाश्च ते तथोक्ताः । न खलु द्रव्यं पर्यायो वा सत्त्वव्यतिरिक्तमस्तीति किंचिद्व्यवहर्तुं शक्यं स्ववचनविरोधादतिप्रसंगाच्च । नन्वेकस्य कथमनेकजीवादिभेदव्यापकत्वमिति चेदत्राह— एकमित्यादि । यथा एकं ज्ञानं चित्रपटादिविषयं स्वनिर्भासि स्वे आत्मीया ज्ञानात्मानो निर्भासा नीलाद्याकारा विद्यंतेऽस्येति स्वनिर्भासि । यथा चैको जीव आत्मा स्वपर्ययैः स्वे चिद्रूपाः पर्ययाः रागादयः परिणामास्तैराक्रांतः प्रतीतिपदारूढो न विरुध्यते तथा सत्त्वमपि जीवाद्यनेकभेदाक्रांतं न विरुध्यत इत्यर्थः ॥

तस्य सत्सामान्यस्य नयं निरूपयति—

शुद्धं द्रव्यमभिप्रैति संग्रहस्तदभेदतः ॥
भेदानां नासदात्मैकोऽप्यस्ति भेदो विरोधतः ३

अभिप्रैति विषयीकरोति । कः संग्रहः संग्रहनयः ।

किं शुद्धं द्रव्यं सत्सामान्यं तस्यान्योपाधिरहितत्वेन शुद्धिसंभवात् । तद्विषयो हि नयः संग्रहः सजात्यविरोधेन पर्यायाक्रांतभेदानैकध्यमुपनीय समस्तग्रहणं संग्रह इति निर्वचनात् । कुतः तदभेदतः तस्य सत्सामान्यलक्षणस्य शुद्धद्रव्यस्याभेदात् । सर्वेषु जीवाजीवेष्वव्यतिरेकात् । ननु प्रागभावादेः सत्त्वव्यतिरेकात्कथं तदभेद इत्याशंक्याह— भेदानां जीवादीनां सद्विशेषाणां मध्ये एकोऽपि भेदो जीवस्तत्पर्यायोऽन्यो वाऽसदात्माऽसत्स्वरूपो नास्ति न विद्यते । विरोधतः । यद्यसदात्मा कथमस्ति । यद्यस्ति कथमसदात्मेति स्ववचनविरोधादस्य प्रसिद्धेः । ततः प्रागभावादिरन्यो वा कथंचित्सदात्मक एवाभ्युपगंतव्यः प्रतीतिबलात् ॥

ननु प्रत्यक्षतो भेदस्य सिद्धेरभेदनयः संग्रहो मिथ्या प्रत्यक्षबाधितत्वादिति सौगतविप्रतिपत्तिं निराकुर्वन्नाह—

प्रत्यक्षं बहिरंतश्च भेदाज्ञानं सदात्मना ॥
द्रव्यं स्वलक्षणं शंसेद्भेदात्सामान्यलक्षणात् ४

शंसेत् स्तूयात् कथयेदित्यर्थः । किं प्रत्यक्षं विशदमिंद्रियानिंद्रियज्ञानं । किंविशिष्टं भेदाज्ञानं भेदान् परपरिकल्पितान् निरंशक्षणान्न जानाति न गृण्हातीति भेदाज्ञानं । किं शंसेत् द्रव्यं शुद्धमशुद्धं वा स्वलक्षणं वस्तुभूतं न कल्पितमित्यर्थः । क्व बहिरचेतने घटादौ । अंतश्चेतने । केन

सदात्मना सद्रूपेण न खलु सद्रूपेण भेदः पदार्थेषु प्रत्य-क्षतो ज्ञायते येन प्रत्यक्षं द्रव्यं न (?) शंसेत् । कस्मात् भेदाभेदमाश्रित्य । किंविशिष्टात् सामान्यलक्षणात् सामान्यम-न्वयो लक्षणं लिंगं यस्यासौ सामान्यलक्षणस्तस्मात् । न हि भेदनिरपेक्षमभेदं प्रत्यक्षमन्यद्वा प्रमाणं साधयति । तस्यानुपलब्धेः । ततः प्रत्यक्षमपि द्रव्यसिद्धिनिबंधनमेवेति कुतः संग्रहनयो मिथ्या स्यात् ॥

एवं सत्सामान्यलक्षणं शुद्धद्रव्यं समर्थ्य ऊर्ध्वतासामान्य-मशुद्धद्रव्यं समर्थयते—

सदसत्स्वार्थनिर्भासैः सहक्रमविवर्तिभिः ॥
दृश्यादृश्यैर्विभात्येकं भेदैः स्वयमभेदकैः ॥ ५ ॥

विभाति विशेषेण प्रत्यक्षादिबुद्धौ प्रतिभासते । किं एकं द्रव्यरूपेणाभिन्नं जीवादि वस्तु । कैः सह भेदैः पर्यायैः सह । कथंभूतैः सहक्रमविवर्तिभिः सह युगपत् क्रमेण च कालभेदेन विवर्तंते विपरिणमंते इत्येवंशीलास्तैः गुणपर्यायै-रित्यर्थः । गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति वचनात् । सहवर्तिनस्तु पर्याया रागादय इति । पुनश्च किंभूतैः स्वयमभेदकैः स्वयं स्वरूपेण गुणपर्यायात्मना न विद्यते भेदो गुणाः पर्यायो वा येषां ते तथोक्तास्तैः । द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा इति वचनात् । गुणपर्याययोरपि गुणपर्यायवत्त्वेन द्रव्यत्व-

प्रसंगात् । तल्लक्षणत्वाद्द्रव्यस्येति । भूयोऽपि कथंभूतैः दृश्यादृश्यैः दृश्याः स्थूला व्यंजनपर्यायाः अदृश्याः सूक्ष्माः केवलागमगम्या अर्थपर्यायाः दृश्याश्च अदृश्याश्च दृश्यादृश्यास्तैरिति । अस्मिन्नर्थे परप्रसिद्धं दृष्टांतमाह– सदसत्स्वार्थनिर्भासैः । अत्र यथा ज्ञानमित्येतावानध्याहारः । यथा एकं ज्ञानं विभाति । कैः सह संतश्चासंतश्च सदसंतः । स्वं चार्थश्च स्वार्थौ तयोर्निर्भासा नीलाद्याकारास्तथोक्ताः । सदसंतश्च ते स्वार्थनिर्भासाश्च सदसत्स्वार्थनिर्भासास्तैरिति । अयमर्थः यथा सद्भिर्ज्ञानगताकारैरसद्भिरर्थाकारैर्नीलादिभिः सहैकं ज्ञानं विभाति तव न विरुध्यते । तथा अर्थव्यंजनपर्यायैः सहक्रमविवर्तिभिः गुणपर्यायैः सहैकं द्रव्यमपि विभाति न विरुध्यते इति । विरोधस्यानुपलंभसाध्यत्वात् । उपलभ्यंते च द्रव्यं भेदाश्च । ततः सिद्धं भेदाभेदात्मकं जीवादि वस्तु । तथा प्रमेयत्वात् अर्थक्रियाकारित्वाच्च । न खलु सर्वथानित्यं क्षणिकं वाऽर्थक्रियां कुर्वन्प्रतीयते । यतस्तत्परमार्थसन्मन्येत ॥

ननु कार्यकारणयोर्भिन्नकालत्वात् क्षणिके एवार्थक्रियासंभवो न नित्ये इति शाक्यवाक्यं शोधयन्नाह—

कार्योत्पत्तिर्विरुद्धा चेत्स्वयंकारणसत्तया ॥
युज्येत क्षणिकेऽर्थेऽर्थक्रियासंभवसाधनम् ॥९॥

चेद्यदि विरुद्धा विप्रतिषिद्धा स्यात् । का कार्योत्पत्तिः

कार्यस्योत्तरपरिणामस्योत्पत्तिः स्वरूपलाभः। कया स्वका-
कारणसत्तया स्वयंकारणं विवक्षितकार्यजनकं द्रव्यस्वरूप-
मुपादानं तस्य सत्तया भावेन। तर्हि युज्येत युक्तं स्यात्।
किं अर्थक्रियासंभवसाधनं अर्थस्य अभिमतप्रयोजनस्य
क्रिया निष्पत्तिस्तत्संभवसाधनं नित्यक्रमयौगपद्यविरहादित्या-
द्यनुमानं। क्व अर्थे। किंविशिष्टे क्षणिके निरन्वय-
क्षणनश्वरे। इदमतिपत्तिवचनं। न च सा विरुद्धा कार्य-
काले सत एव कारणत्वात्। अन्यथा कार्यस्याकस्मिकत्व-
प्रसंगात्। क्षणिकैकांते कार्यकारणभावविरोधाच्च। न, हि
यदभावे यदुत्पद्यते यद्भावे यन्नोत्पद्यते तयोः कार्यकारण-
भावोऽस्ति। अन्यथाऽतिप्रसंगात्। ततः कथंचित्सत एव
कारणत्वं कार्यत्वं वाऽनुमंतव्यमिति द्रव्यपर्यायात्मकमेव
वस्तु। तत्रैवार्थक्रियासंभवात्।

ननु कथमेकस्यानेककार्यकारित्वमनेकधर्मव्यापित्वं च विरो-
धादित्याशंकां निराकुर्वन्नाह—

यथैकं भिन्नदेशार्थान्कुर्याद्व्याप्नोति वा सकृत्॥
तथैकं भिन्नकालार्थान्कुर्याद्व्याप्नोति वा क्रमात्॥

यथा येनाविरोधप्रकारेण एकं सौगताभिमतं क्षणिकस्व-
लक्षणं। सकृदेकक्षणे। भिन्नदेशार्थान् भिन्नो विप्रकृष्टो देशो
येषां ते भिन्नदेशास्ते च तेऽर्थाश्च कार्याणि तान् स्वसंतानां-

तिनमुपादानत्वेन संतानांतरवर्तिनश्च निमित्तत्वेन जनयेदित्यर्थः। यथा वा एकं ज्ञानं भिन्नदेशार्थान् विप्रकृष्टनीलाद्याकारान् व्याप्नोति न विरुध्यते तथा एकमभिन्नद्रव्यं। क्रमात कालभेदेन। भिन्नकालार्थान् भिन्नः पूर्वापरीभूतः कालो येषां ते च तेऽर्थाश्च कार्याणि तान्। कुर्यात् पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिरूपेण परिणमत इत्यर्थः। तानेव व्याप्नोति वा तादात्म्यमनुभवति वा न विरुध्यते। एकस्यैव नानादेशकार्यकारित्वमविरुद्धं। नानाकालकार्यकारित्वं तु विरुद्धमित्यपि स्वदर्शनानुरागमात्रं। न्यायस्य समानत्वात्। ततः सिद्धमेकानेकाद्यनेकांतात्मकं जीवादि वस्त्वन्यथाऽर्थक्रियाविरोधादिति॥

एवं सत्सामान्यरूपं परद्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमपरद्रव्यं च प्रतिपाद्य तत्र परद्रव्यविषयं परसंग्रहं तदाभासं च दर्शयन्नाह —

संग्रहः सर्वभेदैक्यमभिप्रैति सदात्मना॥
ब्रह्मवादस्तदाभासः स्वार्थभेदनिराकृतेः॥८॥

अभिप्रैति विषयीकरोति। कः संग्रहः संग्रहनयः। किं सर्वभेदैक्यं सर्वे च ते द्रव्यादयो भेदा विशेषास्तेषामैक्यमभेदं। केन सदात्मना सर्वं सदिति सद्रूपेण सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यमिति प्रवचनात्। न सर्वथा तथाऽप्रतीतेः। नन्वेवं ब्रह्मवाद एव समर्थितः स्यादिति चेदत्राह— ब्रह्मेत्यादि। तदाभासः

संग्रहाभासो भवति । कः ब्रह्मवादः सत्ताद्वैतं भावैकान्त इत्यर्थः । कुतः स्वार्थभेदनिराकृतेः स्वस्य ब्रह्मवादस्यार्थो विषयः सन्मात्रं तस्य भेदा जीवादिविशेषास्तेषां निराकृतेः प्रतिषेधात् । न खलु सर्वथा सत्त्वे भेदानामवकाशोऽस्ति । भेदरहितं च तत्कथं सामान्यं नाम निराश्रयत्वात् अर्थक्रिया-विरहाच्च । नैकं स्वस्मात्प्रजायत इति न्यायात् । न हि तदद्वैते क्रियाकारकभेदोऽस्ति यतोऽर्थक्रिया संभवेत् ॥

अथेदानीं नैगमनयं तदाभासं च निरूपयति—

अन्योन्यगुणभूतैकभेदाभेदप्ररूपणात् ॥
नैगमोऽर्थांतरत्वोक्तौ नैगमाभास इष्यते ॥९॥

इष्यते मन्यते स्याद्वादिभिः । कः नैगमः निगमो मुख्य-गौणकल्पना तत्र भवो नयो नैगम इति । कुतः अन्योन्येत्यादि— गुणभावोऽप्रधानभूतः एकश्च प्रधानभूतः अन्योन्यं परस्परं गुणभूतैकौ अन्योन्यगुणभूतैकौ तौ च तौ भेदाभेदौ च तयोः प्ररूपणात् ग्रहणात् । तथाहि गुणगुणिनामवयवावयविनां क्रियाकारकाणां जातितद्वतां च कथंचिद्भेदं गुणीकृत्याभेदं प्ररूपयति । अभेदं वा गुणीकृत्य भेदं प्ररूपयति । नैगम-नयस्यैवंविधत्वात् । प्रमाणे भेदाभेदयोरनेकांतग्रहणात् । ननु गुणगुण्यादीनामत्यंतभेद एवेति चेदत्राह— अर्थेत्यादि । अर्थांतरत्वं गुणगुण्यादीनामत्यंतभेदः तस्योक्तौ प्ररूपणायां

नैगमाभास इष्यते तस्य प्रमाणबाधितत्वात् । न खलु द्रव्या-द्गुणादयोऽत्यंतभिन्नाः प्रतीयंते । अशक्यविवेचनत्वेन कथंचि-त्तादात्म्यप्रतीतेः । संबंधाभावाच्च ॥

ननु समवायसंबंधोऽस्त्येव गुणगुण्यादीनामिति यौगमतं निराकुर्वन्नाह—

स्वतोऽर्थाः संतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां ॥
असदात्मसु नैषा स्यात्सर्वथाऽतिप्रसंगतः ॥१०॥

यौगमते भावानां स्वतः सदात्मनां सत्तासमवायोऽसदा-त्मनां वेति विकल्पद्वयं मनसिकृत्य प्रथमपक्षे दूषणमाह— स्वतः स्वरूपेणार्थाः पदार्थाः संतु । किंवत् सत्तावत् यथा सत्तांतराद्विनाऽपि सत्ता परसामान्यं स्वत एवास्ति तथा द्रव्यादीन्यपि स्वत एव संतु विद्यंतां । तथाच स्वतः सदात्मनां सत्तया किं साध्यं न किमपीत्यर्थः । विनाऽपि तया तेषां सत्त्वात् । द्वितीयविकल्पं दूषयति । सर्वथाऽ सदात्मसु द्रव्यादिषु परा सत्ता न स्यात् न वर्तेत अति-प्रसंगात् । खरविषाणादावपि सर्वथाऽसति सत्तासमवाय-प्रसंगात् । एवं द्रव्यत्वादिसमवायोऽप्यनयैव दिशा चिंत-नीयः । स्वतो द्रव्यस्य द्रव्यत्वसमवायानर्थक्यात् । अद्र-व्यस्य तु तत्समवायेऽतिप्रसंगादिविकल्पोपपत्तेः । किंच अवयव्यवयवेष्वेकदेशेन सर्वात्मना वा वर्तेत? आद्यपक्षे

तस्य तावद्भिरंशैर्भवितव्यं अन्यथा अवयवानामेकत्वप्रसंगात् तत्रापि वृत्तौ तस्य तावदंशांतरकल्पनायामनवस्था स्यात्। सर्वात्मना चेदवयविबहुत्वापत्तेः। अन्यथा वृत्तिविरोधात्। ततः कथंचित्तादात्म्यलक्षणः समवायस्तेषामभ्युपगंतव्यो नान्यथेति स्थितं ॥

ननु ब्रह्मवादभेदवादयोरपि प्रमाणादिव्यवहारसंभवात्कथं संग्रहनैगमाभासत्वमित्याक्षेपं विक्षिपन्नाह—

प्रामाण्यं व्यवहाराद्धि स न स्यात्तत्त्वतस्तयोः ।
मिथ्यैकांते विशेषो वा कः स्वपक्षविपक्षयोः ११

प्रमाणं स्वेष्टानिष्टसाधनदूषणनिबंधनं प्रत्यक्षमन्यद्वा सर्वैरभ्युपगंतव्यमन्यथाऽतिप्रसंगात्। तच्च व्यवहारात् विधिपूर्वकमवहरणं विभंजनं भेदकल्पनं व्यवहारस्तस्मात् समाश्रित्येत्यर्थः। स च तत्त्वतः परमार्थतो न स्यात्। क तयोः संग्रहाभासनैगमाभासयोः। न खलु निरपेक्षे भावैकांते प्रमाणादिभेदव्यवहारोऽस्ति निराकृतत्वात्। भेदैकांते वा प्रमाणफलव्यवहारोऽस्ति संबंधाभावात्। औपचारिकः प्रमाणफलव्यवहारस्तत्रास्तीति चेदत्राह— मिथ्येत्यादि। मिथ्यैकांते प्रमाणफलव्यवहारस्यावास्तवैकांते अंगीक्रियमाणे। विशेषोऽभेदोऽपि कः ? न कोऽपीत्यर्थः। कयोः स्वपक्षविपक्षयो स्वपक्षो ब्रह्मवादो भेदवादो वा। विपक्षः प्रति-

कथवादोऽद्वैतवादो वा तयोः संकरप्रसंगादित्यर्थः। अतः कथंचिद्व्यवहारोऽपि वास्तवोंऽगीकर्तव्यः ॥

सांप्रतं तस्य सुनयत्वं प्रतिपादयति—

व्यवहारोऽविसंवादी नयः स्याद्दुर्नयोऽन्यथा ।
बहिरर्थोऽस्ति विज्ञप्तिमात्रशून्यमितीदृशः ॥१२॥

स्याद्भवेत्। कः नयः संग्रहादिः। किंविशिष्टः बहिरर्थोऽस्तीतीदृशः। इतिशब्दात्प्रमाणमस्ति साध्यसाधनभावोऽस्ति इत्यादि। कथंभूतः सन् व्यवहाराविसंवादी हेतुफलभावादिव्यवस्था व्यवहारः तस्याविसंवादोऽव्यभिचारः सोऽस्यास्तीति तथोक्तः। व्यवहारस्य हि सुनयत्वे तदाश्रया हेतुफलभावादिसिद्धिः स्यात्। अन्यथा व्यवहारविसंवादी दुर्नयः स्यात्। कीदृशः विज्ञप्तिमात्रं विज्ञप्तिर्विज्ञानमेव तत्त्वं नान्यत्। शून्यं समस्तज्ञानज्ञेयोपप्लव एव तत्त्वमितीदृशः। इतिशब्दः प्रकारवाची सन्मात्रमेव तत्त्वं विभ्रम एव तत्त्वं इत्यादिप्रकारान् सूचयति। संग्रहेण हि सर्वं सत्तदभेदादिति सर्वैक्यमभिप्रैति। व्यवहारस्तु तदेव विधिपूर्वकमवहरति भिनत्ति। यथा यत्सत्तद्द्रव्यं पर्यायो वेति। पुनरपरसंग्रहो जीवादीन् द्रव्यमिति संगृह्णाति। ज्ञानं रागादींश्च पर्याय इति संगृह्णाति। अपरव्यवहारः पुनर्द्रव्यं तज्जीवोऽजीवो वेति। यश्च पर्या-

योऽसौ सहभावी क्रमभावी भवति। एवं परापरसंग्रह-व्यवहारपरंपरा वर्तते यावदृजुसूत्रविषय इति ॥

इदानी ऋजुमूत्रनयं निरूपयाति--

ऋजुसूत्रस्य पर्यायः प्रधानं चित्रसंविदः ॥
चेतनाणुसमूहत्वात्स्याद्भेदानुपलक्षणं ॥ १२ ॥

ऋजु प्रगुणं वर्तमानपर्यायलक्षणं सूत्रयति निरूपयतीति ऋजुसूत्रस्य प्रधानं विषयः स्याद्भवेत्। कः पर्यायः वर्तमानविवर्तः। अतीतस्य विनष्टत्वेन भविष्यतश्चासिद्धत्वेन व्यवहारानुपयोगात्। व्यवहाराविसंवादी नय इति वचनात्। ननु चित्रज्ञानमेकमनेकाकारं व्यवहारोपयोगि स्यादिति चेदत्राह– चित्रेत्यादि। चित्रा नीलपीतादिनानारूपा संवित् ज्ञानं तस्याः। चेतनाणुसमूहत्वात् चेतना ज्ञानं तस्याणवः अंशाः अविभागप्रतिच्छेदास्तेषां समूहः समुदायाः तत्त्वान्न चित्रसंविदृजुसूत्रनयस्य विषयः। न खलु समुदाय प्रतिनियतव्यवहारोपयोगीति। नन्वेवं तत्र भेदः किमिति नोपलक्ष्यते इति चेदाह– भेदानुपलक्षणमिति। सदृशौ परौ परोत्पत्तिविप्रलंभादित्यध्याहारः। ततो भेदस्य नानात्वस्यानुपलक्षणमदर्शनं सदृशापरापरोत्पत्त्या विप्रलब्धबुद्धिः स्यादिति व्याख्यायते। अयमर्थः यथा अयोगोलकादौ पर्यायभेदो विद्यमानोऽपि विप्रलब्धबुद्धिना न निश्चीयते तथा चित्र-

संविद्यपि तदंशभेदो वसन्नपि नोपलक्ष्यत इति। अथवा स्यात्कथंचिद्द्रव्याविनाभाविपर्याय ऋजुसूत्रस्य प्रधानं। सर्वथा द्रव्यनिरपेक्षस्य पर्यायस्यावस्तुत्वात्। निरन्वयस्य क्षणिकैकांत ऋजुसूत्राभास इति व्याख्येयं॥

अधुना शब्दसमभिरूढेत्थंभूतांस्त्रीनपि नयान्निरूपयति--

कालकारकलिंगानां भेदाच्छब्दार्थभेदकृत्॥
अभिरूढस्तु पर्यायैरित्थंभूतः क्रियाश्रयः॥ १४॥

शब्दो नाम नयः स्यात्। किंविशिष्टः अर्थभेदकृत् अर्थस्य प्रमेयस्य भेदं नानात्वं करोत्यभिप्रैतीत्यर्थभेदकृत्। कस्माद्भेदाद्विशेषात्। केषां कालकारकलिंगानां कालश्च कारकं च लिंगं च कालकारकलिंगानि तेषामुपलक्षण-मेतत् तेन संख्यासाधनोपग्रहादपीत्यर्थः। तत्र कालभेदा-त्तावद्भूद्भवति भविष्यति जीवः। न खलु सत्ताभेदं विनाऽ भूतादिप्रयोगो युक्तोऽअप्रसंगात्। कारकभेदात्पश्यति देव-दत्तः, दृश्यते देवदत्तेन देवदत्तं गोपयति, देवदत्तेन दीयते देवदत्ताय, देवदत्ताल्लभते, देवदत्ते पौरुषमिति। न हि स्वातंत्र्यादिधर्मभेदाभेदे कर्त्रादिकारकप्रयोगो युक्तः अतिप्रसंगात्। एवं लिंगभेदात् दाराः कलत्रं भार्येति पुंस्त्वादिधर्मभेदेऽपि अभेदेन सर्वत्र तन्नियमाभावप्रसंगात्। संख्याभेदात् जलमापः आम्रवणं चैत्रमैत्रौ कुलमिति।

एकत्वादिधर्मभेदादेव तद्वचनं भेदोपपत्तेरन्यथाऽतिप्रसंगादेव । साधनभेदात् देवदत्तः पचति, त्वं पचसि, अहं पचामीति । न खलु अन्यार्थत्वाद्यभावे प्रथमपुरुषादिप्रयोगो दृष्टोऽतिप्रसंगादेव । उपग्रहभेदादप्यर्थभेदो यथा तिष्ठति वितिष्ठते अवतिष्ठते इति व्यवाद्युपसर्गाणामितरेतरभेदादर्थभेदकत्वादन्यथा प्रतिष्ठते इत्यादावपि तदर्थप्रसंगात् । अतः कारिकोत्तरार्धं व्याख्यायते । तु पुनरभिरूढो नाम नयः । पर्यायैः पर्यायशब्दैः । अर्थभेदकृत् यथा इंदनादिंद्रः शकनात् शक्रः पूर्दारणात्पुरंदरः इति । न हींदनादिधर्मभेदाभावे इंद्रादिशब्दः प्रयोक्तुं शक्यः । अन्यथऽतिप्रसंगात् । अभि स्वार्थाभिमुख्येन रूढः प्रसिद्धोऽभिरूढः इति निरुक्तेः । पुनरित्थंभूतो नाम नयः । क्रियाश्रयो विवक्षितक्रियाप्रधानः सन्नर्थभेदकृत् । यथा यदैवेंदति तदैवेंद्रः नाभिषेचको न पूजक इति । अन्यथाऽपि तद्भावे क्रियाशब्दप्रयोगनियमो न स्यात् । ततोऽर्थभेदाभावेऽपि कालादिभेदोऽविरुद्ध इति वैयाकरणैकांतः शब्दनयाद्याभासः स्यात् नन्वेवं लोकसमयविरोध इति चेद्विरुध्यतां तत्त्वमीमांसायास्तदिच्छानुवृत्त्यभावात् । न हि भेषजमातुरेच्छानुवर्ति । कथं तर्हि तद्विरोधध्वंस इति चेत्स्यात्कारबलादिति ब्रूमः । सर्वत्र प्रतिपक्षाकांक्षालक्षणस्य तदर्थस्य संभवात् । नैगमादयो हि नयाश्चत्वारो द्रव्यार्थिकाः । ऋजुसूत्रादयश्चत्वारः

र्यायार्थकाः । ते च परस्परापेक्षा एव व्यवहाराय चेष्टंते न तन्निरपेक्षाः । अतो व्यवहारोपलब्धौ च कुतस्त्यो विरोध इति । नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्राश्चत्वारोऽर्थनयाः । शब्द-समभिरूढेत्थंभूतास्त्रयः शब्दनयाः शब्दाश्रयेण प्रवृत्तेः ॥

ननु शब्दार्थयोः संकेतग्रहणाभावात्कथं शब्दभेदादर्थभेदः स्यात् । प्रत्यक्षेण तद्ग्रहणेऽपि व्यवहारानुपयोगात् । गृहीतसंकेतयोस्तदैव नष्टत्वात् । स्मृतेश्च तदविषयत्वात्तयोरतीतत्वादिति सौगतविप्रतिपत्तिं निराकुर्वन्नाह—

अक्षबुद्धिरतीतार्थं वेत्ति चेन्न कुतः स्मृतिः ॥
प्रतिभासभिदैकार्थे दूरासन्नाक्षबुद्धिवत् ॥१५॥

अक्षैर्जनिता बुद्धिर्ज्ञानं अतीतार्थं स्वकारणभूतं शब्दं वाच्यं च । चेद्यदि । वेत्ति जानाति सौगतमते हि विषयस्य ज्ञानकारणत्वात् । कारणं च कार्यक्षणात्पूर्वक्षणवर्ति इत्युच्यते । तदा कुतः कारणात्स्मृतिरप्यतीतार्थं न वेत्ति, अपि तु वेत्त्येवेत्यर्थः । नन्वेवं स्मृतेः कथं प्रामाण्यं गृहीतग्राहित्वादित्याशंक्याह— प्रतीत्यादि । एकोऽभिन्नोऽतीतत्वाविशेषात्साधारणोऽर्थो विषयः शब्दार्थलक्षणस्तस्मिन्नपि स्मृतिः प्रमाणमिति शेषः । कुतः प्रतिभासभिदा प्रतिभासस्यातीताकारपरामर्शस्य भिद्भेदस्तया । प्रत्यक्षेण हीदमिति यदनुभूयते तदेव कालांतरे तदित्यतीताकारतया स्मृत्या विषयीक्रियते इति । अस्मि-

न्नर्थे दृष्टांतमाह— दूरेत्यादि । दूरश्चासावासन्नश्च दूरासन्नस्तस्मिन्नर्थे पादपादौ । अक्षबुद्धिवत् यथा प्रत्यक्षज्ञानानां स्पष्टास्पष्टप्रतिभासभेदात् प्रामाण्यं तथा स्मृतेरपीत्यर्थः ॥

ननु शब्दार्थयोः संबंधाभावात्कथं शब्दस्य प्रामाण्यं यतस्तद्विषये शब्दादयो नयाः सम्यंच इति तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमाह—

अक्षशब्दार्थविज्ञानमविसंवादतः समं ।
अस्पष्टं शब्दविज्ञानं प्रमाणमनुमानवत् १६

समं समानं प्रमाणं भवति । किं अक्षशब्दार्थविज्ञानं । अक्षमिंद्रियं । शब्दो वर्णपदवाक्यात्मको ध्वनिः । ताभ्यां जनितमर्थस्य सामान्यविशेषात्मकवस्तुनो विशिष्टं संशयादिविकलं ज्ञानमवबोधनं । कुतः अविसंवादतः अर्थक्रियायामव्यभिचारात् । यथाऽक्षजनितमर्थज्ञानमविसंवादात्प्रमाणं तथा शब्दजनितमपीत्यर्थः । न ह्यनाप्तवचनजनितज्ञानस्यार्थक्रियाविसंवादादेवं आप्तवचनजनितज्ञानस्याप्रामाण्यं शक्यमक्षज्ञाने अपि क्वचिद्विसंवादात् । सर्वत्राप्रामाण्यशंकाप्रसंगात् । नन्वक्षज्ञानं प्रमाणं स्पष्टत्वात् न शाब्दमस्पष्टत्वादित्याशंक्याह— अस्पष्टमिति । अस्पष्टमविशदमपि शब्दजनितं ज्ञानं प्रमाणमभ्युपगंतव्यमविसंवादादेव । न हि स्पाष्ट्यमस्पाष्ट्यं वा प्रामाण्येतरनिबंधनं तयोः संवादेतरनिबंधनत्वात् । किंच

अनुमानवत् यथाऽनुमानमस्पष्टमपि विसंवादाभावात्प्रमाणम-नुमन्यते तथा शाब्दमपि प्रमाणमनुमंतव्यमविसंवादाविशे-षादिति ॥

ननु कालकारकलिंगभेदाच्छब्दोऽर्थभेदकृदित्ययुक्तं तद्ग्रा-हकप्रमाणाभावादित्याशंकां निरासयन्नाह—

कालादिलक्षणं न्यक्षेणान्यत्रेक्ष्यं परीक्षितं ॥
द्रव्यपर्यायसामान्यविशेषात्मार्थनिष्ठितम् ॥१७॥

ईक्ष्यमालोकनीयं । किं कालादिलक्षणं काल आदिर्येषां कारकलिंगसंख्यासाधनोपग्रहादीनां ते कालादयः तेषां लक्ष-णमसाधारणं स्वरूपं । किंविशिष्टं परीक्षितं विचारितं स्वामिसमंतभद्राद्यैः सूरिभिः । कथं न्यक्षेण विस्तरेण । क अन्यत्र तत्त्वार्थमहाभाष्यादौ । किंविशिष्टं द्रव्येत्यादि । द्रव्यं पूर्वापरपरिणामव्यापकमूर्ध्वतासामान्यं पर्यायाः एक-स्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः । सामान्यं सदृश-परिणामलक्षणं तिर्यक्सामान्यं । विशेषोऽर्थांतरगतो व्यति-रेकः । द्रव्यं च पर्यायाश्च सामान्यं च विशेषश्च द्रव्य-पर्यायसामान्यविशेषाः । ते आत्मा स्वभावो यस्यासौ तदात्मकः । स चासावर्थश्च तस्मिन्निष्ठितं नियतं तदात्म-कमिति यावत् । एवंविधस्यैव अर्थक्रियासंभवान्निरपेक्षैकांते तद्विरोधात् । न हि केवलं द्रव्यं पर्यायरहितं, पर्यायो

वा द्रव्यव्यातीरिक्तः, सामान्यं विशेषशून्यं, विशेषो वा सामान्यशून्यः प्रमाणपदवीमधिरोहति तथाऽप्रतीतेः । यतः कालादिकमेकांतरूपं स्यात् । तत्र कालस्त्रिधा अतीतानागतवर्तमानभेदात् । क्रियानिर्वर्तकं कारकं । तच्च षोढा । कर्तृकर्मकरणसंप्रदानापादानाधिकरणभेदात् । शब्दप्रवृत्तिनिमित्तसमर्थधर्मो लिंगं तच्च त्रिधा स्त्रीपुंनपुंसकभेदात् । त्रिधा संख्या एकत्वाद्वित्वबहुत्वभेदात् । साधनं क्रियाश्रयः तदपि त्रिधा अन्ययुष्मदस्मदर्थभेदात् । उपग्रहः प्रादिरुपसर्गः अनेकधेति ॥

नन्वेकांतेऽपि कथमेकस्य षट्कारक्योद्यनकत्वं घटत इत्याशंक्याह—

एकस्यानेकसामग्रीसन्निपातात्प्रतिक्षणं ॥
षट्कारकी प्रकल्प्येत तथा कालादिभेदतः॥१८॥

प्रकल्पेत घटेतं । का षट्कारकी षण्णां कारकाणां समाहारः षट्कारकी । कस्य एकस्यापि जीवादिवस्तुनः । अपिशब्दस्याध्याहारात् । कथं प्रतिक्षणं क्षणः समयः क्षणं क्षणं प्रति प्रतिक्षणं । कस्मात् अनेकसामग्रीसन्निपातात् अनेका बहिरंगांतरंगा सामग्री कारणकलापः तस्याः सन्निपातः सन्निधिस्तस्मात् । तथाहि यदैव चक्रादिसन्निधानाद्घटस्य कर्ता देवदत्तस्तदैव स्वप्रेक्षकजनसन्निधानात् स

एव दृश्यते इति कर्म। प्रयोजनापेक्षया देवदत्तेन कारयतीति करणं। दीयमानद्रव्यापेक्षया देवदत्ताय ददातीति संप्रदानं। अपायापेक्षया देवदत्तादपैतीति अपादानं। तत्रस्थद्रव्यापेक्षया देवदत्ते कुंडलमित्यधिकरणमिति अविरोधात् तथा प्रतीतेः। न हि प्रतीयमाने विरोधो नाम। तथा युगपदिव कालादिभेदतः कालदेशाकाराणां भेदः क्रमस्तेनापि षट्कारकी प्रकल्प्येत। तथाहि अकरोद्देवदत्तः करोति करिष्यतीति प्रतीतिबलायातत्वात्। अथवा तथा एकस्य षट्कारकीप्रकल्पनवत्कालाद्यपि प्रकल्प्येत। कुतः भेदतः कथंचिदर्थस्य भेदात्। सर्वथाऽभिन्ने सकलकालकारकादिभेदानुपपत्तेः। ततः स्याद्वाद एव श्रुतज्ञानविकल्पात्। सर्वेऽपि नैगमादयः सुनया दृष्टेष्टाविरोधात्। अन्यत्र दुर्नयास्तद्विरोधादिति सूक्तं भट्टाकलंकदेवैर्भेदाभेदेत्यादि। ननु नैगमादयः सिद्धांते नयाः प्रतिपादिताः। अत्र पुनः संग्रहादय इति कथमपसिद्धांतो न स्यादिति चेन्न अभिप्रायभेदात्। सर्वतस्तोकविषयो हीत्थंभूतस्तस्य क्रियाभेदादेवार्थभेदकत्वात्। ततो बहुविषयः समभिरूढस्य पर्यायशब्दभेदात् भेदकत्वात्। ततो बहुतरविषयः शब्दः तस्य कालादिभेदाद्भेदकत्वात्। ततः पुनः ऋजुसूत्रो बहुतमविषयः शब्दगोचरेतरविवक्षितपर्यायविषयत्वात्। ततोऽप्यधिकविषयो व्यवहारः पर्यायविशिष्टद्रव्यग्रहणात्। ततश्च

प्रचुरविषयः संग्रहः सकलद्रव्यपर्यायव्यापी सर्वग्रहणात्। ततः पुनरभ्यधिकविषयो नैगमः सत्त्वासत्वयोर्गुणमुख्यभावेन ग्रहणात्। ततो विषयापेक्षया नैगमादीनां पूर्वनिपातः सिद्धांते युक्तः। अत्र पुनर्न्यायशास्त्रे समस्तनास्तिकविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थं सकलपदार्थास्तित्वसूचनस्य संग्रहनयस्य पूर्वनिपाते विरोधाभावात्।

ननु नयस्य विकल्पात्मकत्वान्न तत्त्वाधिगमसाधनत्वं स्मृत्यादिवदिति सौगतादिप्रत्यवस्थां प्रत्याचक्षाणः प्रकरणोपसंहारमाह—

व्याप्तिं साध्येन हेतोः स्फुटयति न विना चिंतयैकत्रदृष्टिः। साकल्येनैष तर्कोऽनधिगतविषयस्तत्कृतार्थैकदेशे ॥ प्रामाण्ये चानुमायाः स्मरणमधिगतार्थादिसंवादि सर्वं। संज्ञानं च प्रमाणं समधिगतिरतः सप्तधाख्यैर्नयौघैः ॥ १९ ॥

न स्फुटयति न प्रकाशयति। का एकत्रदृष्टिः एकस्मिन्महानसादौ साध्यसाधनयोर्दृष्टिर्दर्शनं प्रत्यक्षमित्यर्थः। कां व्याप्तिं अविनाभावं। कस्य हेतोः साधनस्य धूमादेः। केन सह साध्येनाग्न्यादिना सह। केन साकल्येन सक-

कानां देशकालांतरितसाध्यसाधनव्यक्तीनां भावः साकल्यं तेन । कथं चिंतया विना ऊहप्रमाणाभावे इत्यर्थः । न हि दृष्टांतधर्मिणि साध्यसाधनसंबंधदर्शनं साकल्येन व्याप्ति-प्रतिपत्तौ समर्थमनुमानानर्थक्यप्रसंगात् । तद्द्रष्टुरभिज्ञत्वापत्ते-श्च । तर्हि किं प्रमाणं तां स्फुटयतीति चेदुच्यते । एष तर्कः यः साकल्येन साध्यसाधनयोर्व्याप्तिं स्फुटयति ज्ञानं, स एव च सकलानुमानिकप्रसिद्धस्तर्क इत्युच्यते । ननु गृहीत-ग्राहित्वादस्याप्रामाण्यमित्याशंक्याह— अनधिगतविषयः । अन-धिगतः प्रमाणांतरेणानिश्चितः विषयोऽविनाभावो यस्यासौ तथोक्तः । किंविशिष्टः संज्ञानं सम्यक्ज्ञानं अर्थप्रमाणं भवतीति । तथा स्मरणं स्मृतिश्च प्रमाणं । किंविशिष्टं अधिगतार्थाविसंवादि अधिगतः प्रत्यक्षेणानुभूतोऽर्थो विषय-स्तत्राविसंवादि विसंवादरहितमिति । एतच्च संज्ञानमिति । कस्मिन् सति प्रामाण्ये प्रमाणत्वे सति । कस्या अनुमायाः अनुमानस्य । क्व तत्कृतार्थैकदेशे तेन तर्केण कृतो निश्चितः अर्थोऽविनाभावस्तस्यैकदेशः साध्यं तत्रानुमानप्रामाण्यस्य स्मृति-तर्कप्रामाण्याविनाभावित्वादित्यर्थः । अथवा संज्ञानं च प्रत्यभिज्ञानं च प्रमाणमविसंवादाविशेषात् । न केवलमेतत्परो-क्षमेव विकल्पात्मकं प्रमाणमपि तु सर्वं प्रत्यक्षमपि विकल्पात्मकं प्रमाणं तस्यैव व्यवहारोपयोगित्वात् । निर्विकल्पकस्य क्वचि-दप्यनुपयोगात् । अतः कारणात्तर्कादिवत् विकल्पात्मकैरेवं

नयौघैः समधिगतिः सम्यगधिगमो जीवादितत्त्वनिर्णयो भवति। किंभूतैः सप्तधाख्यैः सप्तधा नैगमादिसप्तप्रकारा आख्या नाम येषां तैरिति । प्रमाणनयैरधिगम इति वचनात् । प्रमाणपरिगृहीतार्थविषयत्वान्नयानां निर्विषयत्वमिति चेन्न, द्रव्यपर्यायात्मनो वस्तुनः प्रमाणेन परिगृहीतत्वात् । नयानां च तदेकदेशे द्रव्ये पर्याये वा प्रतिपक्षाविनाभाविनि प्रवृत्तेः । सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति प्रवचनात् ॥

ननु सौगतादिमतेऽपि तत्त्वस्य समधिगतिरस्तीत्याशंकायामाह—

सर्वज्ञाय निरस्तबाधकधिये स्याद्वादिने
ते नम- । स्तात्प्रत्यक्षमलक्षयन् स्वमत-
मभ्यस्याप्यनेकांतभाक् ॥ तत्त्वं शक्य-
परीक्षणं सकलविन्नैकांतवादी ततः। प्रेक्षा-
वानकलंक याति शरणं त्वामेव वीरं
जिनम् ॥ २० ॥

न स्यात् सकलवित् त्रिकालगोचराशेषद्रव्यपर्यायवेदी न भवेत् । कः एकांतवादी एकांतं केवलं द्रव्यमेव पर्याय एव वा तत्त्वं वदति प्रतिपादयतीत्येवंशील एकांतवादी सुगतादिः । किं कुर्वन् अलक्षयन् अजानन् । किं तत्त्वं जीवादिवस्तु

स्वरूपं । किंविशिष्टं अनेकांतभाक् अनेकांतं द्रव्यपर्यायात्मतां भजत्यात्मसात्करोतीत्यनेकांतभाक् । पुनः कथंभूतं शक्यपरीक्षणमपि शक्यं परीक्षणं संशयादिव्यवच्छेदेन विवेचनं यस्य तथोक्तं लौकिकगोचरमपीत्यर्थः । कथं प्रत्यक्षं स्पष्टं यथा भवति तथा । किं कृत्वाऽभ्यस्य भावयित्वा । किं स्वमतं सर्वथैकांतदर्शनं निरन्वयविनाशादिभावनावहितचेतसोऽनेकांततत्त्वमधिगंतुमनलमिति कथं सर्ववेदित्वं तेषामित्यर्थः । ततः कारणात् भो अकलंक ज्ञानावरणादिकलंकरहित नमस्करवाणि । कस्मै ते तुभ्यं । कथंभूताय सर्वज्ञाय सर्वं लोकालोकवस्तुजातं जानातीति सर्वज्ञस्तस्मै । पुनः किंविशिष्टाय निरस्तबाधकधिये निरस्तमनेकांततत्त्वभावनाबलाद्विश्लेषितं बाधकं दोषावरणद्वयं यस्याः सा निरस्तबाधका तादृशी धीर्यस्य तथोक्तस्तस्मै । भूयः किंभूताय स्याद्वादिने स्यात्कथंचित्सदाद्यनेकांतात्मकं तत्त्वं वदतीत्येवंशीलस्तस्मै । न केवलमहमेव ते नमस्करोमि किंतु प्रेक्षावान् परीक्षकः सर्वोऽपि त्वामेव शरणं याति प्रतिपद्यते । नित्यप्रवृत्तवर्तमानविवक्षया एवं वचनात् । किंनामानं वीरं पश्चिमतीर्थकरं वर्धमानं । पुनरपि कथम्भूतं जिनं बहुविधविषमभवगहनभ्रमणकारणं दुष्कृतं जयतीति जिनः तं । तत्तीर्थकृतोपकारत्वात् शास्त्रकाराणामिति ॥

भट्टाकलंकशिशिरांशुगर्भाभिरेत-

त्पुष्टं नयेतरनिरूपणसस्यजातं ॥
तत्रार्थपाकपटुतां नयनिष्ठुरेयं।
सौरी भजत्यखिललोकहिताय वृत्तिः ॥ १ ॥

इत्यभयचंद्रसूरिकृतौ लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तौ स्याद्वादभूषणसंज्ञायां पंचमः परिच्छेदः॥

समाप्तश्च नयप्रवेशो द्वितीयः

अथेदानीमागमस्वरूपं निरूपयन् प्रवेशस्यादौ मध्ये मंगलभूतमिष्टदेवतागुणस्तोत्रमाधत्ते

प्रणिपत्य महावीरं स्याद्वादेक्षणसप्तकं ।
प्रमाणनयनिक्षेपानभिधास्ये यथागमं ॥ १ ॥

अभिधास्ये प्रतिपादयिष्यामि। कान् प्रमाणनयनिक्षेपान् प्रमाणे च नयाश्च निक्षेपाश्च प्रमाणनयनिक्षेपास्तान्। कथं यथागमं आगमः प्रवचनं तमनतिक्रम्य अनादिपरंपराप्रसिद्धे आर्षे यथा ते प्रतिपादितास्तथा तदनुसारेणाहमपि तान् वक्ष्ये न स्वरुचिरचितानित्यर्थः। किं कृत्वा प्रणिपत्य प्रणम्य। कं महावीरं पश्चिमतीर्थकरं। कथंभूतं स्याद्वादेक्षणसप्तकं स्यादस्तीत्यादिसप्तभंगमयो वादः स्याद्वादः ईक्षणानां सप्तकं ईक्षणसप्तकं स्याद्वाद एवेक्षणसप्तकं यस्माद्विनेयानां भवत्यसौ तथोक्तस्तं न खलु निरुपकारः प्रेक्षावतां प्रमाणार्होऽतिप्रसंगात् ॥

अथोद्दिष्टानां प्रमाणादीनां लक्षणमाह—

ज्ञानं प्रमाणमात्मादेरुपायो न्यास इष्यते ॥
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः २

इष्यतेऽभ्युपगम्यते सकलविप्रतिपत्तीनां प्रागेव निरस्तत्वात् । किं प्रमाणं । किंविशिष्टं ज्ञानं जानाति ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञप्तिमात्रं वा ज्ञानमित्युच्यते । द्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदविवक्षायां कर्त्रादिसाधनोपपत्तेः । कस्य आत्मादेः आत्मा स्वरूपमादिर्यस्य बाह्यार्थस्य स आत्मादिस्तस्य स्वार्थस्य ग्राहकमित्यर्थः । अथवाऽऽत्मा चिद्द्रव्यमादिशब्देनावरणानां क्षयोपशमः क्षयश्चांतरंगं । बहिरगं पुनरिंद्रियाऽनिंद्रियं गृह्यते । तस्मादुपजायमानमित्यध्याहारः । तथा इष्यते । कः नयः । किंरूपः अभिप्रायः विवक्षा । कस्य ज्ञातुः श्रुतज्ञानिनः । तथा इष्यते । कः न्यासो निक्षेपः । किंविशिष्टः उपायः अधिगमहेतुः नामादिरूपः । अर्थस्य स्वतःसिद्धत्वात् किमेतैः प्रमाणदिभिः इत्याशंक्याह— युक्तीत्यादि । युक्तितः प्रमाणनयनिक्षेपैरेवार्थस्य जीवादेः परिग्रहः प्रमितिर्न स्वत इति ।

अथ नाकारणं विषय इति परमतं निराकर्तुमर्थस्य कारणत्वं प्रतिक्षिपति—

अयमर्थ इति ज्ञानं विद्यान्नोत्पत्तिमर्थतः ॥
अन्यथा न विवादः स्यात्कुलालादिघटादिवत

विद्याज्जानीयात् । किं ज्ञानं । कथं अयमर्थ इति । पुनर्न विद्यात् । कां उत्पत्तिं अहमस्मादुत्पन्नमिति स्वजन्म । कस्मात् अर्थतो घटादेः सकाशात् । इदं च प्रमेयं प्रतीतिसिद्धमेव । अन्यथा यद्यर्थात्स्वोत्पत्तिं ज्ञानं विद्यात् तदा वादिप्रतिवादिनोर्विवादो ज्ञानमर्थादुत्पन्नं नेति विप्रतिपत्तिः । किंवत् कुलालादिघटादिवत् यथा कुलालादेः सकाशाद्घटादेर्जन्मनि प्रतीतिसिद्धे कस्यापि न विवादोऽस्ति, तथाऽर्थात् ज्ञानजन्मन्यपि विवादो मा भूत् । अस्ति चायं विवादः । स्याद्वादिनां ज्ञानजन्मनीति ॥

अथानुमानात्तदुत्पत्तिसिद्धिः स्यादित्याशंक्याह—

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थश्चेत्कारणं विदः ॥
संशयादिविदुत्पादः कौतस्कुत इतीक्ष्यतां ४

चेद्यदि कारणं कथ्यते । कः अर्थो विषयः । कस्याः विदो ज्ञानस्य । काभ्यां अन्वयव्यतिरेकाभ्यां । सति भवनमन्वयः । असत्यभवनं हि व्यतिरेकः ताभ्यां । तथाहि ज्ञानमर्थकारणकं तदन्वयव्यतिरेकानुविधानादिति । तदा कौतस्कुतः स्यात् कुतस्कुत आगतः कौतस्कुतः । कः संशयादिविदुत्पादः

संशयविपर्यासज्ञानोत्पत्तिरित्येवमीक्ष्यतां तद्वादिभिः स्वप्नादि पर्यालोच्यतां अर्थाभावेऽपि संशयाद्युत्पत्तेः। न हि स्थाणुपुरुषात्मकः केशोंडुकस्वभावो वाऽर्थस्तज्ज्ञानोत्पत्तौ व्याप्रियते। ततो मागासिद्धमर्थान्वयव्यतिरेकानुविधानं ज्ञानस्येति ॥

अथाज्ञानमपि सन्निकर्षः प्रमाणमित्याशंकां निराकुर्वन्नाह—

सन्निधेरिंद्रियार्थानामन्वयव्यतिरेकयोः ॥
कार्यकारणयोश्चापि बुद्धिरध्यवसायिनी ॥ ५ ॥

अध्यवसायिनी निश्चायिका। का बुद्धिर्ज्ञानमेव। कस्य सन्निधेरपि सन्निकर्षस्यापि न केवलमर्थस्येत्यपिशब्दार्थः। केषां इंद्रियार्थानां इंद्रियाणि चक्षुरादीनि अर्थाश्च रूपादयस्तेषां न केवलं संनिधेरपि तु अन्वयव्यतिरेकयोश्च सन्निकर्षस्य भावाभावयोश्च। तथा कार्यकारणयोश्च। कार्यं सन्निकर्षः कारणमिंद्रियादिः तयोश्च बुद्धिरेवाध्यवसायिनी। ततः सैव प्रमाणं न सन्निकर्षादि तस्य प्रमेयत्वात् ॥

अथालोकस्य ज्ञानकारणत्वं निराकुर्वन्नित्याह—

तमो निरोधि वीक्षंते तमसा नावृतं परं ॥
कुड्यादिकं न कुड्यादितिरोहितमिवेक्षकाः ६

वीक्षंते विशेषेण नीलादिरूपतया पश्यंति। के ईक्षकाः पश्यंतो जनाः। किं तमोऽधकारं पुद्गलपर्यायं। किंविशिष्टं

निरोधि प्रमेयांतरतिरोधायकं । पुनर्न वीक्षंते । किं परं घटादिकं । कथंभूतं वृतमाच्छादितं । केन तमसा । ततः कथमालोको ज्ञानकारणं तदभावेऽपि तदुत्पत्तेरिति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाह— इव यथा कुड्यादिकमीक्षंते ईक्षकाः । कुड्यादितिरोहितं पुनर्घटादिकं नेक्षंते । तथा तमो वीक्षंते तदावृतं तु परं नेक्षंते इति । ननु तमोवदालोकावृतमपि घटादिकं मैक्षिषतेति चेत्स्यादेवं यदि प्रकाशस्यावैशद्यं । यस्य हि द्रव्यस्य वैशद्यमस्ति तेनावृतमप्यनावृतप्रख्यमेव स्फटिकाभ्रकाद्यावृतवत् । अत आलोकवत्तदावृतमपि पश्यंति तस्य वैशद्यात् । तमः पुनः पश्यंति तदावृतं न पश्यंति तस्यावैशद्यमिति । तन्न ज्ञानकरणमालोकः प्रमेयत्वात् अर्थवदिति सिद्धमंतरंगकारणं ज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमः । बहिरंगं पुनरिंद्रियानिंद्रियरूपमिति ॥

नन्वर्थादनुत्पन्नत्वे ज्ञानस्य सर्वार्थप्रकाशप्रसंगः स्यादविविशेषादित्याशंक्याह—

मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः ॥
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ॥ ७ ॥

यथा स्यात् । का मलविद्धमणिव्यक्तिः मलैः कालिमरेखादिभिः विद्धः स चासौ मणिश्च पद्मरागादिः तस्य व्यक्तिस्तेजःप्रादुर्भावः । कथं अनेकप्रकारतः अनेके बहवः

प्रकारा विशदाविशददूरादूरप्रकाश्यप्रकाशनविशेषास्तानाश्रित्य। तथा स्यात् । का कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिः कर्माणि ज्ञानावरणादीनि तैराविद्धः संबद्धः स चासावात्मा च तस्य विज्ञप्तिरर्थोपलब्धिः । कथं अनेकप्रकारतः अनेके नानारूपाः प्रत्यक्षेतरदूरासन्नार्थप्रतिभासनविशेषा इंद्रियानिंद्रियातींद्रियशक्तिविशेषाः क्षयोपशमविशेषाश्च तानाश्रित्येत्यर्थः । तदावरणनिरवशेषनिरासे तु सकलार्थविज्ञप्तिरात्मन उपपद्यत एव ज्ञानस्वभावत्वात् तस्येति ॥

ननु यस्मादर्थाज्जायते यदाकारमनुकरोति यत्र व्यवसायं जनयति ज्ञानं तत्रैव तस्य प्रामाण्यं न सर्वत्रेति सौगताशंकां प्रतिक्षिपति—

न तज्जन्म न ताद्रूप्यं न तद्व्यवसितिः सह ॥
प्रत्येकं वा भजंतीह प्रामाण्यं प्रति हेतुतां ८

इह ज्ञाने । प्रामाण्यं प्रति प्रमाणत्वमुद्दिश्य । हेतुतां निमित्तभावं न भजंति । किं न इत्याह— तज्जन्म तस्मादर्थाज्जन्म उत्पत्तिः तस्य करणग्रामेण व्यभिचारात् । न च ताद्रूप्यं तस्यार्थस्य रूपमिव रूपमाकारो यस्य तद्रूपं तस्य भावस्ताद्रूप्यं तस्य समानार्थसमनंतरज्ञानेन व्यभिचारात् । नापि तद्व्यवसितिः तत्रार्थे व्यवसितिर्व्यवसायो निश्चयः तस्य द्विचंद्रादिव्यवसायेन व्यभिचा-

रात्। कथं प्रत्येकं एकमेकं प्रति नियतमेकैकमित्यर्थः। सह मिलित्वा वा तानि प्रामाण्यहेतुतां न भजंति तन्नितयस्यापि शुक्ले शंखे पीताकारज्ञानजनकेन समनंतरप्रत्ययेन व्यभिचारात्॥

ततः स्वकारणकलापादुपजायमानं प्रकाशरूपं ज्ञानं स्वत एवार्थग्राहकमित्याह—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा॥
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ९

यथा स्यात्। कः अर्थः घटादिः। किंविशिष्टः स्यात् परिच्छेद्यो ज्ञेय.। कथं स्वतः स्वभावादेव न ज्ञानादुत्पत्त्यादेः। किंभूतोऽपि स्वहेतुजनितोऽपि स्वस्य हेतुर्मृदादिसामग्री तेन जनितो निष्पादितोऽपि। तथा ज्ञानं परिच्छेदात्मकमर्थग्रहणात्मकं स्यात्। कुतः स्वभावादेव नार्थादुत्पत्त्यादेः। किंविशिष्टमपि स्वहेतूत्थमपि। स्वस्य हेतुरंतरंगः आवरणक्षयोपशमलक्षणः। बहिरंगः पुनरिंद्रियानिंद्रियरूपस्तस्मादुत्था उत्पत्तिर्यस्य तत्तथोक्तं तादृशमपीत्यर्थः। अर्थग्रहणस्वभावं हि ज्ञानं केनचित्प्रतिबद्धशक्तिकं किंचिदेव जानाति। प्रतिबंधविगमविशेषे त तदेव स्वविषयविशेषं जानातीति॥

अथ ज्ञानं प्रमाणमात्मादेरित्यमुमेवार्थं विशदयति—

व्यवसायात्मकं ज्ञानमात्मार्थग्राहकं मतं ॥
ग्रहणं निर्णयस्तेन मुख्यं प्रामाण्यमश्नुते ॥१०॥

मतमिष्टं ज्ञातं च। किं ज्ञानं। किंस्वरूपं व्यवसायात्मकं विशेषस्य जात्याद्याकारस्यावसायो निश्चयः स एव चाऽऽत्मा स्वरूपं यस्य तत्तथोक्तं। अनेन प्रत्यक्षं कल्पनापोढमित्येतन्निरस्तं। पुनः किंविशिष्टं आत्मार्थग्राहकं आत्मा स्वरूपमर्थो बाह्यो घटादिस्तौ गृह्णाति निर्णयतीत्यात्मार्थग्राहकं। अनेन ज्ञानमर्थग्राहकमेव न स्वरूपग्राहकं, स्वग्राहकमेव नार्थग्राहकमित्येकांतद्वयं निराकृतं। तेन कारणेनाश्नुते भजति। किं ग्रहणं ज्ञानं कर्तृ। किंरूपं निर्णयः स्वार्थव्यवसायस्तद्रूपमित्यर्थः। किं कर्मतापन्नं प्रामाण्यं प्रमाणभावं। किंविशिष्टं मुख्यमनुपचरितं ज्ञानकरणत्वादुपचारेणैवेंद्रियलिंगादेः प्रमाणत्वात्। ततः सूक्तं ज्ञानं प्रमाणमात्मादेरिति ॥

इदानीं तत्संख्यामाह—

तत्प्रत्यक्षं परोक्षं च द्विधैवात्रान्यसंविदां।
अंतर्भावान्न युज्यंते नियमाः परकल्पिताः॥११॥

तत्सम्यग्ज्ञानात्मकं प्रमाणं तत् द्विधैव द्विप्रकारमेव। कावेव प्रकारावाह— प्रत्यक्षं परोक्षं चेति। नन्वनुमानादि-

प्रमाणभेदसंख्याऽपि संभाव्यत इत्याह– अत्रेत्यादि । न युज्यंते न संभवंति । के नियमाः द्वित्र्यादिसंख्याप्रतिज्ञाः । किं-विशिष्टाः परपरिकल्पिताः परैः सौगतादिभिः कल्पिता रचिताः । कुतो न युज्यंते अंतर्भावात् संग्रहात् । कासां अन्यसंविदां अनुमानादिज्ञानानां । क्व अत्रैव प्रत्यक्षपरोक्ष-संग्रह एव । तत्र प्रत्यक्षमिंद्रियानींद्रियातींद्रियभेदात् त्रिधा । स्पर्शादींद्रियव्यापारप्रभवमिंद्रियप्रत्यक्षं । केवलमनोव्यापारप्र-भवमनिंद्रियप्रत्यक्षं । तदेतद्द्वयमपि सांव्यवहारिकं देशतो वैशद्यात् । अतींद्रियं पुनः मुख्यप्रत्यक्षं अवधिमनःपर्यय-केवलज्ञानभेदात् त्रिधा । तत्र मूर्तद्रव्यालंबनमवधिज्ञानं देशा-वधिपरमावधिसर्वावधिभेदात् त्रिविधं । तत्र देवनारकाणां देशावधिर्भवप्रत्यय एव । तिर्यङ्मनुष्याणां गुणप्रत्ययः । इतरौ मनुष्यस्य चरमशरीरस्य संयतस्य गुणप्रत्ययावेव । ऋजु-मतिविपुलमतिभेदान्मनःपर्ययो द्विधा । प्रगुणनिर्वर्तितमनोवा-क्कायगतसूक्ष्मद्रव्यालंबन ऋजुमतिमनःपर्ययः । प्रगुणाप्रगुण निर्वर्तितमनोवाक्कायगतसूक्ष्मेतरार्थावलंबनो विपुलमतिमनःप-र्ययः । त्रिकालगतानंतपर्यायपरिणतजीवाजीवद्रव्याणां युगप-त्साक्षात्करणं केवलज्ञानं अखिलावरणवीर्यांतरायनिरवशेषवि-श्लेषविजृंभितं । तद्वानस्ति कश्चित्पुरुषविशेषः सुनिश्चि-तासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात् सुखादिवत् । न खलु तस्य प्रत्यक्षं बाधकमप्रवृत्तेः । ततो निवर्तमानं तद्बाधकमिति चेदयुक्त-

मेतत् । कुड्यादिपरभागादेरप्यसत्त्वापत्तेः । नाप्यनुमानमनुत्पत्तेः । साध्यसाधनसंबंधग्रहणपूर्वकमेव ह्यनुमानमुत्पद्यते । न च वक्तृत्वादेरसर्वज्ञत्वेन संबंधः साकल्येन केनचित्प्रतिपत्तुं शक्यः । सर्वेषां किंचिज्ज्ञत्वात् । अनुमानांतरात्तत्संबंधप्रतिपत्तौ चानवस्थापत्तेः । ततः संदिग्धानैकांतिकाद्वक्तृत्वादेर्न सर्वज्ञत्वनिषेधः साधनीयः । नागमादप्यसौ बाध्यते तस्यापौरुषेयासिद्धेः पौरुषेयस्य तत्साधकत्वात् । दृष्टेष्टाविरुद्धं हि वचनमागमो न सर्वज्ञं । तच्च सर्वज्ञप्रणीतमेव न रागद्वेषमोहाक्रांतपुरुषप्रयुक्तं, तस्य तथाविधवचनप्रयोगायोगात् । रथ्यापुरुषवत् । नन्वेवं श्रुतस्य सुगतादीनामपि संभवात् अर्हन्नेव तत्प्रणेता न संभवतीति चेन्न । तेषामपि दृष्टेष्टविरुद्धवक्तृत्वात् । अनेकांतात्मकवस्तुप्रतिपादकं हि प्रवचनं दृष्टेष्टाविरोधि प्रत्यक्षादिप्रमाणाविसंवादादिति ॥

इदानीं श्रुतस्य व्यापारभेदं दर्शयति—

उपयोगौ श्रुतस्य द्वौ स्याद्वादनयसंज्ञितौ ॥
स्याद्वादः सकलादेशो नयो विकलसंकथा १२

भवतः । कौ उपयोगौ व्यापारौ । कस्य श्रुतस्य श्रूयते इति श्रुतमाप्तवचनं । वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यरूपं तस्य भावश्रुतस्य वा श्रवणं श्रुतमिति निरुक्तेः । कति द्वौ । किंनामानौ स्याद्वादनयसंज्ञितौ स्यात्कथंचित् प्रतिपक्षापेक्षया वचनं

स्याद्वादः। नयनं वस्तुनो विवक्षितधर्मप्रापणं नयः। स्याद्वादश्च नयश्च स्याद्वादनयौ। इत्थं संज्ञे व्यपदेशौ संजाते ययोस्तौ तथोक्तौ। तौ लक्षणतो निर्दिशति—स्याद्वाद उच्यते। कः सकलादेशः सकलस्यानेकधर्मणो वस्तुन आदेशः कथनं। यथा जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालाः षडर्थाः। तत्र ज्ञानदर्शनसुखवीर्यैरसाधारणैर्धर्मैः सर्वत्र प्रमेयत्वागुरुलघुत्वधर्मित्वगुणित्वादिभिः साधारणैर्मूर्तत्वसूक्ष्मत्वासंख्यातप्रदेशत्वादिभिश्च साधारणासाधारणैरनेकांतात्मको जीवः, पुद्गलः पुनः स्पर्शरसगंधवर्णैरसाधारणैः सत्त्वादिभिः साधारणैरचेतनत्वमूर्तत्वादिभिः साधारणासाधारणैश्चानेकांतात्मकः। धर्मश्च गतिहेतुत्वेनासाधारणेन सत्त्वादिभिः साधारणैरचेतनत्वादिभिरुभयैरप्यनेकांतात्मकः। स्थितिहेतुत्वेनासाधारणेन सत्त्वादिभिः साधारणैरमूर्तत्वादिभिश्च साधारणासाधारणैरधर्मोऽनेकांतात्मकः। अवगाहनेनासाधारणेन सत्त्वादिभिः साधारणैरमूर्तत्वादिभिर्द्वयैरप्याकाशमनेकांतात्मकं। वर्तनयाऽसाधारण्या सत्त्वादिभिः साधारणैरमूर्तत्वादिभिः साधारणासाधारणैश्च कालोऽनेकांतात्मकः। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति वा प्रतिपादनं। पुनर्नयो भवति। का विकलसंकथा। विकलस्य विवक्षितैकधर्मस्य सम्यक्प्रतिपक्षापेक्षया कथा प्रतिपादनं, यथा जीवो ज्ञातैव द्रष्टव्य इत्यादि। ननु ज्ञातुरभिप्रायो नय इत्युक्तं प्राक् इदानीं पुनर्वचनात्मको नयः किमित्युच्यते इति चेत् उपचा-

राज्यहेतोर्वचनस्यापि नयत्वाविरोधात् । श्रुतज्ञानस्य हेतोर्वचनस्य श्रुतव्यपदेशवचनवत् । तथाहि स्याज्जीव एव ज्ञानाद्यनेकांत इति प्रमाणवाक्यं । स्यादस्त्येव जीव इति नयवाक्यं च सप्तभंग्या प्रतिष्ठितं । स्यादस्त्येव जीवः स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावविवक्षया । स्यान्नास्त्येव जीवः परद्रव्यक्षेत्रकालभावविवक्षया । स्यादस्तिनास्त्येव जीवः स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावक्रमविवक्षया । स्यादवक्तव्य एव जीवः युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावविवक्षया । स्यादस्त्यवक्तव्य एव जीवः स्वद्रव्यादिविवक्षया सह युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावविवक्षया । स्यान्नास्त्यवक्तव्य एव जीवः परद्रव्यादिविवक्षया सह युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावविवक्षया । स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य एव जीवः क्रमेण स्वपरद्रव्यादिविवक्षया सह युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावविवक्षयेति दृष्टेष्टाविरोधेन विधिप्रतिषेधद्वारेण सप्तभंगीकल्पनायाः सर्वत्र संभवात् । एवमेकानेकनित्यानित्यभेदाभेदादावपि योज्यं ॥

ननु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इत्यादिवाक्येषु शास्त्रे लोके वा स्यात्कारः किमिति न प्रयुज्यते यतोऽनेकांतः सर्वत्र वाक्यार्थः स्यादित्याक्षेपे इदमाह—

अप्रयुक्तेऽपि सर्वत्र स्यात्कारोऽर्थात्प्रतीयते ॥
विधौ निषेधेऽप्यन्यत्र कुशलश्चेत्प्रयोजकः १३

प्रतीयतेऽधिगम्यते । कः स्यात्कारः स्यादिति पदमव्ययं । क्व सर्वत्र शास्त्रे लोके वा । कस्मिन्विषये विधौ सत्त्वादौ साध्ये । न केवलं विधौ किंतु निषेधेऽपि असत्त्वादावपि साध्ये । अन्यत्रापि अन्यस्मिन्ननुवादातिदेशादावपि । किंविशिष्टोऽपि अप्रयुक्तोऽपि स्यादस्ति जीव इत्यनुक्तोऽपि । तर्हि कुतः प्रतीयते इति चेदाह— अर्थात् सामर्थ्यात् । तथाहि सम्यग्दर्शनादित्रयात्मकत्वे मार्गस्य कथमेकत्वमेकत्वे वा कथं त्रित्वमिति विरोधस्य कथंचिदित्येव परिहारो न सर्वथेति । द्रव्यपर्यायापेक्षया मार्गस्यैकानेकत्वाविरोधात् । ततः कथंचिदित्यर्थसामर्थ्यात् तद्वाचकः स्यात्कारोऽप्रयुक्तोऽपि प्रतीयत एव । चेद्यदि । कुशलः स्यात् व्यवहारे प्रबुद्धः स्यात् । कः प्रयोजकः प्रतिपादकः । तथा एवकारोऽपि प्रतीयते । तत एव रत्नत्रयात्मक एव मोक्षमार्ग इत्यवधारणाभावे सम्यग्दर्शनमेव मार्गः प्रसज्येत, अन्यदेव वा द्वयमेव वेत्यतिप्रसंगस्य दुर्निवारत्वात् । न चैवमसाधारणस्वरूपस्यैव लक्षणत्वात् । नन्वेवमप्रयुक्तयोरपि स्यात्कारैवकारयोरर्थतः प्रतीतौ क्वचित्किमिति कैश्चित्प्रयुज्येते इति चेन्न । प्रतिपाद्याशयवशात्तत्प्रयोगोपपत्तेः ॥

ननु वर्णपदवाक्यात्मकस्य शब्दस्य विवक्षाविषयत्वे कथमर्थात्स्यात्कारः प्रतीयत इत्याशंक्याह—

वर्णाः पदानि वाक्यानि प्राहुरर्थानवांछितान् ॥
वांछितांश्च क्वचिन्नेति प्रसिद्धिरियमीदृशी ॥१४॥
स्वेच्छया तामतिक्रम्य वदतामेव युज्यते ॥
वक्त्रभिप्रेतमात्रस्य सूचकं वचनं न्विति ॥१५॥

प्राहुरभिदधति। के वर्णाः अक्षराणि गकारादीनि। तथा पदानि गवादीनि। तथा वाक्यानि च गामानयेत्यादीनि। कान् अर्थान् अभिधेयान्। किंविशिष्टान् अवांछितान् अविवक्षितान् भूम्यादीन्। वांछितांश्च विवक्षितानपि सास्नादिमदादीन्। क्वचिन्मंदबुद्धिषु प्रतिपाद्येषु। न प्राहुस्तेषां ततोऽर्थाधिगमाभावात्। इत्येवंप्रकारा इयं सर्वजनप्रतीता प्रसिद्धि रूढिः। ईदृशी विचित्रा व्यवहारिभिरभ्युपगंतव्या तथैवार्थक्रियोपपत्तेः। तत्र वर्णाः स्वरव्यंजनरूपाश्चतुःषष्टिः। वर्णानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षः समुदायः पदं अव्ययानव्ययभेदभिन्नं। तत्रानव्ययं द्विधा सुबंतं तिङंतं चेति। अव्ययमनेकधा तसादिभेदात्। पदानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षः समुदायो वाक्यं। तत्त्रेधा क्रियाप्रधानं कारकप्रधानमुभयात्मकं चेति। तां प्रसिद्धिमतिक्रम्यैव उल्लंघ्यैव। स्वेच्छया स्वैरभावेन। वदतां कथयतां सौगतानां। युज्यते युक्तं भवतीति अधिकेयवचनं। कथं शब्दः सूचकं वाचकं। कस्य वक्त्र-

भिप्रेतमात्रस्य वक्तुः प्रयोजकस्याभिप्रेतमभिप्रायो विवक्षा तावन्मात्रस्यैव न बहिरर्थस्येति। नुः अहो आश्चर्यमित्याक्षेपो गम्यते। सामान्यविशेषात्मनो बहिरर्थस्य शब्दप्रयोगात्प्रतीतेस्तस्यैव तदर्थत्वात्। अभिप्रायस्य ततः स्वप्नेऽप्यप्रतीतेः। यतो यत्र विषये प्रतीतिप्रवृत्तिप्राप्तयः समनुभूयंते स तस्यार्थ इति न्यायात्॥

अथेदानीं नयभेदानाह—

श्रुतभेदा नयाः सप्त नैगमादिप्रभेदतः॥
द्रव्यपर्यायमूलास्ते द्रव्यमेकान्वयानुगं॥१६॥
निश्चयात्मकमन्योऽपि व्यतिरेकापृथक्त्वगः॥
निश्चयव्यवहारौ तु द्रव्यपर्यायमाश्रितौ॥१७॥

ते प्रागुक्तलक्षणा नया भवंति। के ते श्रुतस्य सकलादेशस्यागमस्य भेदा विकल्पा विकलादेशाः। कति सप्त। कुतः नैगमादिप्रभेदतः। नैगम आदिर्येषां संग्रहादीनां ते नैगमादयस्ते च ते प्रभेदाश्च विशेषास्तानाश्रित्य। किं विशिष्टाः द्रव्यपर्यायमूलाः द्रव्यं च पर्यायश्च द्रव्यपर्यायौ मूले विषयौ येषां ते तथोक्ताः। तत्र द्रव्यस्य स्वरूपमाह—द्रव्यं सामान्यं भवति। किंविशिष्टं एकान्वयानुगं एकं चान्वयश्च एकान्वयौ तावनुगच्छति व्याप्नोतीत्येकान्वयानुगं तत्रैकानुगम-

र्ध्वताशामान्यं पूर्वापरपर्यायव्यापकं सदृशपरिणामलक्षणं तिर्य-क्सामान्यमन्वयानुगं। पुनः किंविशिष्टं निश्चयात्मकं निर्ग-तस्य यः पर्यायांतरसंकरो यस्मादसौ निश्चयः पर्यायः स आत्मा यस्य तत्तथोक्तं। अपि पुनरन्यः पर्यायो विशेषो भवति। किंविशिष्टः व्यतिरेकपृथक्त्वगः। व्यतिरेकश्च पृथक्त्वं च ते गच्छति तादात्म्येन परिणमतीति स तथोक्तः। तत्र व्यतिरेकः एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविपर्यायः। पृथक्त्वगः पुनरर्थांतरगतो विसदृशपरिणामः। ननु निश्चयव्यवहारौ नयौ शास्त्रांतरे प्रतिपादितौ तयोः किमालंबनमित्या-शंक्याह—तु पुनर्निश्चयव्यवहारौ मूलनयौ आश्रितौ आलं-बितवंतौ। किं द्रव्यपर्यायं। द्रव्यं च पर्यायश्च तयोः समाहारद्वंद्वे एकत्वनत्वे। द्रव्यं श्रितो निश्चयनयो द्रव्या-र्थिक इत्यर्थः। पर्यायाश्रितो व्यवहारनयः पर्यायार्थिक इत्यर्थः॥

अथ नैगमादीन् प्रागुक्तानपि मंदमतिशिष्यानुग्रहार्थं पुनर्वक्तुकामस्तावन्नैगमतदाभासौ निरूपयति—

गुणप्रधानभावेन धर्मयोरेकधर्मिणि॥
विवक्षा नैगमोऽत्यंतभेदोक्तिः स्यात्तदाकृतिः१८

स्यात्। कः नैगमो नयः। का विवक्षा अभिप्रायः। कयोः धर्मयोः एकत्वानेकत्वयोः। केन गुणप्रधानभावेन

गुणश्च प्रधानं च तयोर्भावो मुख्यामुख्यता तेन। क्व एकधर्मिणि एकोऽभिन्नो धर्मी द्रव्यं तस्मिन्। तदाकृतिः तस्य नैगमस्याकृतिराभासः स्यात्। का अत्यंतभेदोक्तिः अत्यंतो निरपेक्षो भेदो नानात्वं तस्योक्तिर्वचनं नैयायिकाद्यभिप्रायो नैगमाभास इत्यर्थः ॥

अथ संग्रहतदाभासावाह—

सदभेदात्समस्तैक्यसंग्रहात्संग्रहो नयः।
दुर्नयो ब्रह्मवादः स्यात्तत्स्वरूपानवाप्तितः १९

स्यात्कः संग्रहो नयः। कस्मात्समस्तैक्यसंग्रहात् समस्तस्य जीवाजीवविशेषस्यैक्येन एकत्वेन संग्रहात् संक्षिप्य ग्रहणात। कथमनेकस्य संक्षेपणमित्याशंक्याह— सदभेदात्। सत् सत्त्वसामान्यं तच्चासावभेदश्च तमाश्रित्य। न हि सत्वात् किंचिद्भिन्नमस्तीति वक्तुं युक्तं विरोधात्। दुर्नयः संग्रहाभासः। स्यात्। कः ब्रह्मवादः सत्ताद्वैतं। कुतः तत्स्वरूपानवाप्तितः। तस्य परपरिकल्पितब्रह्मणः स्वरूपं भेदप्रपंचशून्यं सन्मात्रं तस्यानवाप्तिः प्रमाणादप्राप्तिस्ततः। न खलु प्रत्यक्षादिप्रमाणात् प्राप्यते तथाऽप्रतीतेः ॥

अथ व्यवहारनयं निरूपयति—

व्यवहारानुकूल्यात्तु प्रमाणानां प्रमाणता ॥
नान्यथा बाध्यमानानां ज्ञानानां तत्प्रसंगतः २०

अथोक्तनयानां विशेषणं विशेषनयस्वरूपं च प्रतिपादयति—

चत्वारोऽर्थनया ह्येते जीवाद्यर्थव्यपाश्रयात् ॥
त्रयः शब्दनयाः सत्यपदविद्यां समाश्रिताः ॥२२॥

एते । के नैगमादयः प्रागुक्ताः । चत्वारोऽर्थनयाः अर्थप्रधाना नयाः । कुतः जीवाद्यर्थव्यपाश्रयात् जीवाजीवानामर्थानां व्यपाश्रयादालंबनात् । त्रयः शेषाः शब्दसमभिरूढैवंभूताः । शब्दनयाः शब्दप्रधाना नयाः । किंविशिष्टाः सत्यपदविद्यां समाश्रिताः सत्यानि प्रमाणांतराबाधितानि पदानि कालकारकादिभेदवाचीनि तेषां विद्या व्याकरणशास्त्रं तामाश्रिता आलंबिताः । व्याकरणाश्रितत्वादित्यर्थः । तत्र कालकारकलिंगादिभेदादर्थभेदकृच्छब्दनयः । पर्यायशब्दभेदादर्थभेदकृत्समभिरूढनयः । क्रियाशब्दभेदादर्थभेदकृदेवंभूतनयः ॥

अकलंकप्रभाभारद्योतितं तत्त्वमर्थतः ॥
प्रमानयोपयोगात्म सौरी वृत्तिः प्रबोधयेत् ॥ १ ॥

इत्यभयचंद्रसूरिकृतौ लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तौ स्याद्वादभूषणसंज्ञायां श्रुतोपयोगपरिच्छेदः षष्ठः ॥ ६ ॥

अथेदानीं निक्षेपस्वरूपनिरूपणपुरस्सरं शास्त्राध्ययनफलं निर्दिशति—

श्रुतादर्थमनेकांतमधिगम्याभिसंधिभिः ॥ परीक्ष्य ताँस्तान् तद्धर्माननेकान् व्याव-हारिकान् ॥ १ ॥ नयानुगतनिक्षेपैरुपायै-र्भेदवेदने ॥ विरचय्यार्थवाक्प्रत्ययात्म-भेदान् श्रुतार्पितान् ॥ २ ॥ अनुयुज्या-नुयोगैश्च निर्देशादिभिदागतैः ॥ द्रव्या-णि जीवादीन्यात्मा विवृद्धाभिनिवेशनः ॥ ३ ॥ जीवस्थानगुणस्थानमार्गणास्था-नतत्त्ववित् ॥ तपोनिर्जीर्णकर्माऽयं विमु-क्तः सुखमृच्छति ॥ ४ ॥

ऋच्छति प्राप्नोति । कः अयं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्ध आत्मा । किं सुखं परमस्वास्थ्यमनंतज्ञानादिगुणरूपं । किंविशिष्टः सन् विमुक्तः सन् विशेषेणसामस्त्येन मुक्तः कर्मरहितः सन् । पुनरपि कथंभूतः तपोनिर्जीर्णकर्मा । तपसा यथाख्यातचारित्रलक्षणेन व्युपरतक्रियानिवृत्तिशुक्लध्यानेन निर्जीर्णानि निर्मूलितानि कर्माणि ज्ञानावरणादीनि द्रव्यभा-

स्वरूपाणि येनासौ तथोक्तः। अनेन चारित्रतपस्याराधना-द्वयं सूचितं। भूयः किंभूतः जीवस्थानगुणस्थानमार्गणा-स्थानतत्त्ववित्। जीवानां स्थानानि समासाः स्थानयोन्यवगा-हकुलभेदा जीवस्थानानि। गुणानां मिथ्यात्वादिपरिणा-मानां स्थानानि पदानि गुणस्थानानि। मार्गणानां गत्या-दीनामन्वेषणोपायानां स्थानानि पदानि मार्गणास्थानानि। जीवस्थानानि च गुणस्थानानि च मार्गणास्थानानि च तैः प्रत्येकं चतुर्दशभेदैः तत्त्वं जीवस्वरूपं वेत्ति जानातीति तथोक्तः। अनेन ज्ञानाराधना ज्ञापिता। पुनः किंवि-शिष्टः विवृद्धाभिनिवेशनः। विशेषेण वृद्धं क्षायिकस्वरूपेण परिणतमभिनिवेशनं सम्यग्दर्शनं यस्यासौ तथोक्तः। अनेन दर्शनाराधना निरूपिता। एवमाराधनाचतुष्टयस्यैव मोक्ष-मार्गत्वोपपत्तेः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति वचनात्। ननु सूत्रे रत्नत्रयं मोक्षमार्ग उक्तः इह पुन-श्चतुष्टयः प्रतिपादितस्ततो विरोध इति चेन्न। तपसश्चा-रित्रेऽन्तर्भावात् तथा प्रतिपादनसंभवात्। चारित्रस्यैव कर्म-निर्जराहेतुत्वेन तपस्त्वप्रतिपादनात्। न खलु चारित्रा-तिरिक्तं तपोऽस्ति। तस्य मोक्षानंगत्वात्। बहिरंगतपसो रत्नत्रयसाधनत्वात् अंतरंगस्य तु चारित्रविशेषत्वात् च शास्त्रे तस्य न पृथग्निर्देश इति। किं कृत्वा विरुद्धाभि-निवेशनः संजात इत्याशंक्याह— अनुयुज्य पृष्ट्वा। कानि

वीतरागाः संति क्षीणकषायछद्मस्थवीतरागाः संति सयोगिकेवलिनः संत्ययोगिकेवलिनः संति सिद्धाश्च शुद्धात्मान इत्यादि। भेदगणना संख्या। यथा अनंतानंता जीवाः। मिथ्यादृष्टयोऽनंतानंता इत्यादि। वर्तमाननिवासः क्षेत्रं यथा जीवानां क्षेत्रं लोकस्यासंख्येयभागः संख्येयभागः सर्वलोको वेत्यादि। तदेव त्रिकालगोचरं स्पर्शनं यथा सर्वलोकादि। कालो गुणस्थानायामोऽन्तर्मुहूर्तादिः। विवक्षितगुणं परित्यज्य गुणांतरं प्राप्तस्य पुनस्तद्गुणप्राप्तिर्यावत्तावान् विरहकालोऽन्तर्मुहूर्तादिः। भाव आत्मनः परिणामः औदयिकादिः। परस्परं संख्याविशेषोऽल्पबहुत्वमिति। पूर्वं कृत्वा विरचय्य न्यस्य। कान् अर्थवाक्प्रत्ययात्मभेदान्। अर्थश्च वाक्च प्रत्ययश्च ते आत्मानः स्वभावा येषां ते च ते भेदाश्च व्यवहारास्तान्। तत्रार्थात्मानौ भेदौ द्रव्यभावौ तयोरर्थधर्मत्वात्। वागात्मको नामव्यवहारः। प्रत्ययात्मकश्च स्थापनाव्यवहारः तस्य संकल्परूपत्वात्। किंविशिष्टाँस्तान् श्रुतार्पितान् श्रुतेनानेकांतेन विकल्पितान्। कैः नयानुगतनिक्षेपैः नयान् द्रव्यपर्यायविषयाननुगता अनुवृत्ता निक्षेपा न्यासास्तैः। किंरूपैः उपायैः कारणैः। क भेदवेदने मुख्यामुख्यविशेषनिर्णये कारणभेदैरित्यर्थः। आदौ किं कृत्वा परीक्ष्य विचार्य। कान् ताँस्तान्• वीप्सायां द्विर्वचनं। तत्र द्रव्यक्षेत्रकालभावविवक्षितानित्यर्थः। तान् कान् तद्धर्मान् तस्यानेकांतात्मनो वस्तुनो धर्माः सत्त्वादयस्तान्। कथंभूतान्

अनेकान् अनंतान् । पुनरपि कथंभूतान् व्यावहारिकान् व्यवहारो हानादिरूपः प्रयोजनं येषां ते व्यावहारिकास्तान् । कैः परीक्ष्य अभिसंधिभिः ज्ञातुरभिप्रायैः नयैरित्यर्थः । पूर्वं किं कृत्वा अधिगम्य ज्ञात्वा । कं अर्थं जीवादिप्रमेयं । किंविशिष्टं अनेकांतात्मकं अनेके अंताः सहक्रमभुवो धर्मा यस्यासावनेकांतस्तं । कस्मात् श्रुतात् स्याद्वादात् । अनेकांतः प्रमाणादिति वचनात् । संक्षेपरुचिविनेयाशयवशादिदमुक्तं । अयमर्थः— अनेकांतात्मकं जीवाद्यर्थमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदित्यादिश्रुतान्निश्चित्य पुनस्तद्धर्मान् व्यवहारार्थं नैगमादिनयैः परीक्षते संक्षेपरुचिः प्रमाता । तस्य तावतैव तत्त्वाधिगमसंभवात् । मध्यमरुचिः पुनर्विशेषज्ञानोपायैर्नामादिनिक्षेपैरर्थाभिधानप्रत्ययरूपान् भेदान् न्यस्य निर्देशादिभिरनुयोगैरनुयुंक्ते । तस्यैव तावत्प्रपंचकांक्षितत्वात् । विस्तररुचिस्तु जीवादिद्रव्याणि प्रत्येकं सदादिभिरनुयोगैरनुयुज्य गुणजीवपर्याप्त्यादिभेदैस्तत्त्वं वेत्ति । ततो विशुद्धाधिगमसम्यग्दर्शनः सन् शुक्लध्यानरूपांतरंगतपसा कृत्स्नकर्मनिर्मूलनं कृत्वा विमुक्तः सुखं तत्फलमनुभवतीति ॥ निर्ज्ञाताः प्रमाणनयनिर्देशादयः । निक्षेपाः के प्रतिपाद्यंतामिति चेदुच्यते— अधिगमोपायाः निक्षेपाः ते चत्वारः । नामनिक्षेपः, स्थापनानिक्षेपः, द्रव्यनिक्षेपः, भावनिक्षेप इति । तत्र जातिद्रव्यगुणक्रियाणि नामप्रतीहार इत्यादि । एकजीवानेकाजीवनाम काका-

वलिकावाही हार इत्यादि । अनेकजीवैकाजीवनाम आंदोलकमित्यादि । अनेकजीवाजीवनाम नगरमित्यादि । आहितनामकस्य द्रव्यस्य सोऽयमिति संकल्पेन व्यवस्थाप्यमाना स्थापना । सा द्विधा सद्भावस्थापनाऽसद्भावस्थापना चेति । तत्र मुख्यद्रव्याकृतिः सद्भावस्थापना अर्हत्प्रतिमादिः । तदाकारशून्या असद्भावस्थापना कपर्द्यादि । द्रव्यमपि द्विधा आगमनोआगमभेदात् । तत्र जीवादिप्राभृतज्ञायी चिरपरप्रतिपादनाद्युपयोगरहितः श्रुतज्ञानी आगमद्रव्यं । नोआगमद्रव्यं त्रेधा ज्ञायकशरीरभावितद्व्यतिरिक्तभेदात् । तत्र जीवादिप्राभृतज्ञायकस्य शरीरं त्रिविधं अतीतानागतवर्तमानविकल्पात् । अतीतं च त्यक्तं च्युतं च्यावितं चेति त्रिधा । तत्र त्यक्तं प्रायोपगमनेंगिनीभक्तप्रत्याख्यानभेदसमाधिमरणविसृष्टं । स्वायुःपाकवशाच्छिन्नं च्युतं । विषवेदनादिना खंडितायुषं च्यावितमिति । गत्यंतरे स्थितो जीवो मनुष्यत्वाभिमुखो भावीत्युच्यते । कर्मनोकर्मभेदं तद्व्यतिरिक्तं । तत्र ज्ञानावरणाद्यष्टविधमात्मनः पारतंत्र्यनिमित्तं कर्म । शरीरत्रयपर्याप्तिषट्कयोग्यपुद्गलपरिणामो नोकर्म । तैजसस्यौदारिकवैक्रियिकाहारकेष्वंतर्भावात् । विग्रहगतौ च कार्मणोऽतर्भावात् । भावश्चागमनोआगमभेदात् द्वेधा । तत्र आगमभावो जीवादिप्राभृतज्ञायी तदुपयुक्तः श्रुतज्ञानी । विवक्षितपर्यायपरिणतो नोआगमभावः । ननु निक्षेपाभावेऽपि

प्रमाणनयैरधिगम्यत एव तत्त्वार्थ इति चेन्न अप्रकृत-निराकरणार्थत्वात् । प्रकृतप्ररूपणार्थत्वाच्च निक्षेपस्य । न खलु नामादावप्रकृते प्रमाणनयाधिगतो भावो व्यवहारा-यालं । मुख्योपचारविभागेनैव तत्सिद्धेः । न च तद्वि-भागो नामादिनिक्षेपैर्विना संभवति येन तदभावेऽपि तत्त्वा-धिगतिः स्यात् ॥

अथ भूयः शास्त्राध्ययनफलं दर्शयति—

भव्यः पंचगुरून् तपोभिरमलैराराध्य
बुध्वाऽऽगमं । तेभ्योऽभ्यस्य तदर्थमर्थ-
विषयाच्छब्दादपभ्रंशतः ॥ दूरीभूततरा-
त्मकादधिगतो बोद्धाऽऽकलंकं पदं ।
लोकालोककलावलोकनबलप्रज्ञो जिनः
स्यात् स्वयं ॥ ५ ॥

स्याद्भवेत् । कः भव्यः मोक्षहेतुरत्नत्रयरूपेण भवि-ष्यति परिणंस्यतीति भव्यः । अभव्यस्य मुक्तावनाधिकारात् । किंविशिष्टः स्यात् जिनः स्यात् । पुनः कथंभूतः लोकालो-ककलावलोकनबलप्रज्ञः षट्द्रव्यसमवायो लोकः ततो बहि-रलोकः केवलाकाशरूपः । तयोः कला विभागः । अथवा लोकश्चालोकश्च कलाश्च जीवादयः पदार्थाः तासामवलो-

कनं तत्र बलं शक्तिः प्रज्ञा प्रकृष्टं ज्ञानं च विद्यते यस्य स तथोक्तः। कथं स्वयं स्वेनात्मना नेंद्रियादि-साहाय्येनेत्यर्थः। पुनरपि किंविशिष्टः अधिगतः प्राप्तः किं पदं स्थानं। किंविशिष्टं आकलंकं अकलंकानामिदं आर्हत्यमित्यर्थः। ननु मुक्तौ जीवस्य ज्ञानाभावस्तत्स्वा-भाव्यविरहादित्याशंक्याह— बोद्धा बुध्यते जानातीत्येवं-शीलस्तत्स्वभाव इत्यर्थः। किं कृत्वा अभ्यस्य पुनःपुनर्भा-वयित्वा। कं तदर्थं तस्यागमस्यार्थो जीवादिवस्तु तं। आदौ किं कृत्वा बुध्वा अधीत्य ज्ञात्वा च। कं आगमं श्रुतं। केभ्यः तेभ्यः पंचगुरुभ्यः सकाशात्। कस्माद-वधिभूताच्छब्दात् वर्णपदवाक्यात्मकप्रयोगात्। किंविशि-ष्टात् अर्थविषयात् अर्थो जीवादिवस्तु विषयो गोचरो यस्य तस्मादित्यनेनान्यापोहः शब्दविषय इति सौगत-मतं प्रतिक्षिप्तं। तत्र प्रवृत्त्यभावात्। पुनः किंविशिष्टात् अपभ्रंशतः भ्रंशो लक्षणदोषस्तस्मादपगतः अपभ्रंशस्तस्मात्। अनेन यो जागारेत्यादिवाक्याप्रामाण्यं प्रतिपादितं। ततः पूर्वं किं कृत्वा आराध्य सेवित्वा कान् गुरून् अर्हदादीन्। कति पंच। कैर्गुणैः तपोभिर्बाह्याभ्यंतरैरिच्छानिरोधैः। किंविशिष्टैः अमलैः मिथ्यात्वादिमलरहितैः। पंचगुरुचरण-स्यैव परममंगलत्वात्। तद्गुणगणानुस्मरणस्य शास्त्रपरिसमाप्तौ सफलत्वात्। एवं परमागमाभ्यासात्स्वार्थसंपत्तिरुक्ता॥

इदानीं पुनः परार्थसम्पत्तिं निर्दिशति—

प्रवचनपदान्यभ्यस्यार्थांस्ततः परिनिष्ठिता- ।
नसकृदवबुध्येद्बोधाद्बुधो हतसंशयः ॥
भगवदकलंकानां स्थानं सुखेन समाश्रितः ।
कथयतु शिवं पंथानं वः पदस्य महात्मनां ६

कथयतु प्रतिपादयतु । कः बुधः ज्ञानी । कं पंथानं मार्गप्राप्त्युपायं । किंविशिष्टं शिवं शिवस्य हेतुः शिवस्तमुपचारात् । कस्य पदस्य स्थानस्य । केषां महात्मनां महांतः संसारिभ्योऽतिरिक्ताः सिद्धा आत्मानो जीवास्तेषां । केभ्यः कथयतु वः युष्मभ्यं विनेयेभ्यः । केन सुखेन ताल्वोष्ठपुटव्यापाराक्लेशाभावेन । किंविशिष्टः सन् समाश्रितः प्राप्तः । किं स्थानमवस्थानं न क्षणभंगं तत्रोपदेशाभावात् । किंविशिष्टं भगवत् त्रिलोकपूजार्हं । केषां स्थानं अकलंकानां न विद्यंते दोषावरणरूपाः कलंका येषां ते अकलंकास्तेषामर्हतामित्यर्थः । किंविशिष्टः सन् हतसंशयः उपलक्षणमेतत् । तेनायमर्थः— हता नष्टाः संशयादयो यस्य स तथोक्त इति । किं कृत्वा अवबुध्य निश्चित्य । कथं असकृत् पुनःपुनर्ध्यात्वेत्यर्थः । कान् अर्थान् जीवादितत्त्वानि । किंविशिष्टान् परिनिष्ठितान् । व्यवस्थितान् । क ततस्तेषु प्रवचनपदेषु । कस्मात् बोधात् ज्ञानात् ।

किंविशिष्टात् इद्धात् उज्वलात् संकरव्यतिकरव्यतिरेकात्। अहमहमिकया प्रकाशमानादित्यर्थः। किं कृत्वा अभ्यस्य परिचिंत्य। पुनःपुनरुपयुज्येत्यर्थः। कानि प्रवचनपदानि प्रकृष्टं पूर्वापरविरोधरहितं वचनं प्रकृष्टस्य वा पुरुषस्य वचनं तस्य पदानि सम्यग्दर्शनादीनि णमो अररंताण-मित्यादीनि वा। परमागमाभ्यासात् परिणतश्रुतज्ञानः शुक्ल-ध्यानानलनिर्दग्धद्रव्यभावकलंकः सार्वज्ञ्यमापन्नो मोक्षमार्गो-पदेशाय परार्थाय चेष्टतामिति भावो देवानां॥

नाभ्यासस्तादृगस्ति प्रवचनविषयो नैव
बुद्धिश्च तादृक्। नोपाध्यायोऽपि शि-
क्षानियमनसमयस्तादृशोऽस्तीह काले॥
किंत्वेतन्मे मुनींदुव्रतिपतिचरणाराधनो-
पात्तपुण्यं। श्रीमद्भट्टाकलंकप्रकरणवि-
वृतावस्ति सामर्थ्यहेतुः॥ १॥
माऽयं मदांध इति चेतसि कोपमाधु-।
र्माधुर्यमेव वहते सुधियां मदुक्तिः॥
किं कामिनीजनमदोत्कटचाटुवाणी।
प्राणेश्वरस्य रसनाटकनर्तकी न॥ २॥

तथाऽप्येतत्परीक्षंतां ।
मदुक्तं मत्सरोज्झिताः ॥
हीनाधिकमभिव्यक्तु- ।
मेते हि निकषोपमाः ॥ ३ ॥

विरुद्धं दर्शनं यस्य ।
निह्नवस्तस्य किंकरः ॥
तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं किं ।
घूकशूकोऽर्कमृच्छति ॥ ४ ॥

इत्यभयचंद्रसूरिकृतौ लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तौ स्याद्वादभूषण-संज्ञायां निक्षेपणप्ररूपणं सप्तमः परिच्छेदः ॥

समाप्तश्च प्रवचनप्रवेशस्तृतीयः ॥

इति भट्टाकलंकशशांकानुस्मृतं लघीयस्त्रयाख्यं प्रकरणं समाप्तं ॥

भद्रमस्तु जिनशासनश्रियै । श्रायसैकपदकार्यजन्मने ॥
जन्मजन्मकृततापलोपन॰ । प्रायशुद्धनिजतत्त्वविस्तये॥१॥

भट्टाकलङ्कप्रणीतं

स्वरूपसम्बोधनम्

मुक्तामुक्तैकरूपो यः कर्मभिः संविदादिना ॥
अक्षयं परमात्मानं ज्ञानमूर्तिं नमामि तम् ॥ १ ॥
सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं क्रमाद्धेतुफलावहः ॥
यो ग्राह्यो ग्राह्यनाद्यन्तास्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥ २ ॥
प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः ॥
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः ॥ ३ ॥
ज्ञानाद्भिन्नो न नाभिन्नो भिन्नाभिन्नः कथंचन ॥
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्त्तितः ॥ ४ ॥
स्वदेहप्रमितश्चायं ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः ॥
ततः सर्वगतश्चायं विश्वव्यापी न सर्वथा ॥ ५ ॥
नानाज्ञानस्वभावत्वादेकोऽनेकोऽपि नैव सः ॥
चेतनैकस्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत् ॥ ६ ॥
न वक्तव्यः स्वरूपाद्यैर्निर्वाच्यः परभावतः ॥
तस्मान्नैकान्ततोऽवाच्यो नापि वाचामगोचरः ॥ ७ ॥
स स्याद्विधिनिषेधात्मा स्वधर्मपरधर्मयोः ॥
समूर्तिर्बोधमूर्तित्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥ ८ ॥
इत्याद्यनेकधर्मत्वं बन्धमोक्षौ तयोः फलम् ॥

आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्कारणैः स्वयमेव तु ॥ ९ ॥
कर्ता यः कर्मणां भोक्ता तत्फलानां स एव तु ॥
बहिरन्तरुपायाभ्यां तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥ १० ॥
सद्दृष्टिज्ञानचारित्रमुपायः स्वात्मलब्धये ॥
तत्त्वे याथात्म्यसंस्थित्यमात्मनो दर्शनं मतम् ॥ ११ ॥
यथावद्वस्तुनिर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत् ॥
तत्स्वार्थव्यवसायात्म कथञ्चित्प्रमितेः पृथक् ॥ १२ ॥
दर्शनज्ञानपर्यायेषूत्तरोत्तरभाविषु ॥
स्थिरमालम्बनं यद्वा माध्यस्थ्यं सुखदुःखयोः ॥ १३ ॥
ज्ञाता द्रष्टाऽहमेकोऽहं सुखे दुःखे न चापरः ॥
इतीदं भावनादार्ढ्यं चारित्रमथवा परः ॥ १४ ॥
तदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम् ॥
तद्बाह्यं देशकालादि तपश्च बहिरङ्गकम् ॥ १५ ॥
इतीदं सर्वमालोच्य सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च शक्तितः ॥
आत्मानं भावयन्नित्यं रागद्वेषविवर्जितम् ॥ १६ ॥
कषायै रञ्जितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते ॥
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो दुराधेयो हि कौंकुमः ॥ १७ ॥
ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः ॥
उदासीनत्वमाश्रित्य तत्त्वचिन्तापरो भव ॥ १८ ॥
हेयोपादेयतत्त्वस्य स्थितिं विज्ञाय हेयतः ॥
निरालम्बो भवान्यस्मादुपेये सावलम्बन ॥ १९ ॥

स्वं परं चेति वस्तुत्वं वस्तुरूपेण भावय ॥
उपेक्षाभावनोत्कर्षपर्यन्ते शिवमाप्नुहि ॥ २० ॥
मोक्षेऽपि यस्य नाकांक्षा स मोक्षमधिगच्छति ॥
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी कांक्षां न क्वापि योजयेत् ॥२१॥
साऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभा यदि चिन्त्यते ॥
आत्माधीने सुखे तात यत्नं किं न करिष्यसि ॥२२॥
स्वं परं विद्धि तत्रापि व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम् ॥
अनाकुलस्वसंवेद्ये स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥ २३ ॥
स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरे ॥
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत्स्वोत्थमानन्दममृतं पदम् ॥२४॥

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयं ।
य एतदाख्याति शृणोति चादरात् ॥
ज्ञान पूर्वापर...
करोति तस्मै परमार्थसम्पदं ।
स्वरूपसम्बोधनपञ्चविंशतिः ॥ २५ ॥

॥ इति स्वरूपसम्बोधनम् ॥

॥ परमात्मने नमः ॥

॥ अथ लघुसर्वज्ञसिद्धिः ॥

यस्य यज्जातीयाः पदार्थाः प्रत्यक्षाः तस्यासत्यावरणे तेऽपि प्रत्यक्षाः। यथा घटसमानजातीयभूतलप्रत्यक्षत्वे घटः। प्रत्यक्षाश्च विमत्यधिकरणभावापन्नस्य कस्यचिद्देशादिविप्रकृष्टत्वेन धर्माधर्माकाशकालहिमवन्मंदरमकराकरादिसजातीयाः नष्टमुष्टिचिंतालाभालाभजीवितमरणसुखदुःखग्रहनक्षत्रमंत्रौषधिशक्त्यादयो भावास्तदागमप्रणेतुरिति। न तावदयमसिद्धो हेतुः। तथाहि यो यद्विषयानुपदेशालिंगानन्वयव्यतिरेकाविसंवादिवचनानुक्रमकर्ता स तत्साक्षात्कारी यथा अस्मदादिर्यथोक्तजलशैत्यादिविषयवचनरचनानुक्रमकारी तद्द्रष्टा नष्टमुष्ट्यादिविषयानुपदेशालिंगानन्वयव्यतिरेकाविसंवादिवचनरचनानुक्रमकर्ता च कश्चिद्विमत्यधिकरणभावापन्नः पुरुष इति। यथोक्तविषयवचनरचनानुक्रमविशेषस्यापौरुषेयस्य कर्तुरभावादसिद्धोऽयमपि हेतुरिति चेत्कुतः पुनर्नररचितवचनरचनाविशिष्टस्यास्य वचनरचनानुक्रमविशेषस्यापौरुषेयताऽवसीयते यतोऽसिद्धताऽस्य हेतोः स्यात्। न तावत्प्रत्यक्षेणापौरुषेयताऽवसीयते।

प्रसज्यप्रतिषेधपक्षे हि पौरुषेयत्वाभावोऽपौरुषेयत्वं। तच्च-अनादिकालस्य अतीतस्याप्रत्यक्षीकरण तदा न शक्यते

साक्षात्कर्तुं । तत्प्रत्यक्षीकरणे स एवातींद्रियार्थदर्शी स्यात् । अधुना तदभावसाधने कुमारसंभवादेरविशेषः कालिदासादेरिदानीमभावात् । प्रत्यक्षस्याभावविषयत्वविरोधादनभ्युपगमात् । अभावप्रमाणवैयर्थ्यप्रसंगाच्च । अभावप्रमाणात्तदभावसिद्धिश्चेत् तत्प्रमाणपंचकविनिवृत्तिरात्मा वा ज्ञाननिर्मुक्तस्तदन्यज्ञानं वा स्यात् । तत्र सर्वस्य प्रमाणपंचकाभावोऽसिद्धो नाभावसाधनायालं परस्य । भवत्के व्यभिचारी । पिटकत्रयेऽपि भावात् । पुरुषसद्भावावबोधकप्रमाणपंचकविनिवृत्तेरविशेषात् अतोऽस्यापि वेदवदपौरुषेयतासिद्धिः । परैः पिटकत्रये पुरुषसद्भावाभ्युपगमात् प्रमाणपंचकविनिवृत्तेरसाधकत्वमिति चेन्न । पराभ्युपगमस्य भवतोऽप्रमाणत्वात् । प्रमाणत्वे वेदेऽपि तैरेव पुरुषसद्भावाभ्युपगमादस्तु पौरुषेयत्वासिद्धिः । अन्यथाऽत्रापि माभूत् अविशेषात् । आगमांतरे च परैः पुरुषसद्भावाभ्युपगमात् । प्रमाणपंचकविनिवृत्तेरसाधकत्वे वेदेऽप्यसाधकत्वमस्तु । लक्षणयुक्ते बाधासंभवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् इति सर्वत्रानाश्वासात् ।

कस्य वाऽभावज्ञानाभावादभावस्याभावगतिः । किं सर्वस्य वादिनः प्रतिवादिनो वा ? तत्र सर्वस्याभावज्ञानाभावोऽसिद्धः । प्रतिवादिनोऽभावज्ञानाभावो वेदेऽपि समानः । वादिनोऽभावज्ञानाभावात्प्रमेयाभावस्याभावे प्रतिवादिनो वेदेऽप्यभावज्ञानाभावात्प्रमेयाभावो न स्यात् । तयोर्विशेषाभावात् । आग-

मांतरे वादिप्रतिवादिनोरुभयोरप्यभावज्ञानाभावात्प्रमेयाभावस्या-
भावो युज्यते। न वेदे विगानात् । प्रतिवादिनोऽभाव-
ज्ञानाभावेऽपि वादिनो भावादिति चेन्न। वादिनो यद-
भावज्ञानं तच्छ्रद्धानुसारिणः सांकेतिकं नाभावबलोपजातं।
आगमांतरे प्रतिवादिनो प्रामाण्याभावज्ञानवत्। अन्यथाऽ
गृहीतसमयस्यापि अभावज्ञानोत्पत्तिः स्यात्। सांकेतिका-
च्चाभावज्ञानान्नाभावसिद्धिरन्यत्रापि ततोऽप्रामाण्यभावसिद्धि-
प्रसंगात। एतेन– प्रमाणपंचकं यत्र वस्तुरूपे न जायते।
वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणतेत्येतत्प्रतिव्यूढं । चैत्य-
वन्दनादिवाक्येऽपि पुरुषवस्तुसत्तावबोधकप्रमाणपंचकाप्रवृत्ति-
प्रसंगात्। प्रमेयाभावस्याभावात्प्रमाणपंचकनिवृत्तावप्यभावप्रमा-
णस्याप्रवृत्तावुक्तदोषानुषंगात्। आत्मा ज्ञाननिर्मुक्तोऽभावप्र-
माणमित्यत्रापि सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तात्मनो नाभावपरिच्छेदकत्वं
विरोधात्परिच्छेदस्य ज्ञानधर्मत्वात्। निषेध्यविषयप्रमाणपंचक-
विनिर्मुक्तात्मनो व्यभिचारित्वं अन्यत्राप्यविशेषात्। तदन्य-
ज्ञानलक्षणाभावप्रमाणेऽपि पौरुषेयत्वात् । अन्यस्यानादि-
सत्त्वस्य ज्ञानं तद॰यज्ञानं तत्प्रत्यक्षादीनामन्यतमं चेन्नाभाव-
प्रमाणं स्यात्। अभावप्रमाणं चेन्न वस्तुसत्ताविषयं स्यात्।
तद्विषयत्वे नाभावः स्यात्तस्य तद्विषयत्वविरोधात्॥

पौरुषेयत्वादन्यस्तदभावस्तद्ग्राहि ज्ञानं तदन्यज्ञानमिति
चेदत्रापि तस्य किमुत्थापकं? प्रमाणपंचकाभावश्चेत्पूर्ववद्व्य-

भिचारः । प्रमेयाभावोऽपि तद्धेतुः तदभावादन्यत्राभावज्ञाना-नुत्पत्तेरव्यभिचार इति चेत्स एव दोषः । न चाभावस्य जनकत्वमभावत्वविरोधात् । अनादिसत्त्वात्तदभावज्ञानं नाभा-वादिति चेत्तदनादिसत्त्वस्य ज्ञातस्याज्ञातस्य वाऽभावज्ञापकत्वं स्यात्? । अज्ञातस्य ज्ञापकत्वे संकेताग्राहिणोऽपि सर्वस्याभाव-ज्ञानं (पकत्वं) स्यात् । केनचित्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षाभावात् । नापि ज्ञातस्य ज्ञापकत्वं ज्ञप्तेरेवासंभवात् । प्रत्यक्षादिप्रमाण-पंचकस्यानादिसत्त्वाज्ञापकत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् । प्रत्यक्षादी-नामन्यतमेन चानादिसत्तावगमेऽभावप्रमाणवैयर्थ्यं । तत एव पौरुषेयत्वाभावसिद्धेरनादिसत्त्वसिद्धिस्तदभावसिद्धिनांतरीयक-त्वात् । अस्तु तर्ह्यनादिसत्त्वासिद्धेरेव तदभावसिद्धिरिति चेत्स्या-देतद्यदि अनादिसत्त्वसिद्धिः स्यात् । यावता सैव नास्ति । प्रत्यक्षादीनामन्यतमेनापि तस्य तत्सिद्धेरयोगात् । एतेन अना-दिसत्त्वमेव तदसत्वमतस्तदुपलंभ एव पौरुषेयत्वाभावोपलंभ इत्येतन्निरस्तं ।

अभावप्रमाणाभावे कथमात्मादीनां मूर्त्याद्यभावः प्रतीयत इति चेन्नावश्यमात्मादीनां मूर्त्याद्यभावो ज्ञातव्यः तस्या-ज्ञानेऽपि कस्याश्चित्पुरुषार्थक्षतेरभावात् । पौरुषेयत्वाभावान-वबोधे पुनरप्रामाण्याभावनिश्चयाभावान्नवेदार्थे निःशंकाप्रवृत्तिः स्यात् । ततो नाभावादपि पौरुषेयत्वाभावसिद्धिः ॥

पर्युदासेऽपि किमन्यत्पौरुषेयत्वाभिमतं प्रत्यक्षसिद्धं स्यात् ।

न तत्सत्त्वादिकं। ततस्तत्सिद्धेरस्माभिरपीष्टत्वात। तदना-दिसिद्धतेतिचेत्स एव दोषोऽनादिकालस्यादर्शने तद्दर्शना-योगादिति। समयादर्शिनोऽपि वा तद्दर्शनप्रसंगः। कर्तुर-स्मरणादयोऽपि हेतवो न वेदस्यापौरुषेयतां साधयंति। कर्तु-रस्मरणं हि वादिनः प्रतिवादिनः सर्वस्य वा तत्साधनं स्यात्? वादिनोऽपि तत्कर्तुरभावादनुपलब्धेर्वा स्यात्?। अनुपलब्धेश्चेत्तदनैकांतिकं स्यात्। तथाविधस्यागमांतरेऽपि भावात् कर्तुरस्मरणनिमित्तानुपलब्धेरविशेषात्। परैः कर्तु-रागमांतरे स्मरणान्न वादिनोऽस्मरण तत्रेति चेत् न पर-कीयस्मरणस्याप्रमाणत्वात्। अन्यथा न वेदेऽपि वादिनोऽ स्मरणं स्यात्परैस्तत्रापि कर्तुः स्मरणात्। कर्तुरभावादस्म-रणं चेत्किं प्रमाणांतरादेतस्मादेवानुमानात्तदभावसिद्धिः?। प्रमाणांतरात्तदभावसिद्धौ अस्यानुमानस्य वैयर्थ्यं तत एवा-पौरुषेयत्वसिद्धेः। अस्मादेवानुमानात्तदभावसिद्धिश्चेत्तदभावा-सिद्धौ कथमस्य हेतो सिद्धिर्येनातस्तदभावसिद्धिः स्या-दितीतरेतराश्रयदोषः कथं न स्यात्। प्रतिवादिनोऽपि कर्तुरस्मरणं तत्रासिद्धं नापौरुषेयत्वसाधनायालं। तत्र हि प्रतिवादी स्मरत्येव कर्तारं। इत्येतेन सर्वस्यास्मरणं प्रत्या-ख्यातं। सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितो वा कथं सर्वस्य कर्तु-रस्मरणमवैति॥

यद्वेदाध्ययनपूर्वकं वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथे-

त्येतदन्यत्रापि शक्यते एव वक्तुं। भारताध्ययनं सर्वं तदध्ययनपूर्वकं। तदध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथेति। शब्दादप्यनादित्वसिद्धिरप्रामाण्याभावनिश्चये सति स्यात्। तन्निश्चयोऽपि ततोऽनादित्वसिद्धौ स्यात्। अन्यथा दोषाश्रयपुरुषसद्भावाशंकया नाप्रामाण्याभावनिश्चयः स्यादितीतरेतराश्रयत्वान्न शब्दादपि तत्सिद्धिः। न च तथाविधं वाक्यमस्ति। नापि विधिवाक्यादन्यस्य परैः प्रामाण्यमिष्यते। तादृग्वचनानुक्रमांतरस्याभावात् नोपमानमपि तत्साधनं। नाप्यर्थापत्तिः। अनादित्वमपौरुषेयत्वाख्यमंतरेण कोऽर्थः प्रमाणषट्कप्रमितो न भवति यतस्तस्य कल्पना स्यात्। न स प्रामाण्यलक्षणः तथाविधस्यान्यत्रापि भावात्। दोषाश्रयपुरुषसद्भावान्न सोऽन्यत्रेति चेदत्र पुरुषाभावः कुतोऽवसितः? अन्यतश्चेत्स एवोच्यतां किमनेन सिद्धोपस्थायिना। प्रामाण्यान्यथानुपपत्तिरिति चेच्चक्रकप्रसंगः। स नाप्रामाण्याभावलक्षणोऽप्युक्तदोषानतिवृत्तेः। न चाप्रामाण्याभावात्पुरुषस्याभावसिद्धिः धूमाभावादग्न्यभाववत्। कार्याभावस्य कारणाभावव्यभिचारादन्यथानुपपत्तेरभावात्। अप्रतिबद्धसामर्थ्यस्य पुंसोऽप्रामाण्यकारणस्याभावसाधनेऽपि न सर्वथा पुरुषस्याभावसिद्धिः। पुरुषमात्रस्यानिराकरणादिष्टसिद्धिश्च। तथाविधस्यातींद्रियज्ञानविकलस्य पुंसोऽनिष्टत्वात्॥

नन्वतींद्रियार्थस्य ज्ञातुरभावादन्यस्याप्यसिद्धेः सिद्ध एव

पुरुषाभावः । कथं पुनरतींद्रियार्थवेदिनो भवता विभावितोऽ-
भावः ? प्रत्यक्षस्यात्यक्षेऽनक्षज्ञानवति भावाभावविवेचनसा-
मर्थ्याभावात् । भावे वा नास्मिन्देशे काले वा भावसाधनं
घटते । अभीष्टत्वात् । देशकालात्मज्ञानानामनवयवेनाव्या-
पकस्यासर्वदर्शिप्रत्यक्षस्य सर्वदा सर्वत्र सर्वज्ञाभावज्ञानमयुक्तं
तथा ज्ञाने सर्वज्ञसिद्धिप्रसंगात् । न च प्रत्यक्षमभावविषयं
उक्तदोषात् । प्रमाणपंचकाभावलक्षणोऽभावः समुद्रोदकपरिसं-
ख्यानेनानैकांतिकः । न च प्रमाणपंचकस्याभावोऽत्र अनु-
मानसंभवात् । ज्ञानमात्रनिर्मुक्तात्मरूपोऽप्यभावो नापरिच्छे-
दको विरोधात् । परिच्छेदो हि नाम ज्ञानधर्मः स कथम-
शेषात्मना ज्ञाननिर्मुक्तस्यात्मनः स्यादभावविषयस्यापि ज्ञान-
स्याभावात् । भावे वा तस्यैवाभावपरिच्छेदकत्वात्तदेवाभाव-
प्रमाणमिति वक्तव्यं नान्यत् । अभावज्ञानभावे च कथ-
मात्मा ज्ञाननिर्मुक्तोऽभावप्रमाणं स्यात् । निषेध्यविषयज्ञान-
वैकल्यादात्मा ज्ञाननिर्मुक्तोऽभावज्ञानहेतुत्वादभावप्रमाणमु-
च्यते इति चेत्सति मुख्ये किं गौणकल्पनया । केन वा
निषेध्यविषयज्ञानेनात्मनो निर्मुक्तिरभावज्ञानहेतुः । तद्वि-
षयदर्शनज्ञानेन स्वात्मनो निर्मुक्तिरनैकांतिकी सर्वात्मनोऽ
सिध्देति न तथाविधदर्शनज्ञानेनात्मनो निर्मुक्तिरभावज्ञानसा-
धिनी । निराचिकीर्षितविषयानुमानादिज्ञानैरपि समस्तव्यस्तैरा-
त्मनो निर्मुक्तिः प्रत्यात्मनियतचेतोवृत्तिविशेषेणानैकांतिकी

तादृश्येव । तदन्यज्ञानमपि सर्वज्ञाभावसाधनं ।

अभावाभिधानं प्रमाणं अशेषज्ञेयविषयविज्ञानविकलासक-लज्ञेयज्ञानसमन्वितकालदेशानवच्छिन्नसकलपुरुषपरिषत्साक्षात्क-रणमंतरेण किमन्यत् तच्चासर्वज्ञस्य कथं स्यात् । क्वचित्कदा-चित्कस्यचित्तथा ज्ञाने न साकल्येन सर्वज्ञाभावसिद्धिः । सर्वज्ञसद्भावादन्यस्तदभावः तद्ग्राहि ज्ञानं तदन्यज्ञानमिति चेत्तदपि सर्वथा सर्वत्र सर्वज्ञो नास्तीत्यात्मानमासादयत्प्रमातुः सर्वज्ञतामासादयति । अन्यथोपजायमानं तव न कंचनार्थं पुष्णाति । पुरुषमात्रस्याभावसिद्धावन्ययोगव्यवच्छेदेनाप्रामा-ण्यनिवृत्तेरनिश्चयात् न चोदनातः सर्वज्ञाभावसिद्धिः । तद्-सिद्धौ च पुरुषमात्रस्याभावसिद्धिरितीतरेतराश्रयत्वान्न चोद-नापि सर्वज्ञाभावसाधिका । अप्रामाण्यनिवृत्त्यन्यथानुपपत्त्या पुंसोऽप्रमाण्यकारणस्यातींद्रियज्ञानविकलस्याभावसिद्धेरन्यस्य वीतरागसर्वज्ञस्य भावेऽपि तद्गुणैरपकृष्टत्वाद्दोषाणामस्त्येवाप्रा-माण्यनिवृत्तिः । सर्वज्ञनिवृत्त्यनिश्चयेऽपि चोदनायास्ततः कथ-मितरेतराश्रयदोषः स्यादिति चेदेवमप्रामाण्यनिवृत्तिः प्रत्याग-मेऽपि किं न स्यात् । मिथ्यात्वाज्ञानसंशयलक्षप्राणामाण्यनिवृ-त्तिसिद्धेरिति चेदत्र कुतस्तदभावसिद्धिः । दोषाश्रयपुरुषस्या-भावादिति चेदितरेतराश्रयत्वं । अभावप्रमाणादिति चेत्तथाऽ-न्यत्रापि किं न स्यात् । तथाऽप्रामाण्याभावसिद्धौ च प्रत्या-गमस्याशेषविषयावबोधावबोधकस्यावबोधकत्वेन चोदनावत्प्रा-

माण्याच्चोदनातः सर्वज्ञाभावमिध्दे: स प्रतिबंधकः स्यात् । तस्माच्चोदनातः सर्वज्ञाभावसिध्दिमिच्छताऽन्ययोगव्यवच्छेदे-नाप्रामाण्यनिवृत्तिः साधनीया । तत्सिध्दिरपि सर्वज्ञाभाव-सिध्या पुरुषमात्राभावसिध्दौ स्यादिति कथमितरेतराश्रयदोषो न स्यात् । अस्तु वाऽन्ययोगव्यवच्छेदेन श्रुतेरप्रामाण्याभाव-निश्चयस्तथापि नातः सर्वज्ञाभावसिध्दिः । कार्यार्थे वेदस्य प्रामाण्यादन्यत्र प्रामाण्यानभ्युपगमात्तथाविधायाश्च श्रुतेरभा-वात् । खरविषाणमित्युपमानमपि न सर्वज्ञाभावसाधनं । उपमान ही उपमानोपमेययोरुभयोरप्यध्यक्षत्वे सादृश्यालंबनमु-देति । अन्यथा उपमानोपमेययोः सादृश्यस्याप्रतीतेर्न सादृश्य-विशिष्टं वस्तु तद्विशिष्टं वा सादृश्यमुपमानस्य विषयः स्यात् । प्र-त्यक्षत्वे चोभयो सर्वज्ञनिरूपितायाः प्रत्यक्षेणैव प्रतीतेरुपमान-मपार्थकं स्यात् । प्रत्यक्षेणैव सर्वदा सर्वत्र सर्वज्ञनीरूपताप्रति-पत्तौ प्रतिपत्तिमतः सर्वज्ञतापत्तिः । विपर्यये न सर्वथा सर्व-ज्ञनीरूपतासिध्दिः । अहमिव सर्वदा सर्वपुरुषाः प्रतिनियत-मर्थमिंद्रियैः पश्यंति अशेषपुरुषवदहं वेत्येतदप्युपमानं तादृगेव । तथा सकलपुरुषसाक्षात्कारिदर्शनस्यानियतविषयत्वातींद्रिय-त्वप्रसंगात् स्ववचनविरोधश्चैवं स्यात । विमत्यधिकरणभावा-पन्नस्य कस्यचित्तज्ज्ञानस्य चातींद्रियस्यादर्शनेन सादृश्यप्रती-तेरभावात् न तत्राप्युपमानसंभवः । संभवेऽपि न तवेष्टसिध्दिः स्यात् । स्वात्मनि च यावद्भिः कारणैर्जनिनमर्थसाक्षात्कारि

विज्ञानं यथाभूतार्थग्राह्युपलब्धं तथा सर्वदा सर्वत्र प्राण्यं-तरेऽपीति नियमे नक्तंचराणामनालोकांधकारव्यवहितरूपोप-लंभो न स्यात्। स्वात्मनि तथाऽनुपलंभात। प्राण्यंतरे स्वात्मन्यनुपलब्धस्याप्यनालोकांधकारव्यवहितरूपोपलंभलक्षणा तिशयस्य संभवे तद्वत्पुरुषांतरस्यापि इंद्रियमंतरेण द्रव्यस्वभाव-देशकालव्यवहितरूपाद्युपलंभः किं न स्यात्। तथा चैक एवातीतानागतवर्तमानानंतार्थव्यंजनपर्यायात्मकसूक्ष्मांतरितदू-रार्थेष्वनंतेष्वप्रतिबद्धवृत्तिरमलः केवलाख्योऽनंतावबोधः सिध्दि-मास्तिघ्नुते। तस्मात्—

यैरुक्तं केवलज्ञानमिंद्रियाद्यनपेक्षिणः।
सूक्ष्मातीतादिविषयं सूक्तं जीवस्य तैरदः ॥१॥

तथाच यदुक्तं कैश्चित्—

यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात्सर्वज्ञः केन वार्यते
एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ॥
नूनं स चक्षुषा सर्वान्रसादीन्प्रतिपद्यते ॥
यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनं ॥
भवेदिदानीं लोकस्य तथा कालांतरेऽप्यभूत् ॥
यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलंघनात्।

दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोतृवृत्तितः ॥

इत्येतदनेनापास्तं । तथाहि—

येन जात्यंतरे रूपदृगालोकं विनेष्यते ॥
नूनं स चक्षुषा रूपमनालोकं समीक्षते ॥
यथा जात्यंतरे दृष्टः स्वभावातिक्रमोऽधुना ॥
नरांतरे तथाऽनक्षदृष्टिरूपोऽन्यदाऽप्यभूत् ॥
जात्यंतरे यथा दृष्टोऽतिशयः स्वार्थलंघनः ।
तथा नरांतरेऽपि स्याद्ध्वनौ नयनवृत्तितः ॥

तथाहि— चक्षुःश्रवसो भुजंगा इति कविप्रवादश्च श्रूयते । तेषां स मिथ्यावाद इति चेन्न बाधकाभावात् कर्णच्छिद्रानुपलब्धेः । अस्मदादावनुपलब्धिरेव बाधकमिति चेत् कथं तर्हि जातिविशेषस्यांधकारांतरितरूपग्रहणं । तथाविधानुपलंभस्याविशेषात्तदविशेषेऽपि तत्संभवेऽन्यत्र को विरोधो भविष्यति । न दृष्टं च प्रत्यक्षस्य मनागपि सामर्थ्यं । नानुमानादेः । लिंगादिरहिते क्वचिदित्येतदप्यनल्पतमोविलसितं । अंधकारव्यवहितरूपग्रहणवज्जातिविशेषस्य पुरुषविशेषस्यापि कालव्यवहितधर्मादिग्रहणमविरुद्धमिति । भवतु वा स्वार्थानतिलंघनं तथापि सर्वज्ञत्वमनिवार्यं । चक्षुरादिभिरतिशयवद्भिर्द्रव्यस्वभावदेशकालव्यवहितरूपादिसद्भावोपलंभात् । उपलभ्यते हि च-

क्षुरादीनां दूरस्थितरूपादिग्रहणे गृध्रादिष्वतिशयः। रूपादि-विरहिणां चाकाशकालात्मादीनामंतःकरणजनितेन विशदा-त्मना ज्ञानेनोपलंभात्। वैशद्यं च मनोजनितज्ञानस्य भावना-बलतः। कामशोकादिविप्लुतधियः कामिन्यादिप्रतिभासवत्। कामिन्यादावुपलंभसंभवात्स्याद्भावनाबलतो वैशद्यं नात्रात्यंत-परोक्षे लिंग इति चेन्न। अत्रापि श्रुतमयेन ज्ञानेनोपलंभसं-भवात्। तस्यापि स्वतश्चोदनावत्प्रामाण्यात्। पुरुषाभावस्या-न्यत्रापि दुरन्वयात्। ज्ञानस्य वा ज्ञेयपरिमाणस्य कः स्वार्थः। करणानां ह्ययं विषयनियमो न बुद्धेः तस्याः समस्तज्ञेयव्यापि-त्वात्। सकलमनेकांतं सत्त्वादिति विश्वस्य विषयीकरणात्। तस्याश्चानियताया बुद्धेर्नियमहेतूनामिंद्रियाणामभावात्। दो-षावरणक्षयाच्च। वैशद्यानियतविषयत्वाभ्यामनंतात्तत्साक्षात्कारि-ण्याः किं पंचविषयावबोधो विरोधमध्यास्ते। येनैकेन प्रमाणेन सर्वज्ञत्वविरोधः स्यात्। एतेन सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वेन सर्वज्ञ-त्वनिराकरणं निरस्तं। इंद्रियार्थसन्निकर्षजस्य हि ज्ञान-स्यायं वर्तमानार्थग्रहणलक्षणानियमो नातींद्रियस्य। तस्या-तीतानागतवर्तमानार्थेष्वविशेषात्। कथमन्यथा त्रिकालवि-षयमर्थं चोदना पुरुषस्य प्रतिपादयति। अंधस्येवार्थः दर्शः (?) परोक्षार्थं केवलं वैशद्ये विवादः। तत्रापि दोषावरणक्षयो निमित्तं। रजोनीहाराद्यावृतार्थप्रतिभासस्येव तद्वियोगः। कथं पुनरनक्षाश्रितस्य ज्ञानस्यायं प्रत्यक्षव्यप-

देश इति चेन्नाक्षाश्रितत्वं प्रत्यक्षाभिधानस्य व्युत्पत्तिनिमित्तं गतिक्रियेव गोशब्दस्य। प्रवृत्तिनिमित्तं त्वेकार्थसमवायिनाऽक्षाश्रितत्वेनोपलक्षितमर्थसाक्षात्कारित्वं गतिक्रियोपलक्षितगोत्ववत् गोशब्दस्य। अन्यद्धि शब्दस्य व्युत्पत्तिनिमित्तमन्यद्वाच्यं अन्यथा गच्छन्त्येव गौर्गौरित्युच्येत नान्या व्युत्पत्तिनिमित्ताभावात्। जात्यंतरं च गतिक्रियापरिणतं व्युत्पत्तिनिमित्तसद्भावाद्गोशब्दवाच्यं स्यात्। अन्यत्वे तु व्युत्पत्तिनिमित्ताभावेऽपि तेनोपलक्षित एव प्रवृत्तिनिमित्ते गोशब्दस्य वृत्तेर्नाव्याप्त्यतिव्याप्ती। तथेह केवलज्ञाने व्युत्पत्तिनिमित्तस्याक्षाश्रितत्वस्याभावेऽपि प्रवृत्तिनिमित्तस्यार्थसाक्षात्कारित्वस्य भावात् प्रत्यक्षाभिधानवृत्तिरविरुद्धा। तेन सर्वस्येंद्रियद्वारेण प्रतिनियतार्थावबोधपरिकल्पनासंभवान्नोपमेयस्तदभावः। नाप्यर्थापत्तिगम्यः सर्वज्ञाभावमंतरेणासंभविनः प्रमाणषट्कविज्ञातस्य कस्यचिद्धर्मांतरस्याभावात्। वक्तृत्वादेरपि सर्वज्ञतयाऽनुपलब्धिलक्षणप्राप्तया इतराव्यवच्छेदरूपया विरोधद्वयस्याप्यसिद्धेरन्यथानुपपत्तेरभावात्। क्वचिद्वक्तरि सर्वज्ञताऽनुपलब्धेर्विरोधसिद्धौ वेदार्थज्ञातयाऽपि तत्रानुपलब्धया विरोधसिद्धेर्न कश्चिद्वेदार्थज्ञः सर्ववित् स्यात्। वक्तरि सर्वत्रानुपलब्ध्या विरोधसिद्धिरिति चेन्न स्वोपलंभनिवृत्तेरनैकांतिकत्वात् सर्वोपलंभनिवृत्तेरसिद्धत्वात्। एतेन वक्तृत्वादेः सर्वज्ञत्वाभावानुमापकत्वं निरस्तं। असाध्याविरुद्धस्यान्यथा-

नुपपत्तिविकलतया हेतुत्वायोगात् । तथाविधस्यापि हेतुत्वे जैमिनिरन्यो वा न कश्चित्सर्वज्ञाभाव वेदार्थतत्त्वं वा वेत्ति वक्तृत्वादिभ्यः पुरुषांतरवदित्यनिष्टसिद्धिः स्यात् । वक्तृत्वाद्यविशेषेऽपि कस्यचिद्वेदार्थज्ञतातिशयसंभवेऽन्याऽपि किं न स्यात् । स्यादेतत् । दशहस्तांतरे व्योम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति ।। न योजनमसौ गंतुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ।। १ ।। तद्वद्यदि नाम कश्चित्पुरुषो वेदार्थज्ञो न तावता पुरुषेण केनचित्सकलज्ञेन भवितव्यं । दृष्टस्वभावातिक्रमविरोधादित्येतदपि शशकस्य भयाल्लोचनसंमीलनन्यायमनुकरोति ।। यदि नाम– दशहस्तांतरे व्योम्नि नोत्प्लुवेरन् भवादृशाः ।। योजनानां सहस्रं किमुत्प्लवेत न पक्षिराट् ।। १ ।। यथा वीर्यांतरायक्षयवशात् वैनतेयो योजनसहस्रमन्यैरलंघ्यमुल्लंघयति तथा पुरुषविशेषोऽपि ज्ञानावरणीयक्षयातिशयवशात् विश्वमनन्यवेद्यं वेत्ति । लंघनोदकतापादिवदेव वा न स्वभावातिक्रमः स्यात् । यद्युदकादिवदाश्रयोऽस्थिरः स्यात् । आहितो वा लंघनादिवत् ज्ञानस्यातिशयो यत्नांतरापेक्षी स्यात्तत्रोपयुक्तशक्तीनामुत्तरोत्तरातिशयादाने साधनानामसामर्थ्यात् । यदा पुनराश्रयस्थैर्य आहितो वा विशेषो न यत्नांतरमपेक्षते तदोत्तरोत्तरयत्नस्योत्तरोत्तरातिशयाध्यायकत्वात् भवत्येव ज्ञानस्वभावातिशयकाष्ठा । न चास्माभिरभ्यासातिशयादिष्यते ज्ञानस्यातिशयो येन

ज्ञानस्य लंघनादिवदभ्यासशतैरपि स्वभावातिक्रमो न भवत्येवेति नियमः स्यात्। किंतु दोषावरणक्षयातिशयवशादित्युक्तप्रायं। यावज्ज्ञेयव्यापि ज्ञानस्वभावस्यात्मनो दोषावरणक्षयस्वभावोपलब्धिरेव सकलज्ञता न स्वभावातिक्रांतिः॥

यच्चान्यदुक्तमन्यैः—

बुध्द्यादीनामसार्वज्ञ्यमिति सत्यं वचो मम ॥
मदुक्तत्वाद्यथैवाभिरुष्णो भास्वर इत्यपि ॥ १ ॥

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः॥
निराकरणवच्छक्त्या न चासीदिति कल्पना ॥ २ ॥

न चागमेन सर्वज्ञस्तदीयेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥
नरांतरप्रणीतस्य प्रामाण्यं गम्यते कथं ॥ ३ ॥

प्रत्यक्षाद्यविसंवादि प्रमेयत्वादि यस्य च ॥
सद्भाववारणे शक्तं को नु तं कल्पयिष्यति ॥ ४ ॥

भवतु वा सर्वज्ञस्तथापि—

सर्वज्ञोऽयमिति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ॥
तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथं ॥ १ ॥

कल्पनीयाश्च सर्वज्ञा भवेयुर्बहवस्तव ॥
य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुध्यति ॥ २ ॥

सर्वज्ञो नावबुध्दश्च येनैव स्यान्न तं प्रति ॥

तद्वाक्यानां प्रमाणत्वं मूढो ज्ञानेऽन्यवाक्यवत् ॥ ३ ॥

इत्येतदन्यत्रापि समानं ॥

सार्वज्ञ्यमर्हदादीनामिति सत्यं वचो मम ॥
मदुक्तत्वाद्यथैवाग्निरुष्णो भास्वर इत्यपि ॥ १ ॥
प्रत्यक्षाद्यविसंवादि प्रमेयत्वादि यस्य च ॥
सद्भावसाधने शक्तं को नु तं वारयिष्यति ॥ २ ॥
सर्वज्ञनास्तिता तावत् दृश्यते नास्मदादिभिः ॥
न च साधनवच्छक्या सर्वज्ञस्य निराकृतिः ॥ ३ ॥
सर्वज्ञाभावसिद्धिर्न श्रुतेरन्योन्यसंश्रयात् ॥
नरांतरप्रणीतस्य प्रामाण्यं गम्यते कथं ॥ ४ ॥

अथवाऽस्तु सर्वज्ञाभावस्तथापि—

सर्वत्र सर्वदा कश्चित् सर्वज्ञो नेति नास्तिकैः ॥
सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितैर्गम्यते कथं ॥ १ ॥
कल्पनीयाश्च सर्वज्ञा भवेयुर्बहवस्तव ॥
य एव स्यादसर्वज्ञः सोऽसर्वज्ञं न बुध्यति ॥ २ ॥
सर्वज्ञनास्तिता येन न ज्ञाता नैव तं प्रति ॥
प्रामाण्यं वेदवाक्यानामन्ययोगाविवेकतः ॥ ३ ॥

सर्वज्ञाभावस्यासिध्दौ धर्मे चोदनैव प्रमाणमित्यवधारणस्यानुपपत्तेः । नाप्यनुमानात्सर्वज्ञाभावसिद्धिः तस्यान्ययोगव्यवच्छेदेन प्रामाण्यावधारणं तस्य निरस्तत्वात् ॥

नर्ते स आगमात्सिध्येन्न च तेनागमो विना ॥
दृष्टांतोऽपि न तस्यान्यो नृषु कश्चित्प्रतीयते ॥ १ ॥

इत्यत्रापि ॥ न तावत्कारकपक्षे बीजांकुरवदितरेतराश्रयत्व-मनादित्वात्तत्प्रवाहस्य । नापि ज्ञप्तिपक्षे– सर्वज्ञस्यानुमाना-त्प्रतिपत्तेः । आगमस्य स्वतः प्रामाण्यात् । अप्रामाण्यनि-वृत्तिः कथमिति चेत् कथं वेदे । अपौरुषेयत्वादिति चेन्ना-पौरुषेयाणामपि नीलोत्पलादिषु दहनादीनामन्यथाप्रतिपत्तिहे-तुत्वदर्शनात् । अभावप्रामाण्यादिति चेदत एवात्रापि स्या-दिति समानं । तदेवं सर्वज्ञाभावस्यासिद्धिः । अतींद्रियार्थज्ञातु-रभावादन्यस्याप्यनिष्टिः । सिद्ध एव पुरुषाभाव इत्येतदसारं । पौरुषेय एवायं नष्टमुष्ट्यादिवचनरचनानुक्रमविशेषः केवल-मनादिरुपदेशपरंपरयाऽतींद्रियार्थज्ञातुरभावेऽपि प्रमाणभूतः प्रबंधेनानुवर्तते इति चेदन्योऽपि वचनानुक्रमविशेषः प्रबं-धेनैवं प्रवर्तमानः प्रमाणभूतः किं न स्यात् । तदनु-सारिभिरेवासावतींद्रियज्ञानपूर्वकत्वेनाभ्युपगतः । तज्ज्ञानस्य चाभावात् उपदेशपरंपरायाश्चानभ्युपगमान्न प्रमाणमिति चेत् किं पराभ्युपगमो भवतः प्रमाणं? अन्यथा नष्टमुष्ट्यादिप्रति-पादकागमोऽपि न प्रमाणं । तस्यापि तैरेव तथाऽभ्युप-गमात् । अविसंवादादस्य प्रामाण्यं नान्यस्याविसंवादाभा-वादिति चेन्न तर्हि वेदः प्रमाणं अविसंवादाभावात् । अपौ-रुषेयत्वादस्य प्रामाण्ये ज्योतिर्ज्ञानादेः पौरुषेयत्वाभ्युपग-

मात् प्रामाण्यं न स्यात् । न ब्रूमोऽपौरुषेयत्वादेव प्रामाण्यमपि तु प्रामाण्यमेवापौरुषेयत्वादिति चेत्तर्हि नीलोत्पलादिषु दहनादीनामपौरुषेयाणां न मिथ्याज्ञानहेतुता स्यात् । ज्योतिःशास्त्रप्रवाहस्य चानादितया प्रामाण्ये वेदेऽपि तथैवास्तु प्रामाण्यं किमपौरुषेयतासाधनोपन्यासायासेन । अन्यत्र कर्तुः श्रवणात्पौरुषेयता युक्ता नात्र कर्तुरश्रवणादिति चेन्न । अत्रापि कर्तुः श्रवणात् । तन्मिथ्यात्वमन्यत्रापि समान । [illegible]भ्युपगमादन्यत्र पौरुषेयत्वमत्रापि किं न स्यात् । ज्योतिःशास्त्रप्रवाहस्य चानादित्वे [illegible]यद्येण दुष्टाशयत्वादुपदेष्टृणां स्यादपि तस्योच्छेदः । दृश्यते ह्यादिमतामपि नेपथ्यव्यवहाराणां बालक्रीडादीनामन्येषां वा समुच्छेदः । किमुतादीनां । तस्य चोद्धरणमसाधारणपुरुषादेव युक्तं । नापि तदेकदेशनिबंधनेयं वचनानुक्रमविशेषपरंपरा । तस्यैवापौरुषेयस्याभावात् । नाप्यन्वयव्यतिरेकदर्शनबलप्रवृत्ता । चूतमंजर्यादेर्मधुमांस इव ग्रहोपरागादीनां दिक्प्रमाणफदल (?) कालाकाशादिषु नियमाभावात् । न लिंगविशेषभाविन्यपीयं । तल्लिंगस्य हि प्राकृतपुरुषदर्शनविषयत्वेऽस्मदादीनामनुपदेशात्तत्प्रतीतिः स्यात् । अतींद्रियत्वे तस्योपदेशमंतरेण तस्य प्रतिपत्त्ययोगात् तदुपदेष्टुरतींद्रियार्थदर्शित्वं स्यात् । न चानुपदेशालिंगानन्वयव्यतिरेकेयं विसंवादिनी ग्रहोपरागादिषु संवादोपलंभात् । क्वचिद्विसंवादो व्याख्याता-

चकसंबंधाज्ञानात् । तस्मात्कस्यचिदनुपदेशाल्लिंगानन्वयव्यति-रेकाविसंवादिवचनानुक्रमकारित्वं सिद्धं । एतेन धर्म्यसिद्धि-र्निरस्ता ततो नासिद्धिर्मूलहेतोः ।

अवधिज्ञानिनो धर्माधर्माकाशकालादिप्रत्यक्षताभावेऽपि नष्टमुष्ट्यादीनां प्रत्यक्षकत्वादनैकांतिको हेतुरिति चेन्न असत्यावरणे इति विशेषणात् । आवरणाभावः कथं सिद्ध इति चेद्भवतोऽपि कथं धर्माधर्मादिप्रत्यक्षताभावसिद्धिः । अस्मदभ्यु-पगमादितिचेत्तत एवावरणाभावसिद्धिरपि किं न स्यात् । ननु धर्माधर्मादिसजातीयनष्टमुष्ट्यादिप्रत्यक्षताया दृष्टांतेऽभावात्-साधनशून्यो दृष्टांतः । घटसमानजातीयभूतलप्रत्यक्षताऽपि हेतुत्वेनोपादीयमाना न कंचनार्थं साधयति । घटप्रत्यक्ष-ताया एव ततस्तस्य सिद्धेस्तत्र च विवादाभावात् । उभयत्र यज्जातीयप्रत्यक्षतासामान्यमपि न हेतुरत्यंतविल-क्षणयोस्तयोस्तल्लक्षणसामान्यानवस्थानात् । तथाह्येका देश-कालस्वभावाविप्रकृष्टत्वेन घटसमानजातीयभूतलस्यार्वाग्दर्शि-प्रत्यक्षताव्यक्तिः अन्या तु स्वभावादिविप्रकृष्टतया धर्मा-धर्मादिसजातीयनष्टमुष्ट्यादेरतींद्रियार्थदर्शिप्रत्यक्षता । तयो-श्चात्यंतविलक्षणयोर्नैकं सामान्यमित्यनालोचिताभिधानं । साध-नांतरेऽप्यस्य दूषणस्याविशिष्टत्वात् । तथाहि साध्यधर्मि-संबंधिनो धूमस्वलक्षणस्य हेतुत्वे साधनशून्यो दृष्टांतो महा-नसादिसंबंधिनोऽसिद्धेः । नापि धूमसामान्यमुभयसंबंधि साध-

नीयत्वेनोपन्यसनीयं तार्णपार्णयोर्धूमस्वलक्षणयोर्नानादेशस्थयोरत्यंतविलक्षणत्वेनैकसामान्यायोगात् । तथाभूतयोरपि धूमस्वलक्षणयोरेकसामान्याभ्युपगमेऽन्यत्रापि को विशेषो येन यज्जातीयप्रत्यक्षतासामान्यं हेतुत्वेनोपादीयमानं न क्षम्यते ॥

ननु तथापि सविशेषणस्य यज्जातीयप्रत्यक्षतासामान्यस्य पक्षधर्मतयोपसंहारादसाधारणत्वमिति चेन्न । व्यक्तिसंबंधकथनमात्रमेतत् न तावता साधारणत्वं । अन्यथाऽस्ति चेह धूम इत्यत्रापि प्रदेशविशेषणस्यान्यत्रानुवृत्तिप्रसंगः । तत्रायोगव्यवच्छेदेन विशेषणमिहापि समानं । देशाद्यविप्रकृष्टतया घटसमानजातीयभूतलप्रत्यक्षतायां घटस्यापि प्रत्यक्षतानियमे शब्दश्राविणोऽधस्यापि संनिहितरूपदर्शनप्रसंगस्तथासाधर्म्यात् । अन्यथा भूतलदर्शिनोऽपि घटप्रत्यक्षतानियमोऽपि मा भूत् । विप्रकृष्टतया वा साधर्म्येऽपि धर्माधर्मादिप्रत्यक्षता नष्टमुष्ट्यादिप्रत्यक्षतायामपि न स्यादिति चेन्न रूपादौ हि प्रतिनियतमिंद्रियं सहकारि प्रतिपत्तौ, अंधस्य च रूपप्रतिपत्तिनिमित्तेंद्रियविरहान्न रूपादिदर्शनमिति युक्तं । घटभूतलयोस्त्वेकेंद्रियजनितज्ञानग्राह्यत्वात् । भूतलदर्शिनो न घटदर्शनं न्याय्यं । विप्रकृष्टानामिंद्रियमंतरेण प्रतिपत्तेर्नियामकाभावात् । नष्टमुष्ट्यादिसाक्षात्कारिणो धर्माधर्मादिप्रत्यक्षीकरणमप्ययुक्तं । भवतु नाम धर्माधर्माद्यशेषवस्तुसाक्षात्करणं तथापि वर्तमानकालभाविनामेवा-

र्थानां ग्रहणं स्यान्नातीतानागतानामभावरूपत्वादिति चेन्न। वर्तमानकालसंबंधितयाऽभावेऽपि अतीतानागतकालसंबंधितया भावात्। तत्कालसंबंधितयाऽप्यभावे वर्तमानसंबंधितयाऽप्यभाव एव स्यात्। वर्तमाना एव हि भावाः कालांतरापेक्षयाऽतीतानागतकालसंबंधिनो भवंति। अस्तु नाम तथाभावस्तथापि स्वज्ञानकालासंभविनोऽर्थस्य कथं ग्रहणमिति चेन्न। इंद्रियजनितज्ञानग्राह्यस्यायं न्यायो नान्यस्य। अन्यथा कथं चोदना त्रिकालविषयमर्थं पुरुषस्य प्रतिपादयतीत्यवितथं स्यात्। आगमद्वारेणास्त्येव त्रिकालविषयार्थप्रतीतिर्न साक्षादनुपलब्धेरित्यपि वार्तं। नष्टमुष्टिग्रहोपरागादीनां भूतभवद्भव्यरूपाणामुपदेशान्यथानुपपत्त्या साक्षात्प्रतीतिसिद्धेः।

ननु यज्जातीयप्रत्यक्षता च स्यात् अतत्प्रत्यक्षता च विरोधाभावात् अतः संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिको हेतुः स्यादिति चेत्तर्हि घटसमानजातीयभूतलप्रत्यक्षत्वेऽपि घटो न प्रत्यक्ष इति एकज्ञानसंसर्गस्य घटभूतलयोरभावान्न केवलभूतलोपलब्ध्या घटाभावसिद्धिः स्यात्। अभावप्रमाणात् तदभावसिद्धिर्नैकज्ञानसंसर्गिपदार्थोपलंभलक्षणादनुपलंभादिति चेन्न। सर्वसंबंधिनः प्रमाणपंचकाभावलक्षणाभावप्रमाणस्यासिद्धत्वात्। आत्मसंबंधिनः प्रमाणपंचकाभावलक्षणाभावप्रमाणस्य प्रत्यात्मनियतचेतोवृत्तिविशेषेणानैकांतिकत्वात् ज्ञानमात्रनिर्मुक्तात्मरूपा-

दप्यभावान्नाभावसिद्धिः सर्वथा तस्य परिच्छेदशून्यत्वात्। निषेध्यविषयाशेषप्रमाणनिर्मुक्तात्मलक्षणाभावस्यापि सर्वात्मसंबंधिविकल्पयोः पूर्ववदसिद्धानैकांतिकत्वात् तदन्यवस्तुविषयज्ञानलक्षणोऽप्यभावस्तदन्यवस्तुनो निषेध्यैकज्ञानसंसर्गिणश्चेत्स एवास्मदभिमतस्तदेकज्ञानसंसर्गिपदार्थोपलंभलक्षणोऽनुपलंभोऽभावसाधन इतीष्टं स्यात्। अन्यथा नाभावसिद्धिरतिप्रसंगात्। घटवद्भूतलोपलब्ध्या परचेतोवृत्तिविशेषस्याप्यभावसिद्धिप्रसंगात्। घटादन्यस्तदभावस्तद्भानादभावसिद्धिश्चेत्तदभावज्ञानमभावसिद्धिनिबंधनं कुतो भवति? प्रमाणपंचकाभावादिति चेत्परचेतोवृत्तिविशेषविषयेऽपि ततोऽभावज्ञानोत्पत्तिः स्यात् अविशेषात्। प्रमेयाभावाभावात् तत्राभावानुत्पत्तिरिति चेत् प्रमेयसद्भावस्यासिद्धौ कथं तल्लक्षणः प्रमेयाभावाभावोऽवसीयते। अभावज्ञानानुत्पत्तेरभावाभावगतिर्नान्यथेति चेत्तत्राप्यभावज्ञानानुत्पत्तिरेव कुतः? अभावाभावादिति चेद्व्यक्तमितरेतराश्रयदोषानुषंजनं। अभावप्रमाणप्रमितायाः प्रमेयज्ञानानुत्पत्तेरभावाभावगतिर्न परस्पराश्रयदोषानुषंग इति चेन्न॥

अभावाभावनिश्चयाभावे हि किमभावाभावादभावज्ञानानुत्पत्तिरुत एकज्ञानसंसर्गिपदार्थोपलंभाभावादिति संदेहः स्यात् इत्थंभूतयाश्चाभावज्ञानानुत्पत्तेर्नाभावसिद्धिर्व्यभिचारात्। तस्मादभावाभावनिश्चयपूर्व एवाभावज्ञानानुत्पत्तिनिश्चय इति

कथमितरेतराश्रयदोषो न स्यात् । तस्मान्नाभावप्रमाणादभाव-व्यवहारसिद्धिर्बुद्धिव्यपदेशार्था । क्रियाविरहादभावव्यवहार-सिद्धिश्चेत्स एव तद्विरहः कुतोऽवसीयते । अन्यतो बुद्धिव्यप-देशक्रियाविरहादिति चेदनवस्था । अनुपलब्धेश्चेत्तत एव प्रमेयाभावस्यापि सिद्धिरस्तु । किमंतर्गडुनाऽन्येन । तस्मा-देकज्ञानसंसर्गिपदार्थोपलंभलक्षणानुपलंभादेवाभावव्यवहारसि-द्धिः । एकज्ञानसंसर्गश्चोपलभ्य निषेध्ययोर्यज्जातीयप्रत्यक्षता-यां तत्प्रत्यक्षतानियमे सति स्यात् नान्यथेति न । यज्जातीय-प्रत्यक्षताहेतुः संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिकस्तत एव न विरुद्धः । साध्यतदावृत्तिवचनप्रयोगाभावात् न्यूनता नाम साधनदोष इति चेन्न । साध्येनानुगतसाधनस्य साध्यधर्मिण्युपसंहारसामर्थ्या-देव तदर्थस्य लाभात् । अन्यथा साध्येन साधनस्यानुगमा-भावात्साध्यतदावृत्तिवचनप्रयोगेऽपि न साध्यसिद्धिः स्यात् अर्थापन्नस्यापि वचने पुनरुक्तं नाम निग्रहस्थानं स्यात् । अर्थापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनं पुनरुक्तमिति वचनात् । तस्मादसिद्धविरुद्धानैकांतिकादिदोषविकलत्वादनवद्यं साधन-मित्यनंतावबोधसिद्धिः ॥

समस्तभुवनव्यापियशसाऽनंतकीर्तिना ।
कृतेयमुज्वला सिद्धिर्धर्मज्ञस्य निरर्गला ॥ १ ॥

बृहत्सर्वज्ञसिद्धिः

सूक्ष्मांतरितदूरार्थाः कस्यचित्प्रत्यक्षाः अनुपदेशालिंगा-न्वयव्यतिरेकपूर्वकाविसंवादिनष्टमुष्टिचिंतालाभालाभसुखदुःख ग्रहोपरागाद्युपदेशकरणान्यथानुपपत्तेः । तथाहि— नष्टं देशांतरितं कालांतरितं द्रव्यांतरितं वा स्यात् । मुष्टिस्थं वस्तु द्रव्यांतरितं । चिंता सूक्ष्मस्वभावा । लाभालाभौ कालांतरितौ । तथा सुखदुःखे । ग्रहोपरागादिः कालां-तरितः । मंत्रौषधिशक्तयः सूक्ष्मस्वभावाः । तदेषां सूक्ष्मां-तरितदूरस्वभावानामर्थानां यथोक्तस्योपदेशस्य करणं तत्सा-क्षात्करणमंतरेणानुपपन्नं । नन्वसंभवदर्थविषयेयं प्रतिज्ञा प्रमा-णांतरविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वात् । वंध्यास्तनंधयगुणव्यावर्णना-दिवत् । तत्रानुमानविरुद्धा तावदियं प्रतिज्ञा विवादास्प-दीभूते देशे काले च रसादयोऽत्रत्येदानींतनरसादिग्राह-कसजातीयप्रमाणग्राह्या रसादिशब्दवाच्यत्वात् । अत्रेदानीं-तनप्रत्यक्षवदिति । तथाहि यज्जातीयैश्चक्षुरादिभिर्जनितैः प्रमा-णैर्यज्जातीयानामविप्रकर्षिणां प्रतिनियतानां रूपाद्यर्थानामि-दानीमत्र च साक्षात्करणं दृष्टं तथा देशांतरे कालांतरे ऽपि तथाविधैरेव प्रमाणैस्तथाविधानामेवार्थानां साक्षात्कर-णमभूद्भवति भविष्यति चेत्यध्यवस्यामः । नेंद्रियांतरेण ।

नापींद्रियमंतरेण रूपाद्यर्थानां दर्शनं । नापि विप्रकर्षिणामिंद्रियेणेंद्रियमंतरण वा दर्शनमभूद्भवति भविष्यति चेति युक्तं । अन्यथा दृष्टहानेरदृष्टकल्पनायाश्च प्रसंगात् । तथाचोक्तं—

यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनं ।
दृष्टं संप्रति लोकस्य तथा कालांतरेऽप्यभूदिति ॥१॥

ननु गृध्रवराहपिपीलिकादीनां चक्षुःश्रोत्रघ्राणादिषु दूरस्थितरूपशब्दगंधादिग्रहणलक्षणातिशयदर्शनात् क्वचित्पुरुषविशेषे चक्षुरादीनां विषयांतरग्रहणलक्षणोऽप्यतिशयः संभाव्येत । प्रज्ञामेधादिभिश्च नराणामतिशयदर्शनात् कस्यचिदतींद्रियार्थद्रष्टृत्वेनाप्यतिशयः स्यादिति । अत्रोच्यते । योऽपि गृध्रादिषु चक्षुरादीनामतिशयो दृष्टः सोऽपि स्वार्थापरित्यागेन दूरसूक्ष्मादिदृष्टावतिशयो दृष्टो न रूपादौ श्रोत्रादिवृत्त्या। तथा बुद्धादिचक्षुरादेरपि स्वार्थापरित्यागेनैवातिशयः स्यात् ।
तथाचोक्तं—

यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलंघनात् ॥
दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तित इति ॥१॥

यश्च प्रज्ञामेधादिभिर्नराणामतिशयो दृष्टः सोऽपि नियतविषयः । स्तोकस्तोकांतरत्वेनैवातिशयो दृष्टो न विषयांतरे । नापि प्रकर्षपर्यंतगमनेन । उक्तं च—

येऽपि सातिशया दृष्टाः प्रज्ञामेधाबलैर्नराः ।
स्तोकस्तोकांतरत्वेन नत्वतींद्रियदर्शनात् ॥ १ ॥

प्राज्ञोऽपी हि नरः सूक्ष्मानर्थान् द्रष्टुं क्षमोऽपि सन् ।
स्वजातीरनतिक्रामन्नतिशेते परान्नरानिति ॥ २ ॥

यथाऽभ्यस्तैकशास्त्रविचारे महतोऽतिशयस्य कस्यचिद्द-र्शनेऽपि न शास्त्रांतरपरिज्ञानेऽतिशयो दृश्यते । न हि व्याक-रणमतिशयेन जानन्नपि ज्योतिःशास्त्रमश्रुतमवैति । ज्योतिः-शास्त्रं वा सातिशयमवयन्नपि न व्याकरणमनभ्यस्तं जानाति । तथा कस्यचिद्वेदादिज्ञानातिशये सत्यापि न स्वर्गापूर्वदेवतादौ विषयांतरे साक्षात्कारि ज्ञानं युक्तं । तदुक्तं—

एकशास्त्रविचारे तु दृश्यतेऽतिशयो महान् ।
न तु शास्त्रांतरज्ञानं तन्मात्रैणैव लभ्यते ॥ १ ॥
ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः ।
प्रकृष्यति न नक्षत्रतिथिग्रहणनिर्णये ॥ २ ॥
ज्योतिर्विच्च प्रकृष्टोऽपि चंद्रार्कग्रहणादिषु ।
न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति ॥ ३ ॥
तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि ।
न स्वर्गदेवतापूर्वप्रत्यक्षीकरणक्षम इति ॥ ४ ॥

तथाच व्योम्नि दशहस्तांतरमभ्यासवशाल्लंघयन्नपि कश्चिन्न योजनशतं योजनसहस्रं लोकांतरं वाऽभ्यासशतैरपि उल्लंघ-यति । तथा बुद्धाद्यतिशयज्ञानैरभ्यासवशादतिदूरगतैरपि किंचिदेवामनागधिकं ज्ञातुं शक्यते न पुनः सर्वे सूक्ष्मांत-रितदूरार्थो इति । तथाचोक्तं—

दशहस्तांतरे व्योम्नि यो नामोत्पलुत्य गच्छति ।
न योजनमसौ गंतुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ॥ १ ॥

तस्मादतिशयज्ञानैरतिदूरगतैरपि ।
किंचिदेवाधिकं ज्ञातुं शक्यते न त्वतींद्रियमिति ॥२॥

ततः स्थितमेतदनुमानविरुद्धं कस्यचित्सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वमिति ।

अभावप्रमाणविरुद्धं च । सूक्ष्मादिपदार्थसाक्षात्कारिणः सदुपलंभकप्रमाणपंचकाविषयत्वात् । तथाहि— सूक्ष्मादिपदार्थपरिच्छेदकस्तावदस्मदादिभिर्वर्तमाने काले चक्षुरादीभिर्नोपलभ्यते । नाप्यनुमीयते हेत्वभावात् ।

तथाचोक्तं—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीं चक्षुरादिभिः ।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिंगं वा योऽनुमापयेत् ॥१॥

नाप्यागमेन नित्येनानित्येन वा गम्यते । तथाहि— न तावन्नित्येन गम्यते सर्वज्ञप्रतिपादकस्य नित्यस्यागमस्याभावात् । ननु हिरण्यगर्भं प्रस्तुत्य सर्वज्ञ इत्येवं श्रुतत्वाद्धिरण्यगर्भः सर्वज्ञ इत्येतन्नित्यादागमात्प्रतीयते इति । तदप्ययुक्तं न हि सर्वज्ञप्रस्तावे नित्य आगमस्तात्पर्येण सर्वज्ञप्रतिपादकः । प्रकृतानुपयोगात् । किंतु हिरण्यगर्भकर्मविधिपरे वाक्येऽन्यस्यासंभवात् सर्वज्ञत्वेन देवतास्तवनद्वा-

रेण कर्मार्थवादकत्वं। तात्पर्येण सर्वज्ञप्रतिपादकत्वे आगमतोऽर्थस्य प्रतिपादनादनित्यत्वं स्यात्। तत्रापि दोषं वक्ष्यामः। नापि प्रमाणांतरेणानवबोधितः सर्वज्ञो नित्येनागमेनानूद्यत इति युक्तं— नित्यत्वे चागमस्येष्टे न किंचित्सर्वज्ञकल्पनया। सर्वज्ञोऽपि हि धर्माधर्मप्रतिपत्तये मृग्यते न व्यसनितया। सा च धर्माधर्मप्रतिपत्तिः वेदादेवास्तु, यतो वेदस्य सर्वज्ञप्रतिपादनाद्वरं धर्माधर्मप्रतिपादकत्वं। अन्यथा वेदात्सर्वज्ञप्रतिपत्तिः ततो धर्माधर्मावबोध इति पारंपर्यपरिश्रमः स्यात्। तस्माद्वरं वेदाद्धर्माधर्मयोरेव साक्षात्प्रतिपत्तिरभ्युपगता न सर्वज्ञस्य। वेदात्सर्वज्ञप्रतिपत्तावपि धर्माधर्मप्रतिपत्तिमंतरेण पुरुषार्थसिद्धेरभावात्। धर्माधर्मप्रतिपत्तौ तु सर्वज्ञप्रतिपत्तिमंतरेणाप्यर्थसिद्धेर्भावात्। ततो न नित्यादागमात्सर्वज्ञसिद्धिर्नाप्यनित्यात्। तेनैव प्रणीतात्सर्वज्ञप्रतिपत्तौ तत्प्रणीतत्वेन आगमप्रामाण्यनिश्चयो निश्चितप्रामाण्याच्चागमात्सर्वज्ञो गम्यत इतीतरेतराश्रयत्वप्रसंगात्। नाप्यसर्वज्ञप्रणीतात्सर्वज्ञसिद्धिः तथाविधस्य प्रामाण्यानुपपत्तेः। अप्रमाणादपि ततः प्रतिपत्तौ स्ववाक्यादेव किं न तत्प्रतिपत्तिर्विशेषाभावात्। तथाचोक्तं—

न चागमविधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञबाधकः॥
न च मंत्रार्थवादानां तात्पर्यमवकल्प्यते॥ १॥
न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते॥

न चानुवदितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥ २ ॥
अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आगमात् ॥
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ ३ ॥
अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते ॥
प्रकल्प्यते कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः ॥ ४ ॥
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ॥
कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलांतरादृते ॥ ५ ॥
असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात् ॥
सर्वज्ञमवगच्छंतः स्ववाक्यात्किं न जानते ॥ ६ ॥

नाप्युपमानात्सर्वज्ञप्रतिपत्तिः । सर्वज्ञसदृशस्य जगति कस्यचिदनुपलब्धेः ॥ तथाचोक्तं—

सर्वज्ञसदृशं कंचिद्यदि पश्येम संप्रति ॥
उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो वयमिति ॥ १ ॥

नापि बहुजनपरिगृहीतधर्माधर्मान्यथानुपपत्त्या धर्माधर्मविषयज्ञानसिद्धेरर्थापत्त्या सर्वज्ञसिद्धिः । धर्माधर्मोपदेशस्यान्यथाप्युपपद्यमानत्वात् । तथाहि—

धर्माधर्मोपदेशो बुद्धादीनामवेदज्ञानां व्यामोहादपि भवति । वेदज्ञानां तु मन्वादीनां वेदादपीति । तथाचोक्तं—

उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माधर्मादिगोचरः ॥
अन्यथा नोपपद्येत सर्वज्ञो [illegible]

बुद्धादयो ह्यवेदज्ञास्तेषां वेदादसंभवः ॥
उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोहादेव केवलात् ॥ २ ॥
येऽपि मन्वादयः सिद्धाः प्राधान्येन त्रयीविदां ॥
त्रयीविदाश्रितग्रंथास्ते वेदप्रभवोक्तय इति ॥ ३ ॥

तदेवं सर्वज्ञविषयसदुपलंभकप्रमाणपंचकव्यावृत्तेरभावप्रमाणस्यैव प्रवृत्तिर्युक्ता ।

तथाचोक्तं—

प्रमाणपंचकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ॥
वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणतेति ॥ १ ॥

तस्मात्स्थितमेतदभावप्रमाणविरुद्धं कस्यचित्सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वमिति । तथोपमानविरुद्धं चैतत् । तथाचोक्तं—

नरान् दृष्ट्वा त्वसर्वज्ञान् सर्वानेवाधुनातनान् ।
तत्सादृश्योपमानेन शेषासार्वज्ञ्यसाधनं ॥ १ ॥ इति ॥

तस्मादनुमानाभावोपमानविरुद्धार्थविषयत्वादसंभवदर्थविषयेयं प्रतिज्ञेति स्थितमेतत् ॥

भवतु वा संभवदर्थविषया प्रतिज्ञा, तथापि तत्प्रतिपाद्योऽर्थोऽनर्थकः। पुरुषार्थानुपयोगात् काकदंतपरीक्षावत्। कामिन्याः षंढरूपवैरूप्यपरीक्षावद्वेति ॥ तथाचोक्तं—

समस्तावयवव्यक्तिविस्तरज्ञानसाधनं ।
काकदंतपरीक्षावत् क्रियमाणमनर्थकं ॥ १ ॥

यथा च चक्षुषा सर्वान् भावान् वेत्तीति निष्फलं ।
सर्व प्रत्यक्षदर्शित्वप्रतिज्ञाऽप्यफला तथा ॥ २ ॥
स्वधर्माधर्ममात्रज्ञसाधनप्रतिषेधयोः ।
तत्प्रणीतागमग्राह्यहेयत्वे हि प्रसिध्यतः ॥ ३ ॥
तत्र सर्वजगत्सूक्ष्मभेदज्ञत्वप्रसाधने ।
अस्थाने क्लिश्यते लोकः संरंभाद् ग्रंथवादयोः ॥ ४ ॥
एतच्च फलवज्ज्ञानं यावद्धर्मादिगोचरं ॥
न तु वृक्षादिभिर्ज्ञातैररस्ति किंचित्प्रयोजनं ॥ ५ ॥
क्रत्वर्थाः पुरुषार्थाश्च यावंतः खदिरादयः ॥
सर्ववृक्षज्ञता तावत्तावत्स्वेव समाप्यते ॥ ६ ॥
लताः सोमगुलूच्याद्याः काश्चिद्धर्मार्थहेतवः ॥
सिद्धास्तज्ज्ञानमात्रेण लतासर्वज्ञताऽपि नः ॥ ७ ॥
व्रीहिश्यामाकनीवारग्रामारण्यौषधीरपि ॥
ज्ञात्वा भवति सर्वज्ञो नानर्थकशतान्यपि ॥ ८ ॥
तथा कतिपयेष्वेव यज्ञांगेषु तृणेष्वपि ॥
दर्भादिषु च बुद्धेषु तृणसर्वज्ञतेष्यते ॥ ९ ॥
तृणौषधिलतावृक्षजातयोऽन्याः सहस्रशः ॥
विविक्ता नोपयुज्यंते तदज्ञानेन नाज्ञता ॥ १० ॥
यत्रापि चोपयुज्यंते व्यक्तयो जातिलक्षिताः ॥
जातिज्ञानोपसंहाराचत्रापि व्याप्तिरस्ति नः ॥ ११ ॥
अतश्च व्यक्तिभेदानामनभिज्ञोऽपि यो नरः ॥

स सर्वज्ञफले प्राप्ते सर्वज्ञत्वं न वांछति ॥ १२ ॥
जरायुजांडजोद्भेदसंस्वेदजचतुर्विधे ॥
भूतग्रामेऽल्पकज्ञोऽपि सर्वज्ञफलमश्नुते ॥ १३ ॥
पृथिव्यादिमहाभूतसंक्षेपज्ञश्च यो नरः ॥
स विस्तारानभिज्ञोऽपि सर्वज्ञान्न विशिष्यते ॥ १४ ॥
भूमेर्य एकदेशज्ञो भूमिकार्येषु वर्तते ॥
सप्तद्वीपमहीज्ञानं क्व नु तस्योपयुज्यते ॥ १५ ॥
तथाऽल्पेनैव तोयेन सिद्धतोयप्रयोजनः ॥
तोयांतराण्यविज्ञाय नान्यदोषेण युज्यते ॥ १६ ॥
वह्नेश्चानंतभेदस्य ज्ञातैरौपासनादिभिः ॥
पंचभिः कृतकार्यत्वादन्याज्ञानमदूषणं ॥ १७ ॥
शरीरांतर्गतस्यैव वायोः प्राणादिपंचके ॥
ज्ञाते शेषानभिज्ञत्वं नोपालंभाय जायते ॥ १८ ॥
व्योम्नश्च पृथुनः पारमज्ञात्वाऽप्येकदेशवित् ॥
नैव व्योमानभिज्ञत्वव्यपदेशेन दुष्यति ॥ १९ ॥

धर्मकीर्तिनाऽप्युक्तं—

ज्ञानवान्मृग्यते कश्चित्तदुक्तप्रतिपत्तये ॥
अज्ञोपदेशकरणे विप्रलंभनशंकिभिः ॥ १ ॥
तस्मादनुष्ठेयगतं ज्ञानमस्य विचार्यतां ॥
कीटसंख्यापरिज्ञानं तस्य नः क्वोपयुज्यते ॥ २ ॥
हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकः ॥

यः प्रमाणमसाविष्टो न तु सर्वस्य वेदकः ॥ ३ ॥
दूरं पश्यतु वा मा वा तत्त्वमिष्टं तु पश्यतु ॥
प्रमाणं दूरदर्शी चेदेते गृध्रानुपास्महे ॥ ४ ॥

ततः स्थितमेतत् सूक्ष्मादिपदार्थप्रत्यक्षत्वलक्षणः प्रतिज्ञार्थोऽनर्थक इति ॥ न चैतत्साध्यं साधनमर्हति अविवादास्पदत्वात् । विवादास्पदीभूते हि साध्ये साधनाय हेतुः प्रवर्तते । न च सूक्ष्माद्यर्थः कस्यचित्प्रत्यक्ष इत्येतत्साध्यं विवादगोचरापन्नं परैस्तस्यानिराकरणात् । यदेव हि धर्मे चोदनैव प्रमाणमित्यस्याः प्रतिज्ञायाः प्रतिद्वंद्वि तदेव तैर्निराक्रियते नान्यत् । न च सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वमेतस्याः प्रतिद्वंद्वि किं तु धर्मादिप्रत्यक्षत्वमतस्तदेव तैर्निषिध्यते । न सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वं । तथाचोक्तं—

धर्मज्ञत्वनिषेधस्तु केवलोऽत्रोपयुज्यते ॥
सर्वमन्यद्विजानँस्तु पुरुषः केन वार्यते ॥ १ ॥
सर्वप्रमातृसंबंधिप्रत्यक्षादिनिवारणात् ॥
केवलागमगम्यत्वं लप्स्यते पुण्यपापयोः ॥ २ ॥
एतावतैव मीमांसा पक्षे सिद्धेऽपि यैः पुनः ॥
सर्वज्ञवारणे यत्नस्तैः कृतं मृतमारणं ॥ ३ ॥
येऽपि च च्छिन्नमूलत्वात्सर्वज्ञत्वे हते सति ॥
सर्वज्ञान् पुरुषानाहुस्तैः कृतं तुषकंडनं ॥ ४ ॥

तस्माद्यद्विवादास्पदीभूतं न (?) तत्साध्यं। न तद्विवादास्पदमिति तत्र वर्तमानो हेतुरनर्थकः स्यात् इति ॥

किंच सूक्ष्मादयोऽर्थाः कस्यचित्प्रत्यक्षा इत्यत्र अर्हतोऽनर्हतो वा ज्ञातुरनिर्दिष्टत्वात् न्यूनः पक्षः स्यात्। अथानर्हतः सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वं साध्यते तदाऽर्हद्वाक्यप्रमाणत्वे तज्ज्ञानं क्वोपयुज्यते। अर्हतश्चेत्सोऽपि श्रुत्याऽर्थेन वा गम्यते। यतः पक्षो न न्यूनः स्यात्। अथ सूक्ष्मादयोऽर्हतः प्रत्यक्षा इति पक्षो विशिष्यते। तथापि नैष पक्षः पूर्वस्मादविशिष्टपक्षाद्भिद्यते हेतोः सकाशात्तथाविधस्य पक्षस्यासिद्धेः। न हि विशिष्टपक्षोपादानमात्रेणैव हेतुर्विशिष्टं पक्षं साधयति। पक्षांतरेऽप्यस्य हेतोरविशिष्टत्वात्। तथाहि सूक्ष्मादयो बुद्धस्य प्रत्यक्षा ग्रहोपरागाद्युपदेशकरणात् प्रमेयत्वात्सत्त्वादनुमेयत्वादिति पक्षश्चाप्रसिद्धविशेषणः स्यात्। तस्मादेते हेतवो न विशिष्टपक्षविषया नाप्यविशिष्टपक्षविषया इत्यकिंचित्कराः ॥

तथाचोक्तं भट्टकुमारिलेन—

> यत्सत्यं नाम लोकेषु प्रत्यक्षं तद्धि कस्यचित्।
> प्रमेयज्ञेयवस्तुत्वैर्दधिरूपरसादिवत् ॥ १ ॥
> ज्ञातर्यत्राप्यनिर्दिष्टे पक्षे न्यूनत्वमापतेत् ॥
> यदि बुद्धातिरिक्तोऽन्यः कश्चित्सर्वज्ञतां गतः ॥ २ ॥
> बुद्धवाक्यप्रमाणत्वे तज्ज्ञानं क्वोपयुज्यते ॥
> सर्वज्ञो यस्त्वभिप्रेतो न श्रुत्याऽर्थेन वाऽपि सः ॥३॥

विज्ञाय च ततः पक्षः साध्यत्वेनेप्सितो भवेत् ॥
यस्त्वीप्सिततमं पक्षं विशिंष्यात्तस्य संज्ञया ॥ ४ ॥
यावज्ज्ञेयं जगत्सर्वं प्रत्यक्षं सुगतस्य तत् ॥
तैरेव हेतुभिः पूर्वैर्घटकुड्यादिरूपवत् ॥ ५ ॥
तत्र नैवं विशिष्टोऽपि पूर्वस्मादेष भिद्यते ॥
तत्र हेतोरसामर्थ्यादन्यत्राप्यविशेषतः ॥ ६ ॥

न हि विशिष्टपक्षोपादानमात्रेणैव हेतोर्विशिष्टविषयत्वं लभ्यते ।

स्वशक्त्या हि यदा हेतुर्दृष्टांतानुग्रहेण वा ।
पक्षांतरेऽपि तुल्यः स्यात्तदा काऽस्य विशिष्टता ॥१॥
सत्प्रमेयत्वमित्येतद्यतोऽन्येष्वपि वर्तते ।
साधनं नियमाभावात्तेनाकिंचित्करं हि तदिति ॥ २ ॥

किंच यदि पुरुषसामान्यस्य सूक्ष्मादिविषयं प्रत्यक्षं प्रसाध्यते तदा कथं पुरुषविशेषस्याहेतोर्वचनं प्रमाणं स्यात् यतस्ततो निःश्रेयसार्थिनः प्रवर्तेरन् । अर्हतो हि सर्वज्ञत्वसिद्धौ तद्वचनं प्रमाणं स्यात् न यस्यकस्यचित्प्रमाणत्वसिद्धौ ।

तथाचोक्तं---

नरः कोऽप्यस्ति सर्वज्ञः स च सर्वज्ञ इत्यपि ॥
साधनं यत्प्रयुज्येत प्रतिज्ञामात्रमेव तत् ॥ १ ॥
सिसाधयिषितो योऽर्थः सोऽनया नाभिधीयते ॥
यस्तूच्यते न तत्सिद्धौ किंचिदस्ति प्रयोजनं ॥ २ ॥

यदीयागमसत्यत्वसिद्धौ सर्वज्ञतेष्यते ॥
न सा सर्वज्ञसामान्यसिद्धिमात्रेण लभ्यते ॥ ३ ॥
यावद्बुद्धो न सर्वज्ञस्तावत्तद्वचनं मृषा ॥
यत्र क्वचन सर्वज्ञे सिद्धे तत्सत्यता कुतः ॥ ४ ॥
अन्यास्मिन्न हि सर्वज्ञे वचसोऽन्यस्य सत्यता ॥
सामानाधिकरण्ये हि तयोरंगांगिता भवेत् ॥ ५ ॥

तदेवमनेकदोषदुष्टः पक्षो न साधनविषयतां भजते । हेतुश्चासिद्धो नष्टमुष्ट्याद्युपदेशस्यापौरुषेयस्य करणासंभवात् ॥ भवतु वा सिद्धस्तथाप्यपक्षधर्मः सूक्ष्माद्यर्थे धर्मिणि नष्टमुष्ट्याद्युपदेशकरणाभावादनैकांतिकश्च । यस्मात्सूक्ष्मादिपदार्थसाक्षात्करणमंतरेणाप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां लिंगादनाद्युपदेशपरंपरातो वा नष्टमुष्ट्यादिकमवगम्योपदेष्टुं शक्नोत्येवेति । विरुद्धश्चायं हेतुर्विसंवादकस्य नष्टमुष्ट्याद्युपदेशस्य सूक्ष्मादिपदार्थसाक्षात्करणमंतरेणैव भावात् । योऽपि क्वचिदस्याविसंवादः स काकतालीयन्यायेन न तदुपदेशबलेनेति मंतव्यं । न चेत्थंभूतोपदेशकरणकस्य सपक्षसंभवोऽस्ति । सर्वज्ञवीतरागस्यान्यथोपदेशकरणासंभवात् । ज्ञानवतो विसंवादे क्व पुनराश्वासं लभेमहीति सर्वज्ञप्रणीतादप्यागमाद्विप्रलंभाशंकया न प्रवृत्तिः स्यात् । तदेवं साधनमप्यसिद्धविरुद्धानैकांतिकत्वादिदोषदुष्टं नाभिमतसाध्यसाधनायालमित्यत्रोच्यते—

यत्तावदुक्तं — 'असंभवदर्थविषयेयं प्रतिज्ञा प्रमाणांतर-

विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वादिति । तत्रापि यत्तावद्बाधकमनुमा-
नमुपन्यस्तं देशांतरे कालांतरे च रूपादयोऽत्रत्येदानींतन-
रूपादिग्राहकसजातीयप्रमाणग्राह्या रूपादिशब्दवाच्यत्वादत्र-
त्येदानींतनरूपादिवदिति । अत्र किं यथाविधानां पुरुषाणां
यज्जातीयैः प्रमाणैर्यज्जातीयार्थदर्शनमिदानीमत्र च दृष्टं
देशांतरे कालांतरे तथाविधानामेव तज्जातीयैः प्रमाणैस्त-
ज्जातीयार्थदर्शनं प्रसाध्यते अन्यथाभूतानां वा? यदि
तथाभूतानां तदा सिद्धसाधनं अस्माभिरपि तथाऽभ्युपग-
मात् । अन्यादृशानां हि तथादर्शनं नेष्यते न तथा-
भूतानां । अथान्यथाभूतानां तथादर्शनं प्रसाध्यते तर्ह्यनै-
कांतिको हेतुः स्यात् । अस्मद्विजातीयानां नक्तंचराणाम-
त्रत्येदानींतनास्मदादिरूपग्राहकविजातीयालोकप्रमाणग्राह्येऽपि
रूपशब्दवाच्यत्वदर्शनात् । तथाविधानामेव तथादर्शनं
प्रसाध्यते । न च सिद्धसाधनं इत्थंभूतत्वात्सर्वपुरुषाणां ।
न ह्यन्यादृशाः संति पुरुषाः । ततः कथं तथाविधानां
तथादर्शनसाधने सिद्धसाधनं स्यादिति चेन्नान्यादृशाः संति
पुरुषा इत्येतदसर्वज्ञः कथं जानीयात् । देशांतरे कालां-
तरे च पुरुषा अत्रत्येदानींतनपुरुषसदृशास्तद्विलक्षणा वा
न भवंति पुरुषशब्दवाच्यत्वादत्रत्येदानींतनपुरुषवदित्येतस्मा-
दनुमानादेतदसर्वज्ञेनाप्यवसीयत इति चेद्देशांतरकालांतरभा-
विनां पुरुषाणामत्रत्येदानींतनपुरुषेभ्यो मनागपि प्रज्ञामेधा-

दिभिर्विशेषो नास्तीति साध्येतातीद्रियार्थद्रष्टृत्वेन वा? प्रथमपक्षेऽनैकांतिको हेतुः। प्रज्ञामेधादिभिः स्तोकस्तोकांतरत्वेन सातिशयेषु कात्यायनादिषु साकल्येन वेदार्थतत्त्वपरिज्ञानातिशयवत्सु जैमिन्यादिषु च पुरुषशब्दवाच्यत्वस्य भावात्। अथातीद्रियार्थद्रष्टृत्वेन विशेषाभावः साध्यते तर्ह्यनेनैवानुमानेन सर्वज्ञाभावसिद्धिः। सिद्धोपस्थायि प्रकृतमनुमानमपार्थकमिति न किंचित्तेनोपन्यस्तेन। भवत्वस्मादेवानुमानात्सर्वज्ञाभावसिद्धिः का नो हानिः। सर्वथा सर्वज्ञाभावसिध्द्या नः प्रयोजनमिति चेत्सर्वज्ञाभावे साध्ये प्रकृतस्य हेतोरसामर्थ्याद्धेत्वंतरोपादाने हेत्वंतरं नाम निग्रहस्थानं स्यात्। यदा प्रागयमेव हेतुपारुदीयते तदाऽयमदोष इति चेत्तत्रापि यथाभूतानामिदानीमत्र चानिंद्रियज्ञानवैकल्यं दृष्टं तथाभूतानामेव देशांतरकालांतरभाविनां पुरुषशब्दवाच्यत्वादतींद्रियज्ञानवैकल्यं साध्येतान्यथाभूतानां वा? यदि तथाभूतानां तदा सिद्धसाध्यता। अन्यथाभूतानां चेदप्रयोजको हेतुः स्यात्। यथाविधानां हि पुरुषशब्दवाच्यानामतींद्रियज्ञानवैकल्यं दृष्टं तथाविधानामेव पुरुषशब्दवाच्यत्वमतींद्रियज्ञानवैकल्यस्य प्रयोजकं युक्तं नान्यथाभूतानां। यथा यादृग्भूतानां प्रासादादीनां संनिवेशादि बुद्धिमत्कारणपूर्वकं दृष्टं तादृग्भूतानामेव जीर्णप्रासादादीनां सन्निवेशादि बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वस्य प्रयोजकं नान्यादृग्भूतानां

पर्वतादीनां । यद्यन्यथाभूतानामपि पुरुषशब्दवाच्यत्वमतींद्रियज्ञानवैकल्यस्य प्रयोजकं स्यात्तदाऽन्यादृग्भूतानां पर्वतादीनामपि सन्निवेशादि बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वस्य प्रयोजकं स्यात् । तथाच सर्वस्य ज्ञातुः सिद्धेर्वेदस्याकर्तृकत्वं सर्वज्ञाभावश्च न स्यात् । यथाविधानां पुरुषशब्दवाच्यानामतींद्रियज्ञानवैकल्यं दृष्टं तथाविधानामेवातींद्रियज्ञानवैकल्यं साध्यते । न च सिद्धसाधनं सर्वपुरुषाणामीदृशत्वात् । न ह्यन्यादृशा संति पुरुषाः । येषामतींद्रियज्ञानस्याप्रतिषेधात्सिद्धसाध्यता स्यादिति चेदीदृशा एव सर्वपुरुषा नान्यादृशाः संतीत्येतत्कुतोऽवसितमन्यतोऽनुमानादिति चेत्तर्हि तत एवातींद्रियज्ञानवतः पुरुषविशेषस्याभावसिद्धिः । तदेवोच्यतां किमनेन सिद्धोपस्थायिना । अत एवानुमानात्सर्वपुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिश्चेत्तर्हि सर्वपुरुषाणामीदृशत्वसिद्धौ अतोऽनुमानात्तथाविधानां सर्वेषामतींद्रियज्ञानप्रतिषेधसिद्धिः; तत्सिद्धौ च सर्वपुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिरितीतरेतराश्रयदोषः स्याच्चक्रकप्रसंगश्च । तथाहि— देशांतरकालांतरभाविनां पुरुषाणामत्रत्येदानींतनपुरुषेभ्यो मनागपि प्रज्ञामेधादिभिर्विशेषो नास्तीति ईदृशत्वं प्रसाध्यते अतींद्रियार्थद्रष्टृत्वेन वा ? प्रथमपक्षेऽनैकांतिको हेतुः । प्रज्ञामेधादिभिः स्तोकस्तोकांतरत्वेन सातिशयेषु कात्यायनादिषु साकल्येन वेदार्थतत्त्वपरिज्ञानवत्सु जैमिन्यादिषु च पुरुषशब्दवाच्यत्वस्याभावात् । अथातींद्रियार्थद्रष्टृत्वेन विशे-

षाभावादीदृशत्वं साध्यते तत्रापि यथाभूतानामिदानीमत्र चातींद्रियज्ञानवैकल्यं दृष्टं तथाभूतानामेव देशांतरकालांतरभाविनां पुरुषशब्दवाच्यत्वादतींद्रियज्ञानवैकल्यं साध्येत अन्यथाभूतानां वेत्यादि तदेव पुनरावर्तेत इति चक्रकमापद्यते । तदेवं सर्वपुरुषाणामीदृशत्वस्यानीदृशत्वाभावस्य चासिद्धेरीदृग्भूतानामतींद्रियज्ञानवैकल्यसाधने सिद्धसाधनमिति स्थितं ॥

यदप्यन्यदुक्तं—देशांतरे कालांतरे च प्रत्यक्षमत्रत्येदानींतनप्रत्यक्षग्राह्यसजातीयार्थग्राहकं तद्विजातीयार्थग्राहकं वा न भवति प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वादत्रत्येदानींतनप्रत्यक्षवदित्यत्रापि यथाभूतमिंद्रियादिजनितं प्रत्यक्षमिदानीमत्र च यथाभूतस्याविप्रकृष्टस्य ग्राहकं तद्विजातीयस्य विप्रकृष्टस्याग्राहकं वा दृष्टं देशांतरे कालांतरेऽपि तथाभूतमेव प्रत्यक्षं तथाभूतस्यार्थस्य ग्राहकं अन्यथाभूतस्याग्राहकं वेति साध्येत अन्यथाभूतं वा? यदि तथाभूतं तदा सिद्धसाध्यता । अन्यथाभूतं चेत्तथा साध्यते तर्ह्यप्रयोजको हेतुः स्यात् । यथाभूतं हि प्रत्यक्षं यथाभूतस्यार्थस्य ग्राहकमग्राहकं वा दृष्टं तथाभूतस्यैव प्रत्यक्षस्य तथाविधस्यार्थस्याग्राहकत्वे वा साध्ये प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वस्य प्रयोजकत्वं युक्तं नान्यथाभूतस्य । अत्र संनिवेशादिदृष्टांतः पूर्ववद्द्रष्टव्यः । तथाभूतमेव प्रत्यक्षं तथा प्रसाध्यते । नच सिद्धसाधनं सर्वप्रत्यक्षाणामीदृशत्वादिति चेत् ईदृश प्रत्यक्षं नान्यादृशमस्तीत्यर्वाग्भागदर्शिना कुतः

अवसीयते । देशांतरकालांतरभाविप्रत्यक्षमत्रत्येदानींतनप्रत्यक्षसमानं सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वादत्रत्येदानींतनप्रत्यक्षवदित्यतोऽनुमानादवसीयत इति चेत्स्तोकस्तोकांतरत्वेन मनागपि विशेषो नास्तीति, सर्वप्रत्यक्षाणामीदृशत्वं साध्येतातींद्रियार्थविषयत्वेन वा विशेषो नास्तीति? प्रथमपक्षेऽनैकांतिको हेतुः गृध्रवराहपिपीलिकादीनां प्रत्यक्षेषु स्तोकस्तोकांतरत्वेनास्मदादिप्रत्यक्षविलक्षणेषु सदिंद्रियसम्प्रयोगजत्वस्य भावात् । अथातींद्रियार्थविषयत्वेन विशेषाभावात्सर्वप्रत्यक्षाणामीदृशत्वं प्रसाध्यते तर्हि तत एव सर्वप्रत्यक्षाणामतींद्रियार्थविषयत्वाभावसिद्धिस्तवास्तु । तथाभ्युपगमे हेत्वंतरं नाम निग्रहस्थानं न स्यात् । यदाऽयमेव हेतुः प्रागुपादीयते तदाऽयमदोष इति चेन्न । तदाऽप्ययमस्मान् प्रत्यसिद्धो हेतुः । विवादास्पदीभूतस्य प्रत्यक्षस्यास्माभिः सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वानभ्युपगमात् । विवादास्पदीभूतं प्रत्यक्षं सदिंद्रियसंप्रयोगजं प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वादस्मदादिप्रत्यक्षवदित्यतोऽनुमानात्तस्य सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वं साध्यते इति चेदत्रापि यथाभूतस्य प्रत्यक्षशब्दवाच्यस्य सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वं दृष्टं तथाभूतस्यैव सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वं प्रसाध्यतेऽन्यथाभूतस्य वा? यदि तथाभूतस्य तदा सिद्धसाध्यता । अन्यथाभूतस्य चेत्तर्हि संनिवेशादिवदप्रयोजको हेतुः स्यात् । तथाभूतस्यैव तत्साध्यते, न च सिद्धसाधनं, सर्वप्रत्यक्षाणामीदृशत्वादिति चेत्कुतस्तदीदृशत्वसिद्धिः । सदिंद्रिय-

संप्रयोगजत्वादिति चेत् नन्वयमस्मान् प्रत्यसिद्धो हेतुः। प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वात्तत्सिद्धिश्चेच्चक्रकप्रसंग.। किंच सर्वप्रत्यक्षाणामीदृशत्वसिद्धौ विवादास्पदीभूतस्य प्रत्यक्षस्य सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वसिद्धिः तत्सिद्धौ च सर्वप्रत्यक्षाणामीदृशत्वासिद्धिः। यथाभूतं प्रत्यक्षं यथाभूतस्यार्थस्य ग्राहकं दृष्टं तथाभूतमेव तथाभूतस्यार्थस्य ग्राहकमिति साधने सिद्धसाधनमिति स्थितं। एतेन सत्संप्रयोगे पुरुषस्येंद्रियाणां यद्बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षं अनिमित्तं विद्यमानोपलंभनत्वादित्येतन्निरस्तं। उक्तेन प्रकारेण सदिंद्रियसंप्रयोगजत्वस्यासिद्धेर्विद्यमानोपलंभनत्वस्याप्यनिश्चयात्। न ह्येवं संदिग्धासिद्धं विद्यमानोपलंभनत्वं धर्मं प्रति प्रत्यक्षस्यानिमित्तत्वं साधयतीति। तथा यदप्युक्तं—

> यत्राप्यतिशयो दृष्टः स. स्वार्थानतिलंघनात्॥
> दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तित इति॥ १॥

एतदपि कुतः प्रमाणादवगतं। विवादास्पदीभूताश्चक्षुरादयो न विषयांतरे वर्तंते चक्षुरादिशब्दवाच्यत्वादस्मदादिचक्षुरादिवत्। तथा विवादास्पदीभूता रूपादयो नेंद्रियांतरग्राह्या रूपादिशब्दवाच्यत्वात्परिदृष्टरूपादिवत् इत्येताभ्यामनुमानाभ्यामेतदवगम्यत इति चेदत्रापि किं यथाभूताश्चक्षुरादयो न विषयांतरे प्रवर्तंते तथाभूता एव तथा साध्यंते अन्यथाभूता वेति। यदि तथाभूतास्तदा सिद्धसाध्यता। अन्यथाभूताश्चे-

स्पूर्ववदप्रयोजको हेतुः स्यात् । तथाभूता एव चक्षुरादयस्तथा साध्यंते । न च सिद्धसाधनं सर्वचक्षुरादीनामीदृशत्वादिति चेत्कुतस्तदीदृशत्वसिद्धिः । किमनुमानांतरादुतास्मादेवानुमानात् । यद्यनुमानांतरात्तत्रापि यदि मनागपि विशेषो नास्तीति चक्षुरादीनामीदृशत्वं साध्यते तदाऽनुमानविरुद्धः पक्षैकदेशः गृध्रवराहपिपीलिकादीनां चक्षुःश्रोत्रघ्राणादिषु दूरादिस्वभावरूपशब्दगंधादिग्रहणलक्षणातिशयस्य कार्यतः प्रतिपत्तेः । विषयांतरग्रहणलक्षणातिशयाभावात्तदीदृशत्वप्रसाधनेऽनुमानांतरादेव विषयांतरप्रवृत्त्यभावसिद्धेस्तदेवास्तु किं प्रकृतेनानुमानेन । तथाऽभ्युपगमे हेत्वंतरं नाम निग्रहस्थानं स्यात् । अस्मादेवानुमानात्तदीदृशत्वसिद्धिश्चेदत्रापि यदि मनागपि विशेषो नास्तीति तत्साध्यते तदा पूर्ववदनुमानविरुद्धः पक्षैकदेशः । विषयांतरग्रहणलक्षणातिशयस्याभावात्तदीदृशत्वसाधने विवादास्पदीभूतानां चक्षुरादीनां विषयांतरप्रवृत्त्यभावसिद्धौ सर्वचक्षुरादीनामीदृशत्वसिद्धिस्तत्सिद्धौ च विवादास्पदीभूतानां चक्षुरादीनां विषयांतरे ग्राह्याप्रवृत्त्यभावसिद्धिरिति इतरेतराश्रयः स्यात् । एवं च सर्वचक्षुरादीनामीदृशत्वासिद्धेर्यथाभूतानां चक्षुरादीनां विषयांतरे प्रवृत्त्यभावो दृष्टस्तथाभूतानामेव तथा साधने सिद्धसाधनमिति स्थितं ॥

द्वितीयेऽपि साधने किं यथाभूतानां पुरुषाणां इंद्रियांतरेणाग्राह्या रूपादयो दृष्टा देशांतरकालांतरभाविनामपि

तथाभूतानामेव पुरुषाणामिंद्रियांतरेण ग्राह्या रूपादयो न भवंतीति प्रसाध्यते अथान्यथाभूतानामित्यादिदूषणं नातिवर्तते। सर्वज्ञज्ञानस्य इंद्रियजत्वमभ्युपगम्यैतदुक्तं। यावता नैवास्माभिरक्षजत्वं सर्वज्ञज्ञानस्येष्यते। यद्येवं तर्हि प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वं न स्यात्। प्रतिगतमाश्रितमक्षं प्रत्यक्षमिति व्युत्पत्तेरिति चेत्स्यादेतद्यदि शब्दस्य व्युत्पत्तिनिमित्तमेव प्रवृत्तिनिमित्तं स्यात्। यावता शब्दस्य व्युत्पत्तिनिमित्तादन्यदेव प्रवृत्तिनिमित्तं। यथा गच्छतीति गौरिति गमनक्रियामाश्रित्य व्युत्पादितस्य गोशब्दस्य गमनक्रियोपलक्षितं तदेकार्थसमवेतं गोत्वमन्यदेव गमनात् प्रवृत्तिनिमित्तं। अन्यथा गच्छंत्येव गौर्गौरित्युच्येत नान्या व्युत्पत्तिनिमित्ताभावात्। एवमक्षजत्वमाश्रित्य व्युत्पादितस्य प्रत्यक्षशब्दस्याक्षजत्वोपलक्षितं तदेकार्थसमवेतं वैशद्यं प्रवृत्तिनिमित्तं भवेत्। एवं यद्यक्षजत्वमंतरेणापि क्वचिद्वैशद्यमुपलब्धं स्यात् यथा गमनक्रियामंतरेणापि गोत्वं यावताऽनक्षजे ज्ञाने नैव कदाचिद्वैशद्यमुपलभ्यते यत्प्रत्यक्षशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं स्यादिति चेन्ननूपलभ्यते एवानक्षजेऽपि ज्ञाने वैशद्यं। यथा कामशोकभयोन्मादाद्युपप्लुतानां ज्ञाने।

कामशोकभयोन्मादचौरस्वप्नाद्युपप्लुताः।
अभूतानपि पश्यंति पुरतोऽवस्थितानिव ॥ १ ॥

तथान्यदप्युक्तं—

पिहिते कारागारे तमसि च सूचीमुखाग्रनिर्भेद्ये ॥
मयि च निमीलितनयने तथापि कांताननं व्यक्तं ॥१॥

तथा स्वप्नज्ञाने चानक्षजेऽपि वैशद्यमुपलभ्यते । तथाहि वक्तारो दृश्यंते स्वप्ने मयैतत् दृष्टमिति । तदेवं भावनाजे ज्ञाने स्वप्नज्ञाने वाऽनक्षजेऽपि वैशद्यस्य प्रत्यक्षव्यपदेशस्य च दर्शनात् सर्वज्ञज्ञानेऽप्यनक्षजे सकलदोषावरणविश्लेषाविर्भूत-वैशद्यं प्रत्यक्षव्यपदेशश्च संभाव्यत इति न कश्चिद्व्याघातः ॥

यदप्युक्तं—

येऽपि सातिशया दृष्टाः [illegible]
स्तोकस्तोकांतरत्वेन नत्वतींद्रियदर्शनादिति ॥ १ ॥

अत्रापि यथाभूतानां पुरुषाणामिदानीमत्र च प्रज्ञामेधा-दिभिः स्तोकस्तोकांतरत्वेनैवातिशयो दृष्टो नत्वतींद्रियदर्श-नात् । तथाभूतानामेव देशांतरे कालांतरे च तथाभूतातिशयः कल्पयितुं युक्तो नान्यथाभूतानां । यथाऽस्मत्सदृशानामेव दशहस्तादूर्ध्वमुत्प्लुत्य गच्छतां अनुपलंभाददृश्यानामप्यस्म-त्सदृशानामेव दशहस्तादूर्ध्वमुत्प्लुत्य गमनं नास्तीति ज्ञायते । नान्यथाभूतानां काकगृध्रभेरुंडतार्क्ष्यशुकपिकप्रकाराणां । तद-नेन लंघनदृष्टांतः स्वमतविघातीत्युक्तं भवति । अस्मद्विलक्षणेषु गृध्रादिषु हि दशहस्तादूर्ध्वमुत्प्लवनसामर्थ्यस्य दर्शनात् तस्म-

तिषेधो न युक्त इति। युक्तं नैवमतींद्रियज्ञानं कदाचिदस्म-
द्विलक्षणेषु दृष्टमस्मद्विलक्षणानामेव पुरुषाणामभावात्। सर्वे-
षामेवास्मत्सदृशत्वात् अस्मादृशेषु दृष्टोऽतिशयो युक्तः सर्वत्र
कल्पयितुं अदृष्टोऽपि निषेध्दुमिति चेदस्मद्विलक्षणा न संति
पुरुषा इत्येतदसर्वज्ञः कथं जानीयात्। अस्मद्विलक्षणाः
संतीत्येतदपि कथमसर्वज्ञो जानातीति चेत्तर्हि संशयोऽस्तु।
स च बाधकोपन्यासात्प्रागप्यस्तीति व्यर्थस्तदुपन्यासः। तस्मा-
न्नानुमानविरुध्देयं प्रतिज्ञा। नाप्यभावप्रमाणविरुध्दा। अभा-
वप्रमाणं हि नाम प्रत्यक्षादिप्रमाणपंचकस्यानुत्पत्तिः। साऽपि
निषेध्यविषयप्रत्यक्षादिप्रमाणपंचकरूपत्वेनात्मनः परिणामो वा
निषेध्यादन्यवस्तुनि विज्ञानं वा स्यात्। तथाचोक्तं—

प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते॥
साऽऽत्मनो परिणामो वा विज्ञानं वाऽऽन्यवस्तुनि १

तत्र न तावत्सर्वज्ञविषयप्रमाणपंचकरूपत्वेनापरिणतात्म-
नोऽभावाभिधानात्सर्वज्ञाभावसिद्धिः तस्य प्रत्यात्मनियतचेतो-
वृत्तिविशेषैरनैकांतिकत्वात्। तदन्यज्ञानलक्षणाभावप्रमाणा-
त्तदभावसिद्धिश्चेदत्रापि यदि तावत्सर्वज्ञत्वादन्यत्किंचिज्ज्ञत्वं।
तदपि कालत्रयत्रिलोकस्थपुरुषाधारं तद्विषयज्ञानं यदि तद-
न्यज्ञानं तर्हि तत्कथमसर्वज्ञस्य स्यात्। न हि काल-
त्रयत्रिलोकस्थपुरुषाणामसाक्षात्करणे तदाधारं किंचिज्ज्ञत्वं
प्रत्येतुं शक्यते। अथ कस्यचिदेव पुरुषस्य संबंधि किंचि-

ज्ञत्वं तद्विषयज्ञानं तदन्यज्ञानं, तदपि कस्यचिदेवासर्वज्ञत्वं प्रसाधयतीति सिद्धसाध्यता स्यात्। सर्वज्ञसद्भावादन्यस्तद-भावस्तद्विषयज्ञानं तदन्यज्ञानमिति चेत्तेनापि यदि सर्वदा सर्वत्र सर्वज्ञाभावः प्रतीयते स एव दोषः, तथाजानन्नेव सर्वदर्शी स्यादिति। ननु साक्षात्सर्वमर्थं पश्यन् सर्वदर्शी स्यात्। नास्तीति ज्ञानं तु मानसमक्षानपेक्षमेवोपजायते। तथाचोक्तं—

गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनं॥
मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षयेति॥ १॥

ततः कथं मानसेन नास्तिताज्ञानेन ज्ञानवान् सर्वदर्शी स्यात् इति चेन्न। अस्तिताज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि सर्वज्ञ-नास्तिताधिकरणयोः सर्वदेशकालयोः प्रत्यक्षत्वमभ्युपगंतव्यं गृहीत्वा वस्तुसद्भावमिति वचनात्। अन्यथाऽप्रत्यक्षप्रदे-शाधिकरणघटाद्यभावप्रतिपत्तेरिवाप्रत्यक्षकालत्रयत्रिलोकस्थसर्व-ज्ञाभावप्रतिपत्तेरप्यभावः स्यात्। तस्मादनवयवेन देश-कालौ साक्षात्कुर्वंस्तत्र स्थितान् पदार्थानपि साक्षात्करो-तीति कथं न सर्वदर्शी स्यात्। क्वचित्कदाचित्सर्वज्ञा-भावसाधने साधनवैफल्यं। किं च निषेध्यनास्तित्वाधारं वस्तु गृहीत्वा निषेध्यमन्यत्रान्यदा गृहीतं स्मृत्वा च निषेध्याभावमवैति। न च सर्वज्ञो निषेध्यः क्वचित्कदा-चित्केनाचित् दृष्टो येन तं स्मृत्वा नास्तित्वेन जानीयात्।

ततो नाप्यभावविरुद्धेयं प्रतिज्ञा। नाप्युपमानविरुद्धा। तथाहि— सर्वानेवाधुनातनान् पुरुषानसर्वज्ञानुपलभ्य तत्सादृश्योपमानेन शेषाणामप्यसर्वज्ञत्वसाधनं। एवं स्याद्यद्युपमानभूताः सर्व एवेदानींतनाः पुरुषाः शेषाश्चोपमेयाः सर्वे केनचिदसर्वज्ञत्वेन दृष्टा भवेयुः। यावता इदानींतनाः केचिदेव दृष्टा न सर्वे दृष्टाः। दृष्टा अपि नासर्वज्ञत्वेन दृष्टाः चेतोधर्मत्वेनातींद्रियस्यासर्वज्ञत्वस्य दृष्टेष्वपि नरेषु द्रष्टुमशक्यत्वात्। नापि शेषाः केनचित् दृष्टाः। तस्मादुपमानोपमेययोरप्रत्यक्षत्वान्नोपमानमप्यत्र संभवति। न हि उपमानोपमेययोर्गोगवययोरप्रत्यक्षत्वे गौरिव गवयो गवयवद्वा गौरित्युपमानं कदाचित्प्रवर्तमानं दृष्टमिष्टं वा। अथोपमानोपमेयभूतानामिदानींतनानामन्येषां च सर्वेषामसर्वज्ञत्वे न प्रत्यक्षत्वमिष्यते। तत्रापि नोपमानेन किंचित्प्रत्यक्षेणैव शेषाणामसर्वज्ञत्वसिद्धेः। इदानींतनानन्याँश्च सर्वानसर्वज्ञत्वेन साक्षात्कुर्वन् स एव सर्वदर्शी स्यात्। तदेवमनुमानाभावोपमानप्रमाणानामबाधकत्वान्नासंभवदर्थविषयेयं प्रतिज्ञेति॥

यदप्युक्तं प्रतिज्ञार्थोऽनर्थकः पुरुषार्थानुपयोगित्वात् काकदंतपरीक्षावत् कामिन्याः षंढरूपवैरूप्यपरीक्षावद्वेति॥ तथा यदप्यन्यदुक्तं— न चैतत्साध्यं साधनमर्हत्यविवादास्पदत्वादिति॥ तदेतदुभयमप्ययुक्तं। तथाहि— सूक्ष्मांतरितदूरार्थ-

साक्षात्करणसाधने सूक्ष्मादीनामन्यतमस्य धर्माधर्मादेरपि पुरु-षार्थोपयोगिनः साक्षात्करणस्य सिद्धे धर्मे चोदनैव प्रमाणमिति प्रतिज्ञा विशीर्येत । ततो धर्मे चोदनैव प्रमाणमिति ब्रुवन् सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वमपि निषेध्दुमर्हति । ततः कथं प्रतिज्ञार्थः पुरुषार्थानुपयोगी विवादास्पदं वा न स्यात् यतः प्रतिज्ञार्थो ऽनर्थकस्तत्र च प्रवर्तमानो हेतुः सार्थको न स्यात् । अथ कस्मात्सूक्ष्मादिपदार्थसाक्षात्करणसाधनद्वारेण धर्मादिप्रत्यक्षत्वं प्रसाध्यते । न पुनः साक्षाद्धर्माधर्मयोरेव प्रत्यक्षत्वं प्रसाध्यत इति चेत् दोषावरणविवेकादाविर्भूतस्यात्मनो ज्ञानस्य स्वरूप-ज्ञापनद्वारेण महाविषयत्वख्यापनान्माहात्म्यख्यापनार्थं धर्मा-धर्मवत्सूक्ष्मादयोऽपि सर्वे भावाः पुरुषार्थोपयोगिन इति ज्ञाप-नार्थं च सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वज्ञापनद्वारेण धर्मादिप्रत्यक्षत्व प्रसा-ध्यते यथा धर्मे चोदना प्रमाणमेवेत्यस्यावधारणस्य समर्थन-परेण । चोदना हि भूतं भवंतं भविष्यंतं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलमित्यनेन भाष्येण शब्दमात्रस्य भूतादौ सामर्थ्यप्रदर्शनद्वारेण शब्दविशेषस्य विधायकस्य भूतादीनामन्यतरास्मिन् धर्माधर्मादौ सामर्थ्यं प्रदर्श्येत इति । तथाहि धर्मे चोदनैव प्रमाणं प्रमाणमेव चोदनेत्यवधारणद्वयं चोदनालक्षणो धर्म इत्यस्मिन् सूत्रे प्रतिज्ञातं तदसंबद्धं । कथं? संभवदर्थविषयं हि कार्यवाक्यं प्रतिज्ञोच्यते । न चायमर्थः संभवति यत्प्रत्यक्षादिग्रहणार्हे

च न भवति वाक्यं च तत्र प्रमाणमिति। कस्माददर्शनात्। यथा रूपे श्रोत्रमेव प्रमाणं प्रमाणमेव चेति (?)। तदेवमसंबद्धतामाशंक्य भाष्यकारेण प्रतिज्ञाद्वयसमर्थनार्थं भाष्यद्वयमुपन्यस्तं। तत्र चोदनैव प्रमाणमित्यर्थस्य समर्थनार्थं नान्यत्किंचनेंद्रियमित्युक्तं। चोदना प्रमाणमेवेत्यस्य समर्थनार्थं चोदना हीत्याद्युक्तं। अनेन च भाष्येणैतदभिधीयते भूतादिष्वपि संभवति शब्दस्य प्रामाण्यं तद्विषयज्ञानजनकत्वेन। धर्मश्च भूतादीनामेवान्यतमः स्यात्। तस्माद्धर्मे चोदना प्रमाणमेवेत्ययं प्रतिज्ञार्थः संभवतीति। चोदनाशब्देन चात्र शब्दमात्रमभिधीयते न विधायकं वाक्यं। भूतादौ विधायकस्य वाक्यस्यावगमहेतुत्वानुपपत्तेः। यद्यपि विधायकस्य वाक्यस्य प्रामाण्यमत्र प्रतिज्ञातं तथापि यावच्छब्दमात्रस्येंद्रियादिव्युदासेन भूतादौ सामर्थ्यं न समर्थ्यते तावच्छब्दविशेषस्य भूतादौ सामर्थ्यस्यावसर एव नास्तीति शब्दमात्रस्य भूतादौ सामर्थ्यं दर्शितं। तस्मिंश्च दर्शिते शब्दविशेषस्य विधायकस्य धर्मे सामर्थ्यं सूत्रोक्तं समर्थितं भवति॥ भवतु नामैवं तथापि शब्दमात्रस्यानागते सामर्थ्यं दर्शनीयं धर्मे चोदनाप्रामाण्यसाधने तस्यैवोपयोगात्। भूतवर्तमानादौ सामर्थ्यं दर्शनीयमनुपयोगादिति चेत् एवमेवैतत्। तथापि शब्दमात्रस्य महाविषयत्वख्यापनेन माहात्म्यख्यापनाच्छब्दविशेषस्यापि माहात्म्यं ख्यापितं भवतीति शब्दमा-

त्रस्य भूतवर्तमानादौ सामर्थ्यं दर्शितं। इत्येवं ब्रुवता यथा शब्दमात्रस्य सामर्थ्यप्रदर्शनद्वारेण शब्दविशेषस्य सामर्थ्यं प्रदर्श्यते यथा च भूतादौ सामर्थ्यसमर्थनद्वारेण भूतादीनामन्यतमस्मिन् धर्मादौ सामर्थ्यं समर्थ्यते तथा सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वप्रसाधनद्वारेण सूक्ष्मादीनामन्यतमस्य धर्मादेः प्रत्यक्षत्वं प्रसाध्यते। यथा च शब्दमात्रस्य महाविषयत्वख्यापनेन माहात्म्यख्यापनार्थं भूतादौ सामर्थ्यं ख्याप्यते तथा दोषावरणाभावादाविर्भूतस्यात्मनो ज्ञानस्य महाविषयत्वज्ञापनेन माहात्म्यज्ञापनार्थं सूक्ष्माद्यर्थसाक्षात्करणं परैः प्रसाध्यमानं किं नानुमन्यत इति। तथा धर्माधर्ममुक्तिमार्गादिभिः सूक्ष्मांतरितदूरार्थानां पुरुषार्थोपयोगित्वेन समानत्वज्ञापनार्थं च सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वसाधनद्वारेण धर्माधर्मादिप्रत्यक्षत्वं प्रसाध्यत इति। तथाहि— सर्वं वस्तु चित्साध्यांगत्वेन (चिरित्साध्यंगत्वेनेति मूलपाठः) पुरुषार्थोपयोगि। तथाचोक्तं चरकप्रतिसंस्कृतेऽग्निवेशितंत्रे— नानौषधभूतं जगति किंचिद्द्रव्यमुपलभ्यत इति। तस्य च समस्तौषधभूतस्य द्रव्यस्य देशकालावस्थावयवसंस्कारद्रव्यांतरसंबंधभेदेन रसवीर्यविपाकानां भेदात्कार्यभेदोपलब्धिस्तथैव साक्षात्करणमभ्युपगंतव्यं। तथाच न सर्वप्रत्यक्षदर्शित्वप्रतिज्ञा निष्फला। नापि समस्तावयवव्यक्तिविस्तारज्ञानसाधनमपार्थकं। अतो यथा धर्माधर्मज्ञत्वसाधनप्रतिषेधाभ्यां तत्प्रणीतागमग्राह्यहेयत्वे भवतस्तथैवेतरसर्व-

पदार्थज्ञत्वसाधनप्रतिषेधाभ्यामपीति । ततः सर्वजगत्सूक्ष्मभेदज्ञत्वं प्रसाधयल्लोकः स्थाने एव क्लिश्यते ॥

यच्चोक्तं—

एतच्च फलवज्ज्ञानं यावद्धर्मादिगोचरं ॥
न तु वृक्षादिभिर्ज्ञातैरस्ति किंचित्प्रयोजनमिति ॥१॥

तत्रापि यदि तावत्सर्वज्ञस्य वृक्षादिभिर्ज्ञातैर्न किंचित्प्रयोजनमित्युच्यते तदाऽस्त्यल्पमभिधीयते । तस्य कृतार्थत्वेन धर्माधर्मादिभिर्ज्ञातैरपि प्रयोजनाभावात् । अथास्मदादीनां तैः सर्वज्ञज्ञानैर्न किंचित्प्रयोजनं तदसिद्धं । तथाहि यथा धर्मादिभिर्ज्ञातैरस्त्यस्माकं प्रयोजनं तथा वृक्षादिभिः सर्वज्ञज्ञातैरस्ति प्रयोजनं । वृक्षलतातृणौषधिप्रभृतीनां चतुर्विधस्य जरायुजांडजोद्भिदजस्वेदजभूतग्रामस्य पृथिव्यादीनां च महाभूतानां च महाभूतानां प्रतिव्यक्ति प्रत्यवस्थं प्रत्यवयवं प्रतिसंस्कारं प्रतिद्रव्यांतरसंबंधं वा शक्तिभेदेन चिकित्सादावुपयोगसद्भावात् । तथाच यथाऽनुष्ठेयमदृष्टं पुरुषार्थसाधनं तथा दृष्टपुरुषार्थसाधनमपीति । अनुष्ठेयगतं ज्ञानं विचार्यमिच्छता सर्ववस्तुगतं ज्ञानं विचार्यमेवेष्टव्यं । सर्वस्यापि वस्तुनः किंचित्साध्यांगत्वेनानुष्ठेयत्वात् । किंच सर्वस्यापि वस्तुनश्चिकित्साद्यंगस्य देशांतरकालांतरसंस्कारांतरावस्थांतरप्रकृत्यंतररोगांतरपुरुषांतराद्यपेक्षया हेयोपादेयरूपत्वात् । हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकं पुरुषं प्रमाण-

मिच्छता सर्ववस्तुनो वेदकः प्रमाणमेष्टव्यः। यथाच सर्व-
मर्थजातं दृष्टपुरुषार्थसिद्धिनिबंधनमेवमदृष्टपुरुषार्थसिद्धिनिबं-
धनमपि। तस्मादपि सर्वं वस्तु परार्थवृत्तेनावश्यं ज्ञातव्यं।
सर्वस्यापि वस्तुनः साक्षात्परंपरया वा मुक्त्युपाये व्यापा-
रात् एकस्याप्यज्ञाने तदंगवैकल्येन संपूर्णस्य मुक्त्युपाय-
स्योपदेशासंभवात्। तथाचोक्तं — प्रमाणविनिश्चये एकध-
र्मस्याप्यज्ञाने परार्थप्रवृत्तेः कार्याकार्यानवबोधात् सर्वत्राशं-
कोत्पत्तेः। सर्वस्य क्वचित्कथंचिदुपकारात्तदज्ञाने तदंगवि-
कलत्वात् अक्षूणविधानायोगादिति। यदि च सर्वज्ञः सर्व-
मर्थमवश्यं जानातीति नेष्यते तदा क्षणिकत्वसाधनं विशी-
र्येत। तथाहि— सर्वज्ञस्य सर्वार्थविषयज्ञानोत्पत्तिनियमा-
भावे चरमक्षणस्य योगिविज्ञानजनकत्वनियमाभावादनर्थक्रि-
याकारिणोऽवस्तुत्वेन पूर्वपूर्ववस्तुक्षणानामप्यवस्तुत्वात् साक-
ल्येन तत्संतानस्यावस्तुत्वं स्यात्। अथार्थक्रियाकारित्वा-
भावेऽपि चरमक्षणस्य वस्तुत्वमिष्यते तर्ह्यक्षणिकस्यार्थक्रि-
यारहितस्यापि वस्तुत्वमिष्यतां। तथाच सत्वकृतकत्वादेर-
नैकांतिकत्वात् क्षणिकत्वसाधनमुत्सीदेत्। ततः क्षणिकत्व-
सिद्धिमिच्छता सर्वज्ञः सर्वमर्थमनवयवेन जानातीत्यभ्युप-
गंतव्यं। तथाच तदुपदेशात्प्रवृत्तिकामेनापि सर्वविषयं ज्ञानं
तस्यावश्यमन्वेषणीयमित्येतदपि सौगतैरवश्यमेष्टव्यं। अन्यथा
सर्वमर्थमजानतोऽक्षूणविधानं न संभवतीति आशंकायां

तदुपदेशान्मुक्त्यर्थिनो नैव प्रवर्तेरन् । तथाहि—

ज्ञानवान्मृग्यते कश्चित्तदुक्तप्रतिपत्तये ॥
अज्ञोपदेशकरणे विप्रलंभनशंकिभिः ॥ १ ॥
सर्ववस्तुगतं ज्ञानं तस्मादस्य विचार्यतां ॥
अनुष्ठेयार्थविज्ञानमक्षूणं नान्यथा भवेत् ॥ २ ॥
हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकं ।
इच्छन् प्रमाणमन्विच्छेच्छ्रद्धिश्वस्य वेदकं ॥ ३ ॥
सूक्ष्मांतरितदूरार्थास्तत्त्वमिष्टमशेषतः ॥
तत्त्वमिष्टमतः पश्यन् सर्वमर्थं प्रपश्यतु ॥ ४ ॥

सोऽयं धर्मकीर्तिरेकधर्मस्याप्यपरिज्ञाने तदंगवैकल्येनाक्षूण-विधानायोगादिति समस्तवस्तुविषयविज्ञानं विचार्यमभ्युपगम्य पुनः कतिपयानुष्ठेयार्थविषयमेव ज्ञानं विचार्यमभ्युपगच्छन् विस्मरणशीलो देवानां प्रियः स्वोक्तमपि न स्मरतीत्युपेक्षा-मर्हति । तस्मान्न प्रतिज्ञार्थोऽनर्थकः । नापि तत्र प्रवर्तमानं साधनमपार्थकमिति स्थितं ॥

यदप्युक्तं—

सूक्ष्मादयोऽर्थाः कस्यचित्प्रत्यक्षाः इति ज्ञातुरनिर्दिष्टत्वा-न्न्यूनः पक्षः स्यादिति । सर्वमनुमानांतरेऽपि वक्तुं शक्यत एव । तथाहि—

नित्योऽसर्वगतः शब्दः सर्वगो वेति धर्मिणः ॥
विशेषस्यानुपादानात्पक्षो न्यूनत्वमापतेत् ॥ १ ॥

यदि सर्वगतादन्यः शब्दो धर्मी समाश्रितः ॥
तदाऽनिष्टानुषंगः स्यात्तत्सर्वगतवादिनः ॥ २ ॥
सर्वगतो यस्त्वभिप्रेतोऽनर्थेन वाऽपि सः ॥(?)
विज्ञायते यतः पक्षः साध्यत्वेनेप्सितो भवेत् ॥ ३ ॥
यस्त्वीप्सिततमं पक्षं विशिंष्यात्तस्य संज्ञया ॥
शब्दः सर्वगतो नित्योऽकृतकत्वाद्यथा वियत् ॥ ४ ॥
तत्र नैवंविशिष्टोऽपि पूर्वस्मादेष भिद्यते ॥
तत्र हेतोरसामर्थ्यादन्यत्राप्यविशेषतः ॥ ५ ॥
स्वशक्त्या हि यदा हेतुर्दृष्टांतानुग्रहेण वा ॥
पक्षांतरेऽपि तुल्यः स्यात्तदा काऽस्य विशिष्टता ६
शब्दोऽसर्वगतोऽनित्यो कृतकत्वाद्भवेद्यदा ॥
तदाऽकिंचित्करो हेतुरिष्टस्यैवाप्रसाधनादिति ॥ ७ ॥

यद्यविवक्षितसर्वगतासर्वगतत्वविशेषस्य शब्दमात्रस्य नित्यत्वं प्रसाध्यते तर्ह्यविवक्षितार्हदनर्हद्विशेषस्य पुरुषमात्रस्य सूक्ष्मादिप्रत्यक्षत्वं प्रसाध्यते इति समः समाधिरिति ॥

यदप्यन्यदुक्तं—

यदि पुरुषसामान्यस्य सूक्ष्मादिविषयं प्रत्यक्षं प्रसाध्यते तदा कथं पुरुषविशेषस्यार्हतो वचनं प्रमाणं स्यात् । यतस्ततो निःश्रेयसार्थिनः प्रवर्तेरन्नित्यादि । तत्राप्युत्तरमुत्तरत्र वक्ष्यामः । तस्माद्यथोक्तदोषरहितत्वादनवद्येयं प्रतिज्ञेति स्थितं ॥

यदप्युक्तं—

असिद्धश्चायं हेतुः । नष्टमुष्ट्याद्युपदेशस्यापौरुषेयस्य करणासंभवात् इति । अत्र नररचितवचनरचनाविशिष्टस्य नष्टमुष्ट्याद्युपदेशस्यापौरुषेयत्वं कुतोऽवसितं येनासिद्धताऽस्य हेतोः स्यात् । न तावत्प्रत्यक्षेणापौरुषेयताऽवसीयते । प्रसज्यप्रतिषेधपक्षे हि पौरुषेयताभावोऽपौरुषेयत्वं । तच्चानादिकालस्यातीतस्याप्रत्यक्षीकरणे तदा न शक्यते साक्षात्कर्तुं । तत्प्रत्यक्षीकरणे स एवातींद्रियदर्शी स्यात् । अधुना तदभावसाधने कुमारसंभवादेरविशेषः कालिदासादेरिदानीमभावात् । प्रत्यक्षस्याभावविषयत्वविरोधात् । अभावानभ्युपगमादभावप्रमाणवैधुर्यप्रसंगश्च । अभावप्रमाणाच्चदभावसिद्धिश्चेत्तदभावप्रमाणं प्रत्यक्षाद्यनुत्पत्तिरूपं भवद्भिर्विधमिष्टं । निषेध्यविषयप्रमाणपंचकरूपतयाऽऽत्मनो परिणामो निषेध्यादन्यद्वस्तुविज्ञानं वेति । तथाचोक्तं—

प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव इष्यते ॥
साऽऽत्मनो परिणामो वा विज्ञानं वाऽन्यवस्तुनि इति १

तत्र सर्वात्मनां न मुष्ट्याद्युपदेशविषये तत्प्रणेतृपुरुषाय प्रमाणपंचकरूपत्वेनापरिणामोऽसिद्धो नाभावसाधनायालं । पुरुषस्य भावतस्तथाविधः परिणामो व्यभिचारी । पिटकविषयेऽपि तत्प्रणेतृविषयप्रमाणपंचकरूपत्वेनापरिणामस्य भवत्संबंधिनः

सद्भावात् । न हि पिटकत्रयेऽपि प्रत्यक्षानुमानोपमानार्थापत्ति-शब्दैः कर्तृपुरुषसद्भावः प्रतीयते । ततो नष्टमुष्ट्याद्युपदेशवत् पिटकत्रयेऽपि पौरुषेयत्वाभावसिद्धिः स्यात् । परैः पिटकत्रये पुरुषसद्भावाभ्युपगमात् । प्रमाणपंचकरूपतयाऽऽत्मनोऽपरिणा-मस्याभावप्रमाणाख्यस्यासाधकत्वमिति चेन्न पराभ्युपगमस्य भवतोऽप्रमाणत्वात् । प्रमाणत्वे ज्योतिर्ज्ञानाद्युपदेशेऽपि तैरेव पुरुषसद्भावाभ्युपगमादस्तु पौरुषेयत्वसिद्धिः। अन्यथाऽन्यत्रापि माभूदविशेषात् । आगमांतरे च परैः पुरुषसद्भावाभ्युपगमात् । अभावप्रमाणस्यासाधकत्वे ज्योतिर्ज्ञानाद्युपदेशेऽप्यसाधकत्व-मस्तु । लक्षणयुक्ते बाधासंभवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् इति सर्वत्रानाश्वासात् । तस्मान्निषेध्यविषयप्रमाणपंचकरूपतयाऽऽत्मनोऽपरिणामादभावप्रमाणाभिधानादपौरुषेयत्वाभावसिद्धिः ॥ पर्युदासपक्षेऽपि किमन्यत्पौरुषेयत्वाद्यदपौरुषेयत्वाभिधानं प्रत्य-क्षसिद्धं स्यात् । न तत्सत्त्वादिकं ततस्तत्सिद्धेरस्माभिरपीष्ट-त्वात् । तदनादिसत्त्वमिति चेत्स एव दोषोऽनादिकालस्या-दर्शनेनादिसत्त्वस्य दर्शनायोगादिति समयादर्शिनोऽपि वा तद्दर्शनप्रसंगः । पौरुषेयत्वादन्यस्तदभाव इति चेत्तर्हि न तस्य प्रत्यक्षेण ग्रहणं युक्तं । अभावप्रमाणवादिभिरभा-वस्य प्रत्यक्षाद्यविषयत्वाभ्युपगमात् । तदन्यज्ञानलक्षणाभाव-प्रमाणात्तदभावसिद्धिश्चेत्तत्पौरुषेयादन्यस्य तदभावस्य ज्ञानं कुतो भवति । न तावदहेतुकं कादाचित्कत्वात् । तत्पौ-

रुषेयत्वविषयप्रत्यक्षादिप्रमाणपंचकनिर्मुक्तादात्मन इति चेत्तर्हि पिटकत्रयेऽपि तदभावज्ञानोत्पत्तिः किं न स्यात् । तदुत्पत्तिकारणस्यानंतरोक्तस्याविशेषात् । पौरुषेयत्वाभावोऽपि तद्धेतुस्तदभावान्न पिटकत्रये तदभावज्ञानोत्पत्तिरिति चेन्न पौरुषेयत्वाभावस्य ह्यभावो नाम पौरुषेयत्वसद्भावस्तस्य प्रत्यक्षादीनामन्यतमेनाप्यनिश्चये कथं पौरुषेयत्वाभावस्याभावगतिरभावज्ञानाभावात् । पौरुषेयत्वाभावस्याभावस्याभावनिश्चयो न पौरुषेयत्वसद्भावगतेरिति चेन्न । अभावज्ञानं हि नाम पौरुषेयत्वाभावकार्यं तदभावात्कथं कारणाभावगतिर्व्यभिचारात् । अप्रतिबद्धसामर्थ्यस्य पौरुषेयत्वाभावस्याभावसाधनेऽपि न सर्वथा पौरुषेयत्वाभावस्याभावसिद्धिः प्रतिबद्धसामर्थ्यस्याभावासाधनात् कथं हि तर्हि देशादौ क्वचिद्धटादिज्ञानाभावात् घटाद्यभावसिद्धिर्भवतोऽपीति चेन्निषेध्यघटाद्येकज्ञानसंसर्गिकेवलभूतलाद्युपलंभादिति ब्रूमः । नैवमत्र पौरुषेयत्वाभावस्याभावसिद्धिः । एकज्ञानसंसर्गिण एव कस्यचिदभावात् । न पौरुषेयत्वसद्भावस्तदेकज्ञानसंसर्गी भावाभावयोः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणयोरेकत्रैकदा एकज्ञानसंसर्गविरोधात् । अविरोधेऽपि न पौरुषेयत्वसद्भावोपलंभात्तदभावस्याभावसिद्धिस्तदुपलंभस्यैवाभावात् । एतेन विरुद्धोपलब्ध्या तदभावस्याभावसिद्धिर्निरस्ता । कस्य वाऽभावज्ञानाभावात्तदभावस्याभावगतिः । किं सर्वस्य वादिनः प्रतिवादिनो वा । तत्र सर्वस्याभावज्ञानाभावोऽसिद्धः ।

प्रतिवादिनोऽभावज्ञानाभावो ज्योतिर्ज्ञानाद्युपदेशेऽपि समानः। वादिनोऽभावज्ञानाभावात्तदभावस्याभावसिद्धौ प्रतिवादिनो ज्योतिर्ज्ञानाद्युपदेशस्याभावज्ञानाभावात् पौरुषेयत्वाभावो न स्यात्। तयोर्विशेषाभावात्। पिटकत्रये वादिप्रतिवादिनोरुभयोरपि अभावज्ञानाभावात्तदभावस्याभावसिद्धिर्युज्यते। न ज्योतिर्ज्ञानाद्युपदेशे विगानात्। प्रतिवादिनोऽभावज्ञानाभावेऽपि वादिनो भावादिति चेन्न। वादिनो यदभावज्ञानं तच्छ्रद्धानुसारिणः सांकेतिकं नाभावबलोपजातं पिटकत्रये प्रतिवादिनोऽप्रामाण्याभावज्ञानवत्। अन्यथाऽगृहीतसमवायस्याप्यभावज्ञानोत्पत्तिः स्यात्। सांकेतिकाच्चाभावज्ञानान्नाभावसिद्धिः। अन्यत्रापि ततोऽप्रामाण्याभावसिद्धिप्रसंगात् ॥

एतेन—

> प्रमाणपंचकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ॥
> वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ॥ १ ॥

इत्येतत्प्रतिव्यूढं। चैत्यवंदनादिवाक्येऽपि पुरुषसत्तावबोधकप्रमाणपंचकाप्रवृत्तेरभावप्रमाणप्रसंगात्। ततस्तदन्यज्ञानलक्षणादप्यभावप्रमाणान्न पौरुषेयत्वादन्यस्य पौरुषेयत्वाभावस्य सिद्धिः। नापि कर्तुरस्मरणादिहेतुभ्यः। कर्तुरस्मरणं वादिनः प्रतिवादिनः सर्वस्य वा तत्साधनं स्यात्। वादिनोऽपि तत्कर्तुरभावादनुपलब्धेर्वा स्यात्। अनुपलब्धेश्चेत्तदनैकांतिकं

स्यात् । कर्तुरस्मरणस्यागमांतरेऽपि प्रसंगात् । कर्तुरस्मरण-निमित्तानुपलब्धेर्भावात् । परैः कर्तुरागमांतरे स्मरणान्न वादिनोऽपि तत्रास्मरणमिति चेन्न । परकीयस्मरणस्याप्रमाण-त्वात् । प्रमाणत्वे ज्योतिर्ज्ञानाद्युपदेशेऽपि वादिनोऽस्मरणं न स्यात् । परैस्तत्रापि कर्तुः स्मरणात् । कर्तुरभावादस्मरणं चेत् किं प्रमाणांतरादेतस्मादेवानुमानात्तदभावसिद्धिः । प्रमा-णांतरात्तदभावसिद्धावस्यानुमानस्य वैयर्थ्यं । न च प्रमाणां-तरं तदभावग्राहकमस्ति । अस्मादेवानुमानात्तदभावसिद्धिश्चे-त्कथं तदभावसिद्धौ कर्त्रस्मरणस्य कर्त्रभावपूर्वकत्वसिद्धिः । येन कर्त्रभावपूर्वकत्वेन निश्चितात्कर्त्रस्मरणात्तदभावसिद्धिः स्यात् । इतरेतराश्रयदोषः कथं न स्यात् । कर्त्रभावपू-र्वकत्वेनानिश्चितात्कर्त्रस्मरणमात्रादेव तदभावसिद्धेर्न परस्परा-श्रयदोषानुषंग इति चेन्न । तथाविधस्यास्मरणस्यासति कर्तरि पर्वतादौ सत्यपि कर्तरि स्वयमपन्हुतात्मकत्वे कथमप्यशक्या-निष्टागमने वचनरचनाविशेषेऽपि सद्भावेन संशयहेतुत्वात्प्र-तिवादिनोऽपि कर्त्रस्मरणं तत्रासिद्धं नापौरुषेयत्वसाधनायालं । तत्र हि प्रतिवादी स्मरत्येव कर्तारमिति । अनेन सर्वस्य कर्तुरस्मरणं प्रत्याख्यातं । सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितो वा कथं सर्वस्य कर्त्रस्मरणमवैति । शब्दाद्धि पौरुषेयत्वादन्यस्य पौरुषेयत्वाभावस्य सिद्धिरप्रामाण्याभावनिश्चये सति स्यात् । तन्निश्चयोऽपि शब्दात्तदभावसिद्धौ स्यात् । अन्यथा दोषा-

श्रयपुरुषसद्भावशंकया नाप्रामाण्याभावनिश्चयः स्यादितीतरेतराश्रयत्वान्न शब्दादपि तत्सिद्धिः। न च तदभावप्रतिपादकं वेदवाक्यमस्ति। नापि विधिवाक्यादन्यस्य मीमांसकैः प्रामाण्यमिष्यते यतस्तस्य कल्पना स्यात्। न प्रामाण्यलक्षणोऽर्थः पौरुषेयत्वाभावमंतरेण नोपपद्यते। तथाविधस्यावबोधकत्वलक्षणस्य प्रामाण्यस्यागमांतरेऽभावात्। दोषाश्रयपुरुषसद्भावान्न तथाविधप्रामाण्यमन्यत्रेति चेदत्र पुरुषाभावः कुतोऽवसितः? अन्यतश्चेत्तदेवोच्यतां किमनेन सिद्धोपस्थायिना। प्रामाण्यादन्यथाऽनुपपत्तेरिति चेच्चक्रकप्रसंगः। नाप्रामाण्यलक्षणोऽर्थः पौरुषेयत्वाभावमंतरेण नोपपद्यते प्रागुक्तदोषानतिवृत्तेः। न च प्रामाण्याभावात्पुरुषस्याभावसिद्धिर्युक्ता धूमाभावादग्न्यभाववत्। कार्याभावस्य कारणाभावव्यभिचारात्। अन्यथानुपपत्तेरभावादप्रतिबद्धसामर्थ्यस्य पुंसोऽप्रामाण्यकारणस्याभावसाधनेऽपि न सर्वथा पुरुषस्याभावसिद्धिः। अप्रामाण्याजनकस्य पुरुषस्यानिराकरणात्। इष्टसिद्धिश्चाप्रामाण्यकारणस्यातींद्रियज्ञानविकलस्य पुंसो ज्योतिःशास्त्रादौ भवता वेदरूपतयाऽभिमतेऽस्माभिरनिष्टत्वात्। नन्वतींद्रियज्ञातुरभावादन्यस्याप्यनिष्टेः सिद्ध एव सर्वथा पुरुषाभावः। कथं पुनरतींद्रियार्थवेदिनो भवता विभावितोऽभावः। न तावत्प्रत्यक्षेण प्रत्यक्षस्यात्यक्षेऽनक्षज्ञानवति भावाभावविवेचनसामर्थ्याभावात्। भावे वा नास्मिन्देशकालेऽभावसाधनं घटते।

अभीष्टत्वाद्देशकालात्मज्ञानानामनवयवेनाव्यापकस्यासर्वदर्शिप्र-
त्यक्षस्य सर्वदा सर्वत्र सर्वज्ञाभावज्ञानमयुक्तं । तथा ज्ञाने
सर्वज्ञसिद्धिप्रसंगात् । न च प्रत्यक्षमभावविषयं उक्त-
दोषात् । नापि चोदनातः सर्वज्ञाभावसिद्धिः । पुरुषमात्र-
स्याभावासिद्धौ अन्ययोगव्यवच्छेदेन प्रामाण्यनिवृत्तेरनिश्च-
यान्न चोदनातः सर्वज्ञाभावसिद्धिः । तदसिद्धौ च न
पुरुषमात्रस्याभावसिद्धिरितीतरेतराश्रयत्वप्रसंगात् । अप्रामाण्य-
निवृत्त्यन्यथानुपपत्त्या पुंसोऽप्रमाण्यकारकस्यातींद्रियज्ञानवि-
कलस्याभावसिद्धेरन्यस्य वीतरागसर्वज्ञस्य भावेऽपि तद्गु-
णैरपकृष्टत्वाद्दोषाणामस्त्येवाप्रमाण्यानिवृत्तिः सर्वज्ञनिवृत्त्यनिश्चये
ऽपि चोदनातः कथमितरेतराश्रयदोषः स्यादिति चेदेव-
मप्रामाण्यनिवृत्तिः प्रत्यागमेऽपि किं न स्यात् । अप्रा-
माण्यनिवृत्त्यसिद्धेरिति चेदत्र कुतस्तदभावसिद्धिः । दोषा-
श्रयपुरुषस्याभावादिति चेदितरेतराश्रयत्वं । अभावप्रमाणा-
दप्रामाण्याभावसिद्धिश्चेत्प्रत्यागमेऽपि किं न स्यात् । तथा
ऽप्रामाण्याभावसिद्धौ च प्रत्यागमस्य सर्वज्ञसद्भावावबोध-
कस्यावबोधकत्वेन चोदनावत्प्रामाण्याच्चोदनातः सर्वज्ञाभाव-
सिद्धेः सप्रतिबंधकः स्यात् । तस्माच्चोदनातः सर्वज्ञाभाव-
सिद्धिमिच्छताऽन्ययोगव्यवच्छेदेनाप्रामाण्यनिवृत्तिः साधनीया ।
तत्सिद्धिरपि सर्वज्ञाभावसिध्द्या पुरुषमात्राभावसिद्धौ स्यादिति
कथमितरेतराश्रयदोषो न स्यादिति । अस्तु वाऽन्ययो-

गव्यवच्छेदेन श्रुतेरप्रामाण्याभावनियमस्तथापि न चोदनातः सर्वज्ञाभावसिद्धिः। कार्यार्थे वेदस्य प्रामाण्यादन्यत्र प्रामाण्यानभ्युपगमात्। सर्वज्ञभावप्रतिपादिकैव श्रुतिः श्रूयते—

अपाणिपादो जवनोऽग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥
स वेत्ति विश्वं न हि तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महांतमिति ॥१॥

तस्मान्न श्रुतेः सर्वज्ञाभावसिद्धिः॥ नाप्यर्थापत्तितः। सर्वज्ञाभावमंतरेण कस्यचिदनुपपद्यमानस्यार्थस्याभावात्। न पुरुषवक्तृत्वादयः सर्वज्ञाभावमंतरेण नोपपद्यंते। वक्तृत्वादीनां सर्वज्ञत्वेन सहानवस्थानलक्षणस्य परस्परपरिहारस्थितिलक्षणस्य वा विरोधस्यासिद्धेः। न ह्यविकले कारणस्य सर्वज्ञत्वस्य वक्तृत्वादेरभावः पुरुषत्वादेर्वा सर्वज्ञत्वसद्भावेऽभावः प्रतीयते। येन तयोः सहानवस्थानलक्षणो विरोधः स्यात्। नापि सर्वज्ञत्वाभावरूपं वक्तृत्वादिकं वक्तृत्वाद्यभावरूपं वा सर्वज्ञत्वं येन तयोः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो विरोधः परिकल्प्यते। तदेवं वक्तृत्वादेः सर्वज्ञत्वेन विरोधद्वयस्याप्यसिद्धेः सर्वज्ञाभावमंतरेणानुपपत्तेरभावात् नार्थापत्तेः सर्वज्ञाभावप्रतिपादकत्वं। नाप्यनुमानोपमानाभावप्रमाणानां सर्वज्ञाभावबोधकत्वं। प्रागेव तेषां निरस्तत्वात्। तदेवं सर्वज्ञाभावस्यासिद्धेरतींद्रियार्थज्ञातुरभावादन्यस्यापि सर्वज्ञवादिभिरनिष्टेः सिद्ध एव सर्वथा पुरुषाभाव इत्येतदयुक्तं। तस्मान्नष्टमुष्ट्याद्युपदेशस्यापौरुषेयत्वमसिद्धं पौरुषेयत्वं तु सिद्धं। तथाहि— ये दृष्टकर्तृकसमानजातीयास्ते

कर्तृमंतो यथा दृष्टकर्तृकप्रासादादिसमानजातीया जीर्णप्रासादादयः । दृष्टकर्तृवाक्यसमानजातीयश्च वेदांतर्गतो नष्टमुष्ट्याद्युपदेश इति नायमसिद्धो हेतुः । नष्टमुष्ट्याद्युपदेशे दृष्टकर्तृकवाक्यासंभविनो विशेषस्यादर्शनात् । ननूपलभ्यत एव दृष्टकर्तृकवाक्यासंभविसूक्ष्माद्यर्थप्रतिपादनलक्षणविशेषस्तत्रेति चेन्न इत्थंभूतस्य विशेषस्य सतोऽपि कर्तृमात्रानिषेधकत्वात् । यथाभूतो हि विशेषः कर्तृमात्रं निरस्यति तथाभूतस्य विशेषस्याभावात् दृष्टकर्तृकसमानजातीयत्वमुच्यते । न सर्वथाऽभावात् । समानजातीयस्य कस्यचिदप्यभावात्सूक्ष्माद्यर्थप्रतिपादनलक्षणो विशेषश्च सातिशयप्रासादादिविशेष इव न कर्तृमात्रं निरस्यति । किं तु अकुशलशिल्पिनमिव सूक्ष्माद्यर्थविषयपरिज्ञानशून्यं कर्तृविशेषं । स चास्माभिरपि नेष्यते एव । यश्चेष्यते सूक्ष्मांतरितदूरार्थसाक्षात्कारी कर्तृविशेषः स नानेन निराक्रियते । ननु सूक्ष्मादावर्थे पुरुषस्य दर्शनशक्त्यभावात् पुरुषमात्रमयं विशेषो निराकरोतीति चेत् स्यादेवं यदि पुरुषस्यातींद्रियार्थदर्शनशक्त्यभावः कुतश्चिन्निश्चितः स्यात् । यावता नैवं सर्वज्ञाभावग्राहकस्य प्रमाणस्य प्रागेव निरस्तत्वात् । तस्मात्पुरुषमात्रनिषेधकस्य विशेषस्याभावान्नासिद्धं दृष्टकर्तृकसमानजातीयत्वं । नाप्यनैकांतिकं अदृष्टकर्तृके दृष्टकर्तृकसजातीयत्वस्य दर्शनात् । अदृष्टमपि तत्तत्र विरोधाभावात् संभाव्यत इति चेदकर्तृकेऽपि दृष्टकर्तृकसजातीयत्वस्य संभवेन

क्वचिददृष्टकर्तृके दृष्टकर्तृकसजातीये कृत्रिमव्यवहारः स्यात् । उपलभ्यते चादृष्टकर्तृकेऽपि दृष्टकर्तृसजातीये प्रासादादौ कृत्रिमव्यवहारो लोकस्यास्खलद्रूपः । तस्माददृष्टकर्तृके दृष्टकर्तृकसजातीयत्वं नाशंकनीयं । अत एव न विरुद्धोऽप्ययं हेतुः । तस्मादसिद्धविरुद्धानैकांतिकादिदोषरहितादतो हेतोर्भवत्येव नष्टमुष्ट्याद्युपदेशस्य कर्तृमत्वप्रसिद्धिरिति नासिद्धं कस्यचिन्नष्टमुष्ट्याद्युपदेशकरणमिति ॥ यदप्युक्तं—

अपक्षधर्मश्चायं हेतुः सूक्ष्माद्यर्थे धर्मिणि नष्टे मुष्ट्याद्युपदेशकरणाभावादिति । तदप्ययुक्तं । अपक्षधर्मस्यापि हेतोर्गमकत्वदर्शनात् । तथाहि— अपक्षधर्मादपि कृत्तिकोदयाद्रोहिण्युदयस्य चंद्रोदयात्समुद्रवृद्धेरनुमानं दृश्यते । परैस्तथाऽभ्युपगमाच्च ॥ तथाचोक्तं—

> नदीपूरोऽप्यधोदेशे दृष्टः सन्नुपरिस्थितां ॥
> नियम्ये गमयत्येव वृत्तां वृष्टिं नियामिकामिति ॥ १ ॥
> पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा ॥
> सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥ २ ॥

यदप्यन्यदुक्तं अनैकांतिकश्चायं हेतुः । यस्मात्सूक्ष्मादिपदार्थसाक्षात्करणमंतरेणाप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां लिंगादुपदेशपरंपरातो वा नष्टमुष्ट्यादिकमवगम्योपदेष्टुं शक्नोत्येवेति । तदप्यसमीचीनं । तथाहि— न तावदन्वयव्यतिरेकाभ्यां ग्रहोपरागनष्टमुष्ट्यादयः प्रतिपत्तुं शक्यंते चूतमंजर्यादेर्मधुमास इव

कर्तृमंतो यथा दृष्टकर्तृकप्रासादादिसमानजातीया जीर्णप्रासादादयः। दृष्टकर्तृवाक्यसमानजातीयश्च वेदांतर्गतो नष्टमुष्ट्याद्युपदेश इति नायमसिद्धो हेतुः। नष्टमुष्ट्याद्युपदेशे दृष्टकर्तृकवाक्यासंभविनो विशेषस्यादर्शनात्। ननूपलभ्यत एव दृष्टकर्तृकवाक्यासंभविसूक्ष्माद्यर्थप्रतिपादनलक्षणविशेषस्तत्रेति चेन्न इत्थंभूतस्य विशेषस्य सतोऽपि कर्तृमात्रानिषेधकत्वात्। यथाभूतो हि विशेषः कर्तृमात्रं निरस्यति तथाभूतस्य विशेषस्याभावात् दृष्टकर्तृकसमानजातीयत्वमुच्यते। न सर्वथाऽभावात्। समानजातीयस्य कस्यचिदप्यभावात्सूक्ष्माद्यर्थप्रतिपादनलक्षणो विशेषश्च सातिशयप्रासादादिविशेष इव न कर्तृमात्रं निरस्यति। किं तु अकुशलशिल्पिनमिव सूक्ष्माद्यर्थविषयपरिज्ञानशून्यं कर्तृविशेषं। स चास्माभिरपि नेष्यते एव। यश्चेष्यते सूक्ष्मांतरितदूरार्थसाक्षात्कारी कर्तृविशेषः स नानेन निराक्रियते। ननु सूक्ष्मादावर्थे पुरुषस्य दर्शनशक्त्यभावात् पुरुषमात्रमयं विशेषो निराकरोतीति चेत् स्यादेवं यदि पुरुषस्यातींद्रियार्थदर्शनशक्त्यभावः कुतश्चिन्निश्चितः स्यात्। यावता नैवं सर्वज्ञाभावग्राहकस्य प्रमाणस्य प्रागेव निरस्तत्वात्। तस्मात्पुरुषमात्रनिषेधकस्य विशेषस्याभावान्नासिद्धं दृष्टकर्तृकसमानजातीयत्वं। नाप्यनैकांतिकं अदृष्टकर्तृके दृष्टकर्तृकसजातीयत्वस्य दर्शनात्। अदृष्टमपि तत्तत्र विरोधाभावात् संभाव्यत इति चेदकर्तृकेऽपि दृष्टकर्तृकसजातीयत्वस्य संभवेन

क्वचिददृष्टकर्तृके दृष्टकर्तृकसजातीये कृत्रिमव्यवहारः स्यात् । उपलभ्यते चादृष्टकर्तृकेऽपि दृष्टकर्तृसजातीये प्रासादादौ कृत्रिमव्यवहारो लोकस्यास्खलद्रूपः । तस्माददृष्टकर्तृके दृष्टकर्तृकसजातीयत्वं नाशंकनीयं । अत एव न विरुद्धोऽप्ययं हेतुः । तस्मादसिद्धविरुद्धानैकांतिकादिदोषरहितादतो हेतोर्भवत्येव नष्टमुष्ट्याद्युपदेशस्य कर्तृमत्वप्रसिद्धिरिति नासिद्धं कस्यचिन्नष्टमुष्ट्याद्युपदेशकरणमिति ॥ यदप्युक्तं—

अपक्षधर्मश्चायं हेतुः सूक्ष्माद्यर्थे धर्मिणि नष्टे मुष्ट्याद्युपदेशकरणाभावादिति । तदप्ययुक्तं । अपक्षधर्मस्यापि हेतोर्गमकत्वदर्शनात् । तथाहि— अपक्षधर्मादपि कृत्तिकोदयाद्रोहिण्युदयस्य चंद्रोदयात्समुद्रवृद्धेरनुमानं दृश्यते । परैस्तथाऽभ्युपगमाच्च ॥ तथाचोक्तं—

नदीपूरोऽप्यधोदेशे दृष्टः सन्नुपरिस्थितां ॥
नियम्ये गमयत्येव वृत्तां वृष्टिं नियामिकामिति ॥ १ ॥
पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा ॥
सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥ २ ॥

यदप्यन्यदुक्तं अनैकांतिकश्चायं हेतुः । यस्मात्सूक्ष्मादिपदार्थसाक्षात्करणमंतरेणाप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां लिंगादुपदेशपरंपरातो वा नष्टमुष्ट्यादिकमवगम्योपदेष्टुं शक्नोत्येवेति । तदप्यसमीचीनं । तथाहि— न तावदन्वयव्यतिरेकाभ्यां ग्रहोपरागनष्टमुष्ट्यादयः प्रतिपत्तुं शक्यंते चूतमंजर्यादेर्मधुमास इव

ग्रहोपरागादीनां दिक्प्रमाणफलकालादिषु नियमाभावात् । नापि ग्रहोपरागनष्टमुष्ट्यादयो लिंगदर्शनादनुमीयंते तल्लिंग-संबंधयोर्हि प्राकृतपुरुषदर्शनविषयत्वे अस्मदादीनां धूमादग्ने-रिव ग्रहोपरागनष्टमुष्ट्यादीनां तल्लिंगादनुपदेशात्प्रतीतिः स्यात् । लिंगसंबंधयोरप्यतींद्रियत्वे तयोरुपदेशमंतरेण प्रतिपत्तेरयोगात्त-दुपदेष्टुरतींद्रियार्थदर्शित्वं स्यात् । नापि द्रव्याणामन्वयव्यति-रेकाभ्यां संयोगकल्पनामात्रावस्थावयवादिभेदेन शक्तिभेद. शक्यते प्रतिपत्तुं । अन्वव्यतिरेकाभ्यां हि तथा तत्प्रतिपत्तौ यावंति जगति द्रव्याणि तानि सर्वाण्येकत्र मीलयित्वैकस्य [illegible] कषायादिकल्पनाभेदेन कर्षादिमात्राभेदे[illegible]त्पादनलब्धा[illegible] [illegible]नदन बालमध्याद्य-वस्थाभेदेन मूलपत्राद्यवयवभेदेन प्रक्षेपोद्धाराभ्यामेकोऽपि योगो युगसहस्रेणापि न ज्ञातुं पार्यते किमुतानेक इति । नाप्ययं नष्टमुष्ट्याद्युपदेशोऽप्यनादिः उपदेशपरंपरयाऽतींद्रियज्ञातुरभा-वेऽपि प्रमाणभूतः प्रबंधेनानुवर्तते इति युक्तं । तथाऽभ्युपगमे हि चैत्यवंदनाद्युपदेशोऽपि प्रबंधेनैवमनुवर्तमानः प्रमाणभूतो भवता किं नानुमन्यते । तदनुसारिभिरेवासावतींद्रियज्ञानपूर्व-कत्वेनाभ्युपगतः तज्ज्ञानस्य चाभावादुपदेशपरंपराप्राश्चानभ्यु-पगमान्न प्रमाणमिति चेत्किं पराभ्युपगमो भवतः प्रमाणं? अन्यथा नष्टमुष्ट्यादिप्रतिपादकागमोऽपि न प्रमाणं । तस्यापि तैरेव तथाभ्युपगमात् । अविसंवादित्वादन्यस्य प्रामाण्यं नान्यस्याविसंवादाभावादिति चेन्न तर्हि वेदः प्रमाणमविसं-

वादाभावात् । अपौरुषेयत्वादस्य प्रामाण्ये ज्योतिर्ज्ञानादेरपौ-रुषेयत्वाभावात् प्रामाण्यं न स्यात् । न ब्रूमोऽपौरुषेयत्वादेव प्रामाण्यं प्रामाण्यमेवापौरुषेयत्वादिति चेत्तर्हि नीलोत्पलादिषु दहनादीनामपौरुषेयाणां न मिथ्याज्ञानहेतुता स्यात्। ज्योतिः-शास्त्रप्रवाहस्य चानादितया प्रामाण्ये वेदेऽपि तथैवास्तु प्रामाण्यं किमपौरुषेयतासाधनायासेन । अन्यत्र कर्तुः श्रवणात्पौरुषेयता युक्ता मात्र कर्तुरश्रवणादिति चेन्न अत्रापि कर्तुः श्रवणात्। तन्मिथ्यात्वमुभयत्रापि समानं । पराभ्युमगमादन्यत्र पौरु-षेयत्वमत्रापि किं न स्यात् । तत्प्रवाहस्य चानादित्वे वक्तुरज्ञानवचनाकौशलदुष्टाभिप्रायैः श्रोतुश्च मंदबुद्धित्ववि-पर्यस्तबुद्धित्वगृहीतविस्मरणैः प्रतिपुरुषं हीयमानस्यानादि-काले निर्मूलोच्छेदः स्यात् । तथाहि इदानीमपि केचि-त्सातिशयं ज्योतिःशास्त्रादिकमवयंतोऽपि दुष्टाभिप्रायतयाऽ न्यस्यानुपदिशतो दृश्यंते । अन्ये त्वज्ञानाद-यथोपादिशंतो दृश्यंते । अन्ये पुनः स्वयं यथावदवगच्छंतोऽपि वचना-कौशलाद्व्यक्तमन्यथा चोपदिशंतो दृश्यंते । तथा श्रोतारोऽपि केचिन्मंदबुद्धयो यथावदुक्तमपि नावधारयंति । अन्ये तु विपर्यस्तबुद्धयः सम्यगुपदिष्टमन्यथा भावयंति । केचित्पुनः सम्यगवबुद्धमपि विस्मरंतीत्येभिः कारणैः प्रतिपुरुषं हीय-मानस्यैतावता कालेन निर्मूलोच्छेद एव स्यात् । भवति च तस्मादंतरांतरा विच्छिन्नः । सूक्ष्मांतरितदूरार्थसाक्षा-

त्कारिणा पुरुषेण पुनः पुनरयं प्रवर्त्यमानः इदानीं याव-दायात इत्यवसीयते। तदेवमन्वयव्यतिरेकाभ्यां लिंगादना-द्युपदेशपरंपरातो वा ग्रहोपरागादिकमवगम्य तदुपदेशकरणा-न्नानैकांतिको हेतुः॥

यदप्युक्तं विरुद्धश्चायं हेतुः। विसंवादकस्य ग्रहोपरागा-द्युपदेशस्य सूक्ष्मादिपदार्थसाक्षात्करणमंतरेणैव भावादिति। तदप्ययुक्तं। संवाददर्शनात्। नाप्ययं काकतालीयो युज्यते दिक्प्रमाणफलकालादिविशिष्टग्रहोपरागाद्युपदेशसंवादस्योपदेश-मंतरेण सकृदप्ययोगात्। योऽपि क्वचिद्विसंवादः स प्रत्यक्षा-देरेव सामग्रीवैकल्यात्। क्वचिद्विसंवादात्सर्वत्राप्रामाण्ये प्रत्य-क्षादेरप्यप्रामाण्यप्रसंगः। ततो न विरुद्धोऽप्ययं हेतुः। मा भूदयं विरुद्धोऽसाधारणस्तु स्यात् सपक्षेऽनुगमाभावादिति चेदस्तु। तथापि नास्यागमकत्वमुक्तेन प्रकारेणान्यथानुपपत्तेर्भवदीय-नियमरूपायाः सद्भावेन गमकत्वोपपत्तेः। सपक्षेऽनुगममंतरेण सैव ज्ञातुमशक्येति चेत्कथमर्थापत्तावर्थापत्त्युपस्थापकस्यान्य-थानुपपन्नत्वं सपक्षेऽनुगममंतरेण ज्ञायते। अन्यथाभवनमसि-द्धमपि स्वशक्त्यैवादृष्टमर्थं कल्पयतीति चेदेवं लिंगस्याप्यवि-नाभावनियमोऽसिद्धः स्वशक्त्यैव हि किं न लिंगिनं गमयेत्। एवं च सर्वमेवानुमानमर्थापत्तिरिव स्यात्। तथाच प्रमाण-षट्कसंख्या निवर्तेत। अथ सिद्धमेवानन्यथाभवनमर्थापत्त्युप-स्थापकस्यादृष्टमर्थं कल्पयतीत्युच्यते तदा तत्सपक्षमंतरेण क

सिद्धं । यत्रान्यथानुपपद्यमानादर्थात्साध्यं प्रतीयते तत्रैवान्यथानुपपद्यमानत्वं ज्ञायते इति चेदेवमत्रापि किं न स्यात् । एवमर्थापत्तिरेव स्यादिति चेदस्तु नामांतरं न तदस्माभिर्निवार्यते । यद्धि भवता सपक्षानुगमरहितमर्थापत्तिरित्युच्यते तदस्माभिरंतर्व्याप्त्याऽर्थमसाधनमनुमानमित्युक्तं अतो नाम्नि विप्रतिपत्तिर्नार्थे इति । सपक्षे सिद्धसंबंधमनुमानं साध्यधर्माधिकरणे धर्मिण्येव सिद्धसंबंधमर्थापत्त्याख्यं प्रमाणमतोऽस्त्यर्थेविप्रतिपत्तिरिति चेद्यद्येतावता विशेषेणानयोर्भेद इष्यते तदा पक्षधर्मत्वसहितादनुमानात्तद्रहितं प्रमाणांतर न स्यात् । तथाच सप्तमस्य प्रमाणांतरस्य सिद्धेः प्रमाणषट्त्वसंख्या निवर्तते । नियमतोऽर्थादर्थांतरप्रतिपत्तेरविशेषान्न पक्षधर्मत्वसहितादनुमानात्तद्रहितं प्रमाणांतरमिति चेदेवं तर्हि सपक्षे सिद्धसंबंधादनुमानात्साध्यधर्मिणि सिद्धसंबंधमपि प्रमाणांतरं न स्यादविशेषात् । अतो नाम्न्येव विप्रतिपत्तिर्नार्थे । ततः सपक्षेऽनुगमरहितस्याप्यस्य हेतोर्गमकत्वं युक्तं । तदेवमसिद्धविरुद्धानैकांतिकत्वादिदोषरहितत्वादनवद्यमिदं साधनमतो भवत्येवाभिमतसाध्यसिद्धिरिति ॥ भवतु नामातो ग्रहोपरागादिसूक्ष्माद्यर्थस्य प्रत्यक्षत्वसिद्धिस्तदुपदेशस्य संवाददर्शनात् । धर्माधर्माद्यशेषसूक्ष्माद्यर्थप्रत्यक्षतासिद्धिस्तु कथं? तदुपदेशस्य संवादानुपलब्धेरिति चेद्ग्रहोपरागाद्युपदेशादेव सापि सिध्यतीति ब्रूमः । तथाहि ज्योतिःशास्त्राद्ग्रहोपरागादिकं विशि

ष्टवर्णप्रमाणदिग्भागादिविशिष्टं प्रतिपद्यमानः प्रतिनियतानां प्रतिनियतदेशवर्तिनां प्राणिनां प्रतिनियते काले प्रतिनियतफलसंसूचकत्वेन प्रतिपद्यते । यस्मादेवमुक्तं ज्योतिःशास्त्रे—

नक्षत्रग्रहपंजरमहर्निशं लोककर्मविक्षिप्तं ।
भ्रमति शुभाशुभमखिलं प्रकाशयत्पूर्वजन्मकृतं ॥१॥

तस्मात् ज्योतिःशास्त्रं ग्रहोपरागादिकमिव धर्माधर्मावपि प्रमाणांतरसंवादेन बोधयति । उक्तं च—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः प्राप्तिं ।
व्यंजयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥२॥ इति

अत एव ज्योतिःशास्त्रज्ञा दैवज्ञा इत्युच्यंते । तस्मादेवं ग्रहोपरागाद्युपदेष्टुर्धर्माधर्मसाक्षात्कारित्वसिद्धौ तदन्यसर्वपदार्थसाक्षात्करणमपि सिद्धिमुपढौकते ॥ तथाहि— श्रेयःसाधनं धर्मः । तच्च श्रेयो देवतिर्यग्लोकस्थपुरुषेषु व्यवस्थितमनेकप्रकारं । तथा प्रत्यवायहेतुरधर्मः । स च प्रत्यवायो नरकपृथ्वीतिर्यग्लोकाधारप्राणिषु प्रत्येकमनेकविधः । तस्माच्छ्रेयःप्रत्यवाययोर्हेतुभूतौ धर्माधर्मौ साक्षात्कुर्वन् श्रेयःप्रत्यवाययोराधारभूतांस्त्रिलोकस्थान् प्राणिनोऽपि साक्षात्कर्तुमर्हतीति कथं सर्वदर्शी न स्यात् । ततस्तथाभूतौ धर्माधर्मौ प्रतिपत्तुमिच्छतामस्माकं तस्य कीटकसंख्यापरिज्ञानं वा कथमुपयोगि न स्यात् । ननु परिदृश्यमानलोकव्यतिरेकेण

लोकांतराणामभावात्कथं त्रिलोकस्थाशेषप्राणिगणसाक्षात्करणात्सर्वदर्शित्वमिति चेत्कथमसर्वज्ञो लोकांतराभावमवैति। कथं वा ब्रह्मांडानामनंतत्वं। भवतु वा लोकांतराभावः। तथापि यथापरिदृश्यमानलोकाधारसर्वप्राणिगणसाक्षात्करणात्ससर्वज्ञत्वमनिवार्यं॥ भवतु नामैवं सकलप्राणिगणस्य साक्षात्करणं इतरसर्वपदार्थसाक्षात्करणं तु कथमिति चेत्धर्माधर्मसाक्षात्करणादेवेति ब्रूमः। तथाहि— श्रेयःप्रत्यवाययोर्न केवलौ धर्माधर्मौ जनकौ किं तु कारणांतरमपेक्ष्य। अन्यथा सेवाकृष्यादेरौषधाद्युपयोगस्य च श्रेयोहेतुत्वेन लोके प्रसिद्धस्य तथा चौर्यादेरनिष्टाहारचेष्टाया विषशस्त्रकंटकादेश्च प्रत्यवायहेतुत्वेन लोके प्रसिद्धस्य वैयर्थ्यप्रसंगात्। तच्च कारणांतरं सकलमेव जीवाजीवलक्षणं वस्तु। न हि किंचिज्जीवलक्षणमजीवलक्षणं वा वस्तु विद्यते यत्साक्षात्परंपरया वा कस्यचित्पुरुषस्य श्रेयसः प्रत्यवायस्य वा कारणं न भवेत्। तस्माद्यत्काणांतरमपेक्ष्य धर्माधर्मौ श्रेयःप्रत्यवायहेतू तदपि कारणांतरं साक्षात्कर्तव्यं। अन्यथा धर्माधर्मयोर्याथात्म्येन साक्षात्करणायोगात्। एवं धर्माधर्मयोरितरसर्वपदार्थानां च साक्षात्करणसिद्धिः॥ यदुक्तं परेण—

येऽपि च च्छिन्नमूलत्वाद्धर्मज्ञत्वे हते सति॥
सर्वज्ञान् पुरुषानाहुस्तैः कृतं तुषकंडनं॥ १॥

इति। एतदयुक्तं। तथाहि—

येऽपि चाच्छिन्नमूलत्वाद्धर्मज्ञत्वे प्रसाधिते ॥
सर्वज्ञान् पुरुषानाहुस्तैः कृतं कणकं(खं)डनं ॥ २ ॥

ननु धर्माधर्मव्यतिरिक्तानशेषानप्यर्थान् साक्षात्कुर्वता सर्वज्ञेनाशुच्यादिरसस्याप्यास्वादनाद्गंधस्य चाघ्रातत्वात्तद्भक्षणादिदोषस्तस्य स्यात् । अग्न्याद्युष्णस्पर्शस्य साक्षात्करणाद्दाहः स्यात् । मनोज्ञरूपाद्यनुभवादभिलाषः स्यात । अमनोज्ञरूपस्यानुभवात् द्वेषः स्यात् । भयानकरूपदर्शनाद्भयेन संमोहः स्यात् । एवमन्येऽपि दोषा भवेयुरिति ॥ तथा चोक्तं—

साक्षात्प्रत्यक्षदर्शित्वाद्यस्याशुचिरसादयः ॥
स्वसंवेद्याः प्रसज्यंते को नु तं कल्पयिष्यतीति ॥१॥

इति चेत्तदप्ययुक्तं तथाहि– यदि तावदशुचिरसगंधयो रसनघ्राणाभ्यां संबंधात्तद्भक्षणादिदोषः पावकाद्युष्णस्पर्शस्य च स्पर्शनेन संबंधाद्दाहः स्यादित्युच्यते तदसिद्धं । रूपस्येव रसगंधस्पर्शादीनामप्राप्तानामेवातींद्रियप्रत्यक्षेण ग्रहणात् । अथ त्रिलोकांतर्गतानुकूलादिस्वभावरूपरसगंधस्पर्शादिसाक्षात्करणात्सुखदुःखद्वेषाभिलाषमोहादयो भवेयुरित्युच्यते तदप्ययुक्तं । विषयानुभवमात्रस्य सुखदुःखादीनामहेतुत्वात् । हेतुत्वे वा यथैकस्य पुरुषस्य कस्मिँश्चिद्विषये सुखं दुःखं द्वेषोऽभिलाषो मोहोऽन्यद्वा भवति तथा सर्वेषामप्यविशेषेण स्यात् कारणस्याविशेषात् । नचैवं । तथाह्येकस्मिन्नेव स्त्रीविषये कस्यचिदभि-

लाषोऽन्यस्य द्वेषः। तथोष्ट्रादीनां केवले लवणरसेऽभिलाषोऽस्मदादीनां द्वेषः। तिक्तरसे निंबकीटस्याभिलाषोऽस्मदादीनां द्वेषः। शुंठ्यामुत्पन्नस्य पुनः कीटकस्य कटुरसेऽभिलाषोऽन्येषां द्वेषः। मक्षिकादीनामशुचिरसगंधयोरभिलाषोऽस्मदादीनां च द्वेषः। चंदनगंधेऽस्मदादीनामभिलाषो मक्षिकादीनां द्वेषः। पित्तप्रकृतेरुष्णस्पर्शे द्वेषो वातप्रकृतेरभिलाषः। शीतस्पर्शे वातप्रकृतेर्द्वेषः पित्तप्रकृतेरभिलाषः। भीरोर्भयानकरूपे भयं न धीरस्य। प्राणिहिंसादर्शने निर्दयस्य हर्षः कारुणिकस्य करुणा। तथैकस्याभ्युदये कस्यचिदमर्षः कस्यचिद्धर्षः कस्यचिदौदासीन्यं दृष्टं। एवमन्यदपि ज्ञेयं। तस्मान्न विषयानुभवः केवल एव सुखदुःखहर्षविषादामर्षादिहेतुः। किंतु कारणांतरसहितः। तच्च कर्मैव भवितुमर्हति। यद्यपि जातिविशेषस्वभावाभ्यासप्रकृतिविशेषादयः साक्षात्करणत्वेन प्रतीयंते तथापि तेषां जातिविशेषादीनामपि कर्मैव कारणमिति। तदेव प्रधानं कारणं। तच्च निरस्ताशेषदोषावरणस्य नास्तीति केवलो विषयानुभवस्तस्योपेक्षामेव सर्वत्र जनयति न सुखदुःखादिकं। निःशेषदोषावरणविश्लेषं च समर्थयिष्यामः॥

भवतु नाम ग्रहोपरागाद्युपदेशान्यथानुपपत्त्या धर्माधर्मयोरितरसर्वपदार्थानां च साक्षात्करणं। मुक्तिमार्गसाक्षात्करणं तु कथं तस्य निश्चीयत इति चेत् ग्रहोपरागाद्युपदेशादेवेति ब्रूमः। तथाहि न तावद् ग्रहोपरागाद्युपदेशान्यथानुपपत्तिसिद्धं सर्वज्ञत्वं

अनादिसिद्धं । अशरीरादनादिसिद्धात्सर्वज्ञात् ग्रहोपरागाद्यु-पदेशासंभवादसंभवश्चेश्वरनिराकरणप्रकरणे निरस्तत्वात् । नाप्यनुपायसिद्धं अहेतोः सर्वदा सर्वत्र प्रसंगात् । तस्मा-दुपायसिद्धेनानेन भवितव्यं । स चोपायस्तेन ज्ञातव्योऽन्यथा तदनुष्ठानायोगात् । परिज्ञानं परोपदेशात्परोऽपि अन्योप-देशाल्लब्धात्मलाभो मुक्तिमार्गं साक्षात्कृत्य उपदिशति । अन्योऽप्येवमित्यनादिः सर्वज्ञागमपरंपरा । साऽपि ग्रहोपरा-गोपदेशान्यथानुपपत्त्या सिद्धेति सिद्धं मुक्तिमार्गसाक्षात्क-रणं । स च मुक्तिमार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक एव युक्तः । तथाहि—यस्य यत्प्रकर्षतारतम्यादपकर्षतारतम्यं तस्य तत्प्रकर्षातिशयादत्यंतोच्छेदः । यथाऽग्नेः प्रकर्षातिशयाच्छीत-स्पर्शस्य । उपलभ्यते च सम्यग्दर्शनादिप्रकर्षतारतम्याद्रागा-देरपकर्षतारतम्यमिति । ननु रागादिहानितारतम्यस्य दर्श-नादस्तु तत्सिद्धिः । तत्तु रागादिहानितारतम्यं सम्यग्दर्श-नादिप्रकर्षतारतम्याद्भवतीत्येतदसिद्धं । सम्यग्दर्शनादे रागा-दिप्रतिपक्षतासिद्धेः । प्रत्युत सम्यग्दर्शनाद्यभ्यासो रागाद्यु-त्पत्तिं प्रति अनुकूलस्वभावः । तथाहि— जीवाजीवादि-पदार्थविषयं ज्ञानं सम्यग्ज्ञानं । तद्विषयं च श्रद्धानं सम्य-ग्दर्शनं । तत्पूर्वकश्च संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य बाह्या-भ्यंतरक्रियाव्युपरमश्चारित्रं । तदभ्यासप्रकर्षतारतम्याच्च रागा-दीनामुत्कर्षतारतम्यमेव युक्तं । नापकर्षतारतम्यं । यो हि

जीवादिपदार्थविषयसम्यग्ज्ञानादिकमभ्यस्यति सोऽवश्यं ताव-दादावेवाहमित्यात्मानं पश्यति। आत्मदर्शी चात्मसत्तामा-त्रनिबंधनमात्मस्नेहमुपैति। आत्मस्नेहाच्चात्मसुखेषु परितृ-प्यन् सुखेषु तत्साधनेषु च दोषाँस्तिरस्कृत्य गुणानारो-पयति। गुणदर्शी च परितुष्यन्ममेति सुखसाधनान्युपादत्ते। ततो यावदात्माभिनिवेशस्तावत्संसार एवेति। तदेवं जीवा-दिपदार्थविषयसम्यग्ज्ञानादि रागाद्युत्पत्तिं प्रति अनुकूलस्व-भावं न तत्प्रतिपक्षभूतं अतस्तत्प्रकर्षतारतम्याद्रागादेः प्रक-र्षतारतम्यमेव युक्तं नापकर्षतारतम्यं। नैरात्म्यदर्शनं तु रागादिकारणात्मदर्शनविरोधित्वाद्रागादिप्रतिपक्षस्वभावमतस्त-त्प्रकर्षतारतम्याद्रागादिहानितारतम्यं युक्तमिति चेदत्र प्रति-विधीयते। यत्तावदुक्तं— यः पश्यत्यात्मानं स्थिरादिरूपं तस्य तत्रात्मनि स्थैर्यादिगुणनिमित्तस्नेहोऽवश्यंभावी। स्नेहा-च्चात्मसुखेषु परितृप्यन् सुखसाधनेषु प्रवर्तेत इति। तद-स्माकमभीष्टमेव। किं तु अतज्ज्ञो जनो दुःखाननुषक्त-सुखसाधनमपश्यन्नात्मस्नेहात्संसारांतःपतितेषु दुःखानुषक्तसुख-साधनेषु प्रवर्तते। हिताहितविवेकज्ञस्तु तादात्विकसुखसा-धनं स्त्र्यादिकं परित्यज्यात्मस्नेहादात्यंतिकसुखसाधने मुक्ति-मार्गे प्रवर्तते। यथा पथ्यापथ्यविवेकमजानन्नातुरस्तादा-त्विकसुखसाधनं व्याधिवृद्धिनिमित्तं दध्यादिकमुपादत्ते। पथ्यापथ्यविवेकज्ञस्तु आतुरस्तादात्विकसुखसाधनं दध्या-

दिकं परित्यज्य पेयादावारोग्यसाधने प्रवर्तते। तथाच कस्यचिद्विदुषः सुभाषितं—

तदात्वसुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते ॥
हितमेवानुरुध्यंते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः ॥१॥

स्यादेतत् पथ्यापथ्ययोरारोग्यसाधनत्वेन दृष्टत्वादपथ्य-परिहारेण पथ्योपादानं युक्तं। सांसारिकसुखपरित्यागेन तु मुक्तिसाधने प्रवृत्तिरयुक्ता। मुक्तिसाधनत्वेन कस्यचिदप्य-निश्चितत्वात्। तथाहि— न तावत्प्रत्यक्षेणानुमानेन वा कस्यचिन्मुक्तिसाधनत्वमवसितं अतींद्रियत्वात्। तत्प्रतिबद्ध-लिंगाभावाच्च। नाप्यागमेन तत्प्रामाण्यस्यानिश्चितत्वात्। तदेवं प्रमाणबलादात्यंतिकसुखसाधनमपश्यन्नात्मस्नेहाद्यथा-लाभं दुःखानुषक्तसुखसाधनेष्वेव प्रवर्तते। यथा कश्चि-त्क्षुद्दुःखपीडितो विशिष्टमन्नमलभमानः क्षुद्दुःखाद्वरं मर-णमिति मन्यमानः सविषमप्यन्नं भुंक्ते। यथा वा गणि-कया सह संगतिमलभमानाः कामिनस्तिर्यग्गतानपि काम-यंते। तथाचोक्तं--

विशिष्टसुखसंगात्स्यात्तद्विरुद्धे विरागता ॥
किंचित्परित्यजेत्सौख्यं विशिष्टसुखतृष्णया ॥ १ ॥
नैरात्म्ये तु यथालाभमात्मस्नेहात्प्रवर्तते।
अलाभे मत्तकाशिन्या दृष्टा तिर्यक्षु कामितेति ॥२॥

अत्रोच्यते सांसारिकसुखसाधनेषु प्रवृत्तिः संसारहेतुः । सम्यग्ज्ञानपूर्विका च ततो व्यावृत्तिर्मुक्तिहेतुरित्यत्र तावदावयोरविवाद एव । यत्तु सम्यग्ज्ञानं निवृत्तिहेतुस्तत्किं नैरात्म्यविषयमुत जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षविषयमित्यत्र विप्रतिपत्तिः । तत्र जीवादिपदार्थविषयं सम्यग्ज्ञानं सांसारिकसुखसाधनेभ्यो व्यावृत्तेर्हेतुरिति ब्रूमः । हेयोपादेयतत्त्वंविषयः सम्यग्ज्ञानस्य । तथाहि—बंधो हेयस्तदुपाय आस्रवः । मोक्ष उपादेयस्तदुपायः संवरो निर्जरा च । तौ च बंधमोक्षौ जीवाजीवयोः सतोरेवोपपद्येते । तथाहि— असति जीवे कस्य बंधः कस्य वा बंधकारणेषु प्रवृत्तिः । तथा कस्य मुक्तिः कस्य वा मुक्त्यर्थं प्रयत्न इति । नैव कश्चिदात्मा स्थिरादिरूपोऽस्ति यस्य बंधो मुक्तिर्वा स्यात् । केवलं दुःखमात्रमिदं सहेतुकं प्रबंधेन प्रवर्तते । हेतुवैकल्याच्च कदाचिन्न भवति । ततः सास्रवचित्तसंतानस्य प्रवृत्तिः संसारो निवृत्तिर्मुक्तिः । न पुनरवस्थितस्यात्मनः संसारो मुक्तिर्वा विद्यते । तथा स्थिरादिरूपस्य जीवस्याभावेऽपि निरन्वयविनश्वरचित्तसंताने स्थैर्यादिगुणसमारोपणात्माभिनिवेशादात्मप्रेमानुगतस्य दुःखासिका भवति । यावच्च दुःखासिका तावत् दुःखितमात्मानमारोप्य न स्वस्थोऽवतिष्ठते प्राण्यभिमतस्कंधसंतानः । किं तु सुखप्राप्तये दुःखपरिहाराय च प्रवर्तमानः सास्रवचित्तसंतानं संतनोति । यत एवं व्यामो-

हादात्मानं दुःखितं समारोप्य सुखं नास्ते। तेनैव श्रुतवता तस्यैव मिथ्याध्यारोपस्य हानार्थं यत्नोऽसत्यपि मोक्तरि कस्मिँश्चिदात्माऽधिक इति। तदेवं स्थिरादिरूपस्य जीवस्याभावेऽपि बंधमोक्षयोस्तदर्थं वा प्रवृत्तेरुपपत्तेः हेयोपादेयतत्त्वाभिधायके सूत्रे न किंचिज्जीवतत्त्वाभिधानेनेति। एतत्सर्वमयुक्तं तथाहि— यत्तावदुक्तं सास्रवचित्तसंतानस्य प्रवृत्तिः संसार इत्यत्र तावदावयोरविप्रतिपत्तिः। केवलं स चित्तसंतानः सान्वयो निरन्वयो वेत्यत्र विप्रतिपत्तिः। तत्र सान्वयस्य चित्तसंतानस्य प्रवृत्तिः संसार इति वयं ब्रूमः। तत्राभिसंधिव्यापारफलानामेकाधिकरणत्वोपपत्तेः। निरन्वये तु चित्तसंताने यस्याभिसंधिर्न तस्य व्यापारो यस्य व्यापारो न तस्य फलमित्यभिसंधिव्यापारतत्फलानामेकाधिकरणत्वानुपपत्तेर्न संसारः। तथा चोक्तं—

हिनस्त्यनभिसंधातृ न हिनस्त्यभिसंधिमत्॥
बध्यते तद्द्वयोपेत चित्तं बद्धं न मुच्यते इति॥ १॥

यच्चाभिहितं निरन्वयविनश्वरचित्तक्षणेष्वेकत्वाध्यारोपेणात्माभिनिवेशादात्मप्रेमानुगतः स्कंधसंतानः सांसारिकसुखसाधनेषु प्रवर्तमानः सास्रवचित्तसंतानं संतनोतीति तदप्ययुक्तं। असत्यात्मन्येकत्वप्रत्ययस्यैवानुपपत्तेः। ननूक्तमात्मन्यसत्यप्यध्यारोपितैकत्वविषयः प्रत्ययः प्रादुर्भवतीति। सत्यमुक्तं किन्त्वयुक्तमुक्तं। स्वात्मन्यनुमानात्क्षणिकत्वं निश्चिन्वतः

समारोपितैकत्वविषयस्य विकल्पस्य निवृत्तिप्रसंगात् निश्चया-रोपमनसोर्विरोधात्। अविरोधे वा सविकल्पकप्रत्यक्षवादिनो-ऽपि सर्वात्मना प्रत्यक्षेणार्थस्य निश्चयेऽपि समारोपव्यवच्छे-दाय प्रवर्तमानं न प्रमाणांतरमनर्थकं स्यात्। निवर्तत एवैकत्वविषयो विकल्पोऽनुमानात् क्षणिकत्वं निश्चिन्वत इति चेत्तर्हि सहजस्याभिसंस्कारिकस्य च सत्त्वदर्शनस्याभावात् तदैव तन्मूलरागादिविनिवृत्तेर्मुक्तिः स्यात्। न चायमेक-त्वविषयः प्रत्ययो मानसो विकल्पः प्रतिसंख्यानेन निव-र्तयितुमशक्यत्वात्। तथाह्यनुमानबलात्क्षणिकत्वं विकल्प-यतोऽपि नैकत्वप्रत्ययो निवर्तते। शक्यंते हि कल्पनाः प्रति-संख्यानेन निवर्तयितुं न प्रत्यक्षबुद्धयः। तस्माद्यथाऽश्वं विक-ल्पयतो गोदर्शनान्न गोप्रत्ययो विकल्पस्तथा क्षणिकत्वं विक-ल्पयतो प्येकत्वस्य दर्शनान्नैकत्वप्रत्ययो विकल्प इति ज्ञातव्यं। नाप्ययं भ्रांतः। प्रत्यक्षस्याशेषास्यापि भ्रांतत्वप्रसंगात्। बाह्या-भ्यंतरेषु भावेष्वेकत्वग्राहकत्वेनैवाशेषप्रत्यक्षाणामुत्पत्तिप्रतीतेः। तथाच प्रत्यक्षस्याभ्रांतत्वविशेषणमसंभव्येव स्यात्। तस्मादे-कत्वग्राहिणः स्वसंवेदनप्रत्यक्षस्याभ्रांतस्यैकत्वमंतरेणानुपपत्तेर्नै-रात्म्यवादिनः संसारकारणेषु कथमेकत्वप्रत्ययबलात्प्रवृत्तिरिति॥ यत्तूक्तं—सास्रवचित्तसंतानस्य निवृत्तिर्मुक्तिरिति तत्पुनरयुक्त-मेव। अंत्यक्षणस्यानर्थक्रियाकारित्वेनावस्तुत्वात तज्जनकस्य चित्तक्षणस्यावस्तुत्वं ततस्तज्जनकस्य इत्येवमशेषतश्चित्तसंता-

नस्यावस्तुत्वप्रसंगात् । स्वसंतानवर्तिचित्तक्षणस्याजनकत्वेऽपि संतानांतरवर्तिनो योगिज्ञानस्य जननान्नाशेषतोऽवस्तुत्वमिति चेदेवं तर्हि रसादेरेककालस्य रूपादेरव्यभिचार्यनुमानं न स्यात् । रूपादेरंत्यक्षणवद्विजातीयकार्यजनकत्वेऽपि सजातीयकार्यानारंभसंभवादेकसामग्र्यधीनत्वेन रूपरसयोर्नियमेन कार्यद्वयारंभकत्वेऽन्यत्रापि कार्यद्वयारंभकत्वं किं न स्यात् । योगिज्ञानांत्यक्षणयोरपि समानकारणसामग्रीजन्यत्वात्कथमेकत्रानुपयोगिनश्चान्यत्रोपयोगः। चरमक्षणास्योपयोगे वा ज्ञानज्ञानांतरप्रत्यक्षवादिनोऽपि स्वविषयज्ञानजननासमर्थस्यापि ज्ञानस्यार्थे ज्ञानजननसामर्थ्यं किं न स्यात् । तथाच नार्थचिंतनमुत्सीदेत् ॥

अथ स्वसंतानवर्तिकार्यजननसामर्थ्यवद्भिन्नसंतानवर्तिकार्यजननसामर्थ्यमपि नेष्यते तर्हि सर्वथाऽर्थक्रियासामर्थ्यरहितत्वेनांत्यक्षणस्यावस्तुत्वं स्यात । तथाविधस्यापि वस्तुत्वे सर्वथाऽर्थक्रियारहितस्याक्षणिकस्यापि वस्तुत्वं किं न स्यात् । तथाच सत्त्वादयः क्षणिकत्वं न साधयेयुः अनैकांतिकत्त्वात् । तस्मान्न सास्रवचित्तसंतानस्यात्यंतोच्छेदो मुक्तिः । निरास्रवचित्तसंतत्युत्पा दलक्षणा मुक्तिरस्माकमपीष्टैव । केवलं सा चित्तसंततिः सान्वया निरन्वया वेत्यत्र विप्रतिपद्यामहे । तत्र सान्वये एव चित्तसंताने मुक्तिर्युक्ता । बद्धो हि मुच्यते नाबद्धः । न च निरन्वये चित्तसंताने बद्धस्य मुक्तिरस्ति । तत्र

न्यो बद्धोऽन्यश्च मुच्यते। संतानैक्याद्बद्धस्यैव मुक्तिस्तत्रा-पीति चेद्यदि संतानः परमार्थसँस्तदाऽऽत्मैव संतानशब्दे-नोक्तः स्यात्। अथ संवृतिसँस्तदा एकस्य परमार्थतोऽस-त्वादन्यो बद्धोऽन्यश्च मुच्यत इति स्यात्। तथाच बद्धस्य मुक्त्यर्थं प्रवृत्तिर्न स्यात्। अथात्यंतनानात्वेऽपि दृढरूप-तया क्षणानामेकत्वाध्यवसायाद्बद्धमात्मानं मोचयिष्यामीत्य-भिसंधाय प्रवर्तते। न तर्हि नैरात्म्यदर्शनं। तदभावे च कुतो मुक्तिः। अथास्ति नैरात्म्यदर्शनं शास्त्रसंस्कारजनि-तं। न तर्ह्येकत्वाध्यवसायोऽस्खलद्रूप इति कुतो बद्धस्य मुक्त्यर्थं प्रवृत्तिः स्यात्। तथाच मिथ्याध्यारोपहानार्थं यत्नः असत्यपि मोक्तरीत्येतत्प्लवते। तस्मादसति जीवे बंधमोक्षयोस्त-दर्थं वा प्रवृत्तेरनुपपत्तेर्हेयोपादेयतत्त्वं ज्ञातुमिच्छताऽवश्यं जीवसद्भावोऽपि ज्ञातव्यः। तथाचाजीवसद्भावोऽपि। तदभावे हि केन बद्धः कुतो वा मोक्षः। तथाहि पुद्गलपरिणामक-र्मशरीरसंबंधो बंधस्ततो विश्लेषो मुक्तिः। अजीवाभावे च केन संबंधः कुतो वा विश्लेष इति। ततः सूक्तं सूत्रकृ-ता—जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वमिति॥

तदेवं जीवादिपदार्थज्ञानं हेयोपादेयतत्त्वविषयं अतस्तदेव संसारकारणेभ्यो व्यावृत्तिहेतुर्न नैरात्म्यज्ञानं। हेयोपादेयतत्त्वा-ज्ञानं हि संसारकारणेषु हेयेषु प्रवृत्तिकारणं नात्मदर्शनस्नेहा-दिकं। सर्वत्र हि हेयोपादेयतत्त्वाज्ञानमेव हेयेषु प्रवृत्तिनि-

मित्तं दृष्टं । यथा रोगकारणेष्वपथ्येषु पथ्यापथ्यविभागाज्ञानं । न पुनरात्मदर्शनस्नेहादिकं क्वचिदपि हेयेषु प्रवृत्तिकारणं दृष्टं । सत्यप्यात्मस्नेहादौ पथ्यापथ्यविभागज्ञानस्य सोपायबंधमुक्तिज्ञानस्य वाऽपथ्येषु सांसारिकसुखसाधनेषु बंधकारणेषु प्रवृत्तेरनुपलंभात् । या तु विवेकिनोऽपि कस्यचित् कदाचिद्विषयेषु बंधकारणेष्वपथ्येषु च प्रवृत्तिरुपलभ्यते सा बलवत्कर्मनिमित्तेत्यवगंतव्यं । यदा तु बलवत्कर्मोदयो न विद्यते हेयोपादेयतत्त्वज्ञानं चास्ति तदा भवत्येव हेयेभ्यो व्यावृत्तिरिति ॥

नन्वात्मदर्शनादात्मस्नेहस्ततः सुखाभिलाषस्तदभिलाषादात्मसुखसाधनेषु प्रवृत्तिरिति भवत्येवात्मदर्शनात्संसारकारणेषु प्रवृत्तिरिति चेदुक्तमत्रात्मदर्शनादात्मस्नेहस्ततः सुखाभिलाषस्तस्मादात्मसुखसाधनेषु प्रवृत्तिरिति । सत्यमेतत् । किंत्वज्ञस्यात्मस्नेहस्तादात्विकसुखसाधनेषु प्रवर्तयति । विवेकिनस्त्वात्मस्नेहो हितेष्वेव प्रवर्तयतीति । तेन यदुक्तं नियमेनात्मनि स्निह्यन्नात्मीये सांसारिकसुखसाधने न विरज्यत इति तत्र यदि तावदज्ञो न विरज्यत इत्युच्यते तदा सिद्धसाधनं । अथ हेयोपादेयतत्त्वज्ञस्तदा सोपायेषु सांसारिकसुखसाधनेषूपभोगाश्रयबुद्धेर्विगमादनात्मीयत्वं मन्यमानो विरज्यत एवेत्यसिद्धिः । तथाच यदुक्तं—

उपभोगाश्रयत्वेन गृहीतेष्विन्द्रियादिषु ॥
स्वत्वधीः केन वार्येत वैराग्यं तत्र तत्कुत इति ॥ १ ॥

हेयोपादेयतत्त्वज्ञो हि आत्यंतिकसुखसाधनमुपभोगाश्रय-मात्मीयं च मन्यते । न तादात्विकसुखसाधनं । तथाहि—

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो ॥
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १ ॥
संजोगमूलं जीवेण पत्तं दुक्खपरंपरं ॥
तंहा संजोगसंबंधं सव्वं तिविहेण वोसरे ॥ २ ॥

इत्येवं भावयतो विवेकिनः संयोगसंबंधेषु दुःखहेतुषु सुख-लेशसाधनत्वसद्भावेऽप्यन्यदात्यंतिकसुखसाधनं बाह्येभ्यो निवृत्तिं पश्यतः कुतस्तेष्वात्मीयबुद्धिः । यतस्ततो निवृत्तिर्न स्यादिति । एतेन यदुक्तं भवत्येव दुःखहेतुष्वात्मीयबुद्धेर्व्यावृत्तिर्यद्येकांतेन तेषां दुःखहेतुत्वमेव स्यात् यावता पर्याणसुखहेतुत्वमप्यस्ति । तेन दुःखजनकत्वेऽप्यात्मीयस्नेहाद्येनाकारेण सुखहेतुता तावतां-शेन स्वस्योपकारकानिंद्रियादीन्मन्यमानस्तेषु नात्मीयबुद्धिं जहातीति । तन्निरस्तं वेदितव्यं । संयोगसंबंधानां दुःखहेतूनां सुखलेशसाधनत्वेऽप्यस्यात्यंतिकसुखसाधनस्य सद्भावेन निर्वि-षान्नस्य संभवेन सविषान्नस्येव त्यागसंभवात् ॥ यदप्यन्यदुक्तं— सर्वथाऽऽत्मग्रहः स्नेहमात्मनि द्रढयति आत्मस्नेहश्चात्मीयस्नेहं द्रढयतीति संबंधः सोऽप्यात्मीये महता संबंधेनारब्धमपि वैराग्यं तावत्कालमनभिमुखीभूतोप्यात्मीयस्नेहः तद्गुणलेशदर्श-नद्वारेण पुनरभिमुखीभूतः प्रतिबध्नात्यात्मीयदोषाँश्च संवृणोतीति तदप्यनेनैवापास्तं॰। हेयोपादेयविवेकिनो ह्यात्मस्नेहो न संसार-

कारणेष्वात्मीयबुद्धिं स्नेहं चोत्पादयति । अनुत्पन्नश्चात्मीये स्नेहो न वैराग्यं प्रतिबध्नातीति ॥ यच्चोक्तं— न च दुःखभावनया वैराग्यं भवति । यतो दुःखं भावयन्नप्यसौ योगी दुःखमेव प्रत्यक्षीकुर्यात् नाधिकं कर्तुं क्षमः । तच्च दुःखं पूर्वमपि प्रत्यक्षमेव तस्यासीन्न च तत्र विरागवानभूत् तथाभावनया प्रत्यक्षीकृतदुःखो नैव वैराग्यमुपयास्यतीति व्यर्थः शास्त्रे दुःखभावनोपदेश इति । तच्चयुक्तं— यथाहि मूढो निंबकीटकस्तिक्तमपि रसं मधुरमिति मन्यते तथा संसारी जीवो हेयोपादेयतत्त्वमजानन् दुःखमपि सुखमिति मन्यमानो न दुःखं प्रत्यक्षीकरोतीति । प्रत्यक्षीकुर्वन्नपि वा तादात्विकमेव दुःखं प्रत्यक्षीकुर्यात् न जातिजरामरणप्रबंधलक्षणं दुःखमिति नाज्ञो विरज्यते । हेयोपादेयतत्त्वज्ञस्तु संयोगसंबंधं सर्वमेव जातिजरामरणप्रबंधलक्षणस्य संसारदुःखस्य हेतुरिति भावयन् संयोगसंबंधेषु भावेषु साकल्येनोपेक्षालक्षणं वैराग्यमात्मसात्करोतीति यश्चैवं साकल्येन विरक्तः स न क्वचिदपि संयोगसंबंधे गुणं पश्यतीति । न पुनर्गुणदर्शनात्किंचित्क्वचिदपि अनुरज्यते । तदनेन यदुक्तं — यद्यपि क्वचिदात्मसुखसाधनत्वेनोपगते केनचिद्दोषेण तावत्कालमनुरागिणी मतिः स्खलिता तथापि तत्र नैवात्यंततयाऽसौ विरक्तो द्रष्टव्यः । यतः सर्वविषयस्नेहस्याप्रहाणात्पुनर्गुणदर्शनादिना संभवत्तदनुराग एव भवतीति— तत्प्रतिव्यूढं । अज्ञो हि तादात्विकदुःखहेतुमात्रस्यस्य तादा-

त्विकदोषस्य दर्शनाद्विरक्तस्तात्त्विकसुखहेतुत्वाख्यस्य तादा-
त्विकगुणस्य दर्शनात्पुनरनुरज्यते इति युक्तं हेयोपादेय-
तत्त्वज्ञानजातिजरामरणप्रबंधलक्षणदुःखहेतुत्वाख्यस्यात्यंतिकदो-
षस्य दर्शनाद्विरक्तो न तादात्विकगुणदर्शनात्पुनरनुरज्यते
किं त्वात्यंतिकगुणदर्शनात् । न च संयोगसंबंधे तद्दर्शन-
मस्तीति न पुनरनुरज्यत इति । यदि जातिजरामरण-
प्रबंधलक्षणस्य दुःखहेतुत्वेन संयोगसंबंधेषु भावेषु विरज्यते
तदाऽऽत्मन्यपि तथाविधदुःखहेतौ विरज्येत । नोचेदन्य-
त्रापि न विरक्तः स्यादिति । अत्रापि तावदज्ञमात्मान-
मभिप्रेत्यैवमुच्यते तदा सिद्धसाध्यता । हेयहेतावात्मनि
वैराग्याभ्युपगमात् । हेयोपादेयतत्त्वज्ञानं पुनरात्मनि तथा-
विधदुःखहेतुत्वाभावादित्यदोषः ॥

यत्पुनरुक्तं— यद्ययमात्मीयस्नेहो गुणदर्शनाद्भवेत्तदा गुणदर्श-
नविरुद्धं दोषदर्शनमात्मीयस्नेहस्य बाधकं स्यात् । यावतोपभो-
गाश्रयबुद्धिनिबंधनायाः स्वत्त्वबुद्धेरात्मीयस्नेहो भवति । न गुण-
दर्शनात् । बालपशुप्रभृतेरपि आत्मसंबंधचक्षुरादिगुणदोषपरी-
क्षाविकलस्यापि सतः स्वचक्षुरादौ स्नेहस्य भावात् । अपि-
चात्मीयचक्षुरादौ पिचटकाणकुंटविरूपादिदोषदर्शनेऽपि तस्य-
भावादन्यदीये चक्षुरादौ गुणदर्शनेऽप्यभावादात्मीयेष्वपि व्यती-
तेषु स्वदेहच्युतेषु भागावयवेषु तादृशेष्वेवात्मीयबुद्धित्यागे
सत्यभावात् । तस्माद्गुणदर्शनेऽप्यभावादात्मीयबुद्धिसत्त्वे सत्येव

भावादात्मीयबुद्धिसम्भूतः स्नेहो न गुणदर्शननिमित्त इत्यवसीयते तत एव। नाप्यात्मीयबुद्धेर्गुणदर्शनं कारणं यतो दोषदर्शनादात्मीयबुद्धिनिबंधनस्य गुणदर्शनस्य व्यावृत्तेः आत्मीयबुद्धिविगमात्तन्निबंधनस्यात्मीयस्नेहस्य व्यावृत्तिः स्यादिति तदप्ययुक्तं। न हि संयोगसंबंधेषु सौरूप्यादिगुणदर्शनात् स्नेहो जायते इत्युच्यते किं तूपभोगाश्रयत्वाख्यगुणदर्शनात्। तथाच किं न स्वसंबंधेषु भावेषु जातिजरामरणप्रबंधलक्षणसंसारदुःखहेतुत्वाख्यमात्यंतिकदोषं पश्यतो नोपभोगाश्रयत्वाख्यस्य गुणस्य दर्शनमस्तीति तन्निबंधनस्य स्नेहस्य व्यावृत्तेः कथं दोषदर्शनं स्नेहस्य बाधकं न स्यात्॥ यदुक्तं— यावदात्मस्नेहोऽविकलस्तावदात्मसुखसाधनेष्वात्मीयबुद्धिस्ततस्तेष्वात्मीयेषु स्नेहः। स चाविद्यमानानेवात्मीयेषु गुणानारोपयति। असद्गुणारोपाच्च कुतो दोषदर्शनस्यावसरोऽपीति येन तत आत्मीयस्नेहः क्षीयते इत्यत्रोक्तमस्माभिरज्ञस्य तादात्विकसुखसाधनेष्वात्मीयबुद्धिः स्नेहो वा न हेयोपादेयतत्त्वविवेकज्ञस्य। तस्य हितेष्वात्यंतिकदुःखहेतुत्वं पश्यतः सदा दोषदर्शनमेव न गुणदर्शनमस्तीति। यच्चापरमुक्तं— यो वादी विरक्ताभिमतावस्थायामात्मनो भाग्यमात्मीयमव नेच्छेत्तस्य भोक्ताऽप्यात्मा न विद्यते। भोग्याधिष्ठानत्वाद्भोक्तृत्वस्येति। अथ पुनस्तदानीं भोक्तृत्वेनाभ्युपगमादिष्टसिद्धिरिति ब्रूयात्तर्ह्यात्माऽपि तस्य

नास्ति। यदा हि कर्माणि न करोति कृतानां च कर्मणां फलं न भुंक्ते तदाऽऽत्मलक्षणतां सोऽतिक्रामति। क्रियाभोगौ हि लक्षणमात्मनस्तौ चेन्न स्तो न स आत्मेति तदप्यसमंजसं। यो हि कर्तृत्वभोक्तृत्वे लक्षणमात्मनो वर्णयति तस्य भवत्ययं दोषः। वयं तु ज्ञानदर्शन-सुवीर्यातिशयलक्षणमात्मनो वर्णयामः। तच्च मुक्तावस्था-यामप्यस्ति संसार्यवस्थायामपि। संसार्यवस्थायां तु कर्म-पटलावच्छिन्नमनभिव्यक्तमेवैतद्रूपमास्ते। ततो मुक्तावस्थायां लब्धात्मस्वभावमात्मानं वर्णयतां न नैरात्म्यमनुषज्यते इति न कश्चिद्दोषः। तदेवं संसारकारणेषु हेतुषु आत्मदर्शन-स्नेहादेः प्रवृत्तिहेतुत्वानुपपत्तेर्न तद्विरुद्धं नैरात्म्यदर्शनं ततो व्यावृत्तिहेतुः। किंतु हेयोपादेयतत्त्वज्ञानस्यैव तत्प्रवृत्ति-हेतुत्वात्तद्विरुद्धं जीवादिपदार्थज्ञानं सम्यग्ज्ञानाख्यमुक्तेन प्रका-रेणं हेयोपादेयतत्त्वविषयं सम्यग्दर्शनसहायं बाह्याभ्यंतरसंसा-रकारणव्यावृत्तिलक्षणस्य सम्यक्चारित्रस्योपात्तागामिकर्मक्षया-नुत्पत्तिहेतोर्निमित्तमिति स्थितं॥ भवतु नाम सम्यग्ज्ञानपूर्व-कादित्थंभूतचारित्रादनागतस्य कर्मणोऽनुत्पत्तिः संचितस्य तु कर्मणः कथं परिक्षयः संचितकर्माविपक्षत्वात्तस्य। चान्य-त्तद्विपक्षभूतं प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा संपश्याम.। न चाप्या-गमात्तत्प्रामाण्यस्यासिद्धेः। न च कर्मक्षय शक्यते कर्तुं ष्णायां स्थितायां पुनः कर्मणामुत्पत्तेः। तृष्णाप्रहाणार्थं-

मपि यत्नः क्रियते ततोऽयमदोष इति चेत् तर्हि व्य कर्मक्षये श्रमः। कर्मणि स्थितेऽपि तृष्णाप्रहाणे कारणं कल्यात् कर्मतृष्णाप्रभवस्य पुनर्भवप्रतिसंधानस्याभावादित्वं तदनालोचितसिद्धांतं। तथाहि— यत्तावदुक्तं संचितस्य कर्मणो न कश्चिद्विपक्षोऽस्तीत्यत्र यदि तावत्सर्वज्ञत्वप्रतिबंधकस्य कर्मणो न कश्चिद्विपक्षोऽस्तीत्युच्यते तदयुक्तं। ग्रहोपरागाद्युपदेशसिद्धसर्वज्ञत्वान्यथानुपपत्त्या तत्प्रतिबंधकस्य कर्मणः परिक्षयसिद्धेस्तद्विपक्षस्यापि सद्भावनिश्चयात्। नानुपायस्तत्परिक्षयः सर्वत्र प्रसंगात्। स च प्रतिपक्षः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक एव युक्तः। तस्यानागतकर्मानुत्पत्ताविव संचितकर्मक्षयेऽपि सामर्थ्योपपत्तेः। कारणनिरोधस्य लंघनस्येवानागतानुत्पत्तावुत्पन्ननिरोधे च सामर्थ्यदर्शनात्। लंघनस्यानागतदोषानुत्पत्तौ संचितदोषक्षयेऽपि सामर्थ्यस्य दृष्टत्वादस्तु तस्योभयत्रापि सामर्थ्यं। सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकस्य बाह्याभ्यंतरसंसारकारणक्रियाव्यावृत्तिलक्षणस्य चारित्रस्य तु संचितकर्मक्षये सामर्थ्यमपश्यंतः कथं तस्य तत्र सामर्थ्यमध्यवस्यामः। संभावनामात्रं तु स्यादिति चेन्न। पारिशेष्यात्तत्रापि तत्सामर्थ्यस्य सिद्धेः। तथाहि— सर्वज्ञत्वप्रतिबंधकस्य कर्मणः क्षयो निरूपितः प्राक्। स च क्षयो नाप्यनुपायो नाप्यन्योपायो युज्यते। अस्य च सामर्थ्यं संभाव्यते। ततः पारिशेष्यादस्य तत्रापि सामर्थ्य-

मवसीयते इति। ननु संचितस्य कर्मणः क्षये फलोपभोगः कारणमस्ति ततः कथमन्योपायः क्षयो न युज्यत इति। अत्रोच्यते— यदि संचितस्य कर्मणः फलोपभोगादेव क्षय इष्यते तदा तस्य क्षय एव न स्यात्। फलोपभोगेन कर्मक्षयस्य कर्तुमशक्यत्वात्। स्त्र्याद्युपभोगादिभ्योऽवश्यंभाविभ्योऽपूर्वकर्मप्रादुर्भावात्। नापि तदा रागादिप्रतिपक्षभावना संभवति। तत्संभवे स्त्र्याद्युपभोग एव न स्यात्। कायक्लेशेन पूर्वकृतस्य कर्मणः फलोपभोगेन प्रक्षयादनागतस्य प्रतिपक्षभावनातोऽनुत्पत्तेरदोष इति चेन्न। फलवैचित्र्यदर्शनात्कर्मणामनेकरूपफलदानसामर्थ्यमनुमीयते। तेषां च नानाफलदानसमर्थानां कर्मणामेकरूपात्कायपरितापलक्षणात्फलात्फलदानेन कर्मणां क्षयो युज्यते। तपःशक्त्या संकीर्णशक्तीनि कर्माणि क्रियंते येनैकरूपेणैव फलेन क्षयं व्रजंति। ता एव कर्मशक्तयो विचित्रास्तपःशक्त्या स्वयं क्षयमुपनीयंत इति चेत् यदि तत्तपःक्लेश एव कर्मफलमित्यस्मान्न कर्मशक्तेः संकरः संक्षयो वा। अथ क्लेशादन्यत्त्रापि शक्तिसंकरपक्षे संकीर्णशक्तीनां कर्मणामेकदिवसोपवासजनितक्लेशमात्रेणैव फलोपभोगेन प्रक्षयान्महोपवासारंभस्य वैयर्थ्यं। फलोपभोगेनैव कर्मणां क्षय इत्येकांतश्च न स्यात्। कायक्लेशतपोभ्यां प्रक्षयाभ्युपगमात्। शक्तिसंक्षयपक्षे त्वक्लेशरूपात्तपस एव सकलकर्मणः परिक्षयात्कायक्लेशवैयर्थ्यं। फलोपभो-

गात्तत्क्षय इत्येतत्तु व्याहन्यते । भवतामप्यक्लेशरूपात्तपस एव कर्मक्षयाभ्युपगमात् कायक्लेशवैयर्थ्यं स्यात् इति चेन्नास्माभिर्बाह्यं क्लेशरूपं तपः कर्मक्षयार्थमिष्यते किं त्वांतरस्याक्लेशरूपस्य तपसः कर्मक्षयहेतोः परिबृंहणार्थं । तदर्थं च क्रियमाणं बाह्यं तपः किंचित्कर्मनिर्जरणार्थमपि स्यात् । तथाचोक्तं—

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरस्त्व- ।
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थमिति ॥ १ ॥

अस्माकमप्येवं स्यादिति चेदस्तु । किं तु फलोपभोगादेव संचितस्य कर्मणः क्षय इत्यभ्युपगमो विरुध्यते । दीक्षातस्तर्हि कर्मक्षयः स्यात् । दृश्यते हि मंत्राणां बीजादिशक्त्यपहरणादौ सामर्थ्यं एव कर्मक्षयेऽपि सामर्थ्यं स्यात् इति चेत्कथं प्रतिनियतसामर्थ्यानां मंत्राणामेकत्र सामर्थ्यदर्शनाद्यत्र सामर्थ्यं न दृष्टं तत्रापि सामर्थ्यं कल्प्यते । यत्र यस्य केनचित्प्रकारेण सामर्थ्यं दृष्टं तत्रैव तस्य तेन प्रकारेण प्रकारांतरेण वा सामर्थ्यं कल्पयितुं युक्तं । यथा चास्माभिर्यथोक्तस्य चारित्रस्यानागतकर्मानुत्पत्तौ सामर्थ्यदर्शनात्संचितकर्मक्षयेऽपि सामर्थ्यं कल्पितं नैवमनागतकर्मानुत्पत्तौ दीक्षायाः सामर्थ्यं दृश्यते । दीक्षितस्यापि कर्मकारणानां रागादीनामुत्पत्तिदर्शनात् । यदि पुनर्बीजादिशक्त्यपहरणादौ मंत्राणां सामर्थ्यदर्शनात्कर्मक्षयेऽपि सामर्थ्यं कल्प्यते तर्हि तैलाभ्यंगाग्निदाहादेर्निर्बीजकरणे विषघ्नौषधद्रव्यस्य च विषशक्तेरपहरणेऽर्थस्य दृष्टत्वात्संचितक-

मेक्षयेऽपि तेषां सामर्थ्यं किं न कल्प्यं विशेषाभावात्। यदि च दीक्षातः कर्मक्षयोऽवश्यंभावी तदा दीक्षानंतरमेव कर्मकार्यस्य व्याध्यादेरनुपलंभः स्यात्। भवति चोपलब्धिः। तस्मात्कर्मकार्यस्य व्याध्यादेरुपलंभादक्षीणं दीक्षितस्य कर्मेत्यवसीयते। तदेवं संचितकर्मक्षयेऽन्यस्योपायस्याभावात्पारिशेष्याद्यथोक्तस्य चारित्रस्यैव तत्र सामर्थ्यमवसीयते। नन्वस्तु नाम श्रूयमाणानां संचितकर्मक्षये दीक्षादीनामसामर्थ्यं तथापि पारिशेष्यात्सम्यग्दर्शनादीनामुपायत्वसिद्धिः। अश्रूयमाणस्यानुपायत्वसिद्धेरिति चेत्तदश्रूयमाणमुपायांतरं सम्यग्दर्शनादि विलक्षणं वा? विलक्षणं चेत्तस्यानागतकर्मानुत्पत्तावपि सामर्थ्यमनुपपद्यमानं कथं संचितकर्मक्षये संभाव्येत। अविलक्षणं चेत्तर्ह्येतदेव तदिति कथं न पारिशेष्याद्रत्नत्रयोपायस्योपायत्वसिद्धिः॥

यच्चोक्तं– न च कर्मक्षयः शक्यते कर्तुं तृष्णायां स्थितायां पुनः कर्मणामुत्पत्तेरिति। तदप्ययुक्तं यथोक्तचारित्रादेव तृष्णाप्रहाणात्पुनः कर्मणामनुत्पत्तेरिति॥ यत्पुनरुक्तं व्यर्थः कर्मक्षये श्रमः कर्मणि स्थितेऽपि तृष्णाप्रहाणे कारणवैकल्यात् कर्मतृष्णाप्रभवस्य पुनर्भवप्रतिसंधानस्याभावात् इति। अत्रापि यदि तावत्सर्वज्ञत्वाप्रतिबंधकर्मणः क्षये व्यर्थः श्रम इत्युच्यते तदाऽपि सिद्धसाधनं। तत्प्रतिबंधकस्य तु कर्मणः क्षये श्रमो व्यर्थः। तदपरिक्षये सर्वज्ञत्वायोगात्। न च

सर्वज्ञो नास्ति ग्रहोपरागाद्युपदेशस्यान्यथाऽनुपपत्तेः । तस्मात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक एव मोक्षमार्गः सिद्धः । तथाविधमोक्षमार्गसाक्षात्करणं च ग्रहोपरागाद्युपदेष्टुः सिद्धं । यश्चेत्थंभूतस्य मार्गस्य द्रष्टा सोऽर्हन्नेवेति सर्वज्ञविशेषस्यैवास्माद्धेतोः सिद्धिः ॥ यदुक्तं– यदीयागमसत्यत्वसिद्धौ सर्वज्ञतोच्यते । न सा सर्वज्ञसामान्यसिद्धिमात्रेण लभ्यते इत्यादि । तन्निरस्तं वेदितव्यं ॥

यच्चान्यैरुच्यते— आस्तां तावत्सर्वज्ञशून्यः कालः । तत्सहितेऽपि काले कथं सर्वज्ञोऽयमिति प्रतीयते । न तावत्प्रत्यक्षेण– चेतोधर्मत्वेन सर्वज्ञत्वस्यातीन्द्रियत्वात् । नाप्यनुमानेन देवागमादिहेतूनां सर्वज्ञत्वमंतरेणानुपपत्तेरभावात् । नापि शिष्यैर्ज्ञातानर्थांस्तथैव प्रतिपादनद्वारेण संवादयन् सर्वज्ञ इति प्रतीयते । तथापि सर्वशिष्यज्ञानार्थविषयमेव तस्य परिज्ञानं सिध्येत् न सर्वलोकज्ञानार्थविषयं । कालत्रयत्रिलोकस्थपुरुषैः समागमाभावेन तज्ज्ञार्थसंवादनासंभवात् । नापि कश्चिदेकः शिष्योऽशेषविदस्ति यतस्तज्ज्ञानज्ञेयसमस्तवस्तुसंवादनात्सर्वज्ञ इति निश्चीयते । ततः सर्वज्ञेनैव सर्वज्ञः प्रत्यक्षेण स्वज्ञातमर्थं सर्वं संवादयन्ननुमानेन वा प्रतीयेत । सोऽप्यन्येन सर्वज्ञेन सोऽप्यन्येनेत्येवमेकसर्वज्ञसिद्धौ बहवस्तव सर्वज्ञाः कल्पनीया भवेयुरिति । यतो य एवैकोऽप्यसर्वज्ञः सर्वज्ञमप्रतिपद्यमानो न तद्वचनं प्रामाण्येन निश्चिनुयात् ततः

कथं तैस्तदर्थोऽनुष्ठीयेत । परस्य चोपदिश्येतेति शिष्याचार्यपरंपरयेदानीं यावदागमस्यागम एव न स्यात् । तथाच तन्मूलमनुष्ठानं न कस्यचिदपि स्यादिति सन्नपि सर्वज्ञोऽसत्कल्प एव स्यादनुपयोगात् ।

तथाचोक्तं—

सर्वज्ञा बहवः कल्प्याश्चैकसर्वज्ञासिद्धये ॥
य एवैकोऽप्यसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न कल्पयेत् ॥ १ ॥

सर्वज्ञोऽयमिति ह्येवं तत्कालैरपि बोद्धृभिः ॥
तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानशून्यैर्ज्ञातुं न शक्यते ॥ २ ॥

सर्वशिष्यैरपि ज्ञातानर्थान् संवादयन्नपि ॥
न सर्वज्ञो भवेदन्यलोकज्ञातार्थवर्जनात् ॥ ३ ॥

न च सर्वनरज्ञातज्ञेयसंवादसंभवः ॥
कालत्रयत्रिलोकस्थैर्नरैर्न च समागमः ॥ ४ ॥

सर्वज्ञो नावबुद्धश्च येनैव स्यान्न तं प्रति ॥
तद्वाक्यानां प्रमाणत्वं मूलाज्ञानोऽन्यवाक्यवत् ॥ ५ ॥

इति । तदप्यनेनैव निरस्तमिति वेदितव्यं । इदानींतनानामिव सर्वज्ञसमानकालीनानामप्यस्मादेव हेतोः सर्वज्ञसद्भावप्रतीतिसिद्धेः । नायमित्त्थंभूतो नष्टमुष्ट्यादेर्द्रव्याणामक्षराणां च संयोगवियोगशक्तेरायुःप्रमाणस्य चोपदेशो ज्योतिःशास्त्रे विद्यायुर्वेदाद्यनभिज्ञेषु संभवति ॥ तेषां हि तदुपदेशाद्विल-

क्षण एव तत्साक्षात्कारिणस्तदुपदेशस्तत्कालीनैरुपलब्धुं शक्यः। तथाहि ज्योतिःशास्त्रवित् दिग्भागहोरादिकं तल्लिंगं पर्यालोचयन् शनैरत्याभ्यासेऽपि नष्टमुष्ट्यादिकमुपदिशति। कदाचिद्वितथमप्यभिदध्यात्। आयुर्वेदादिविच्च द्रव्यादिशक्तिमायुर्वेदं पर्यालोचयन्नायुःप्रमाणमरिष्टं पर्यालोचयन्नुपदिशति। आतुरं दृष्ट्वा पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा निदानप्रागुपलक्षणोपशयादीनि पर्यालोच्येवात्यंताभ्यासेऽपि व्याधिस्वरूपमुपदिशति। सर्वज्ञस्तु दिग्भागहोराप्रश्नादिलिंगमपर्यालोच्यैव नष्टमुष्ट्यादिकमायुःप्रमाणं चारिष्टोत्पत्तेः प्रागेव द्रुतमवितथमुपदिशति। आतुरमदृष्ट्वाऽपृष्ट्वाऽस्पृष्ट्वा च निदानप्रागुपलक्षणोपशयादीनि चापर्यालोच्यैव व्याधिस्वरूपमुपदिशति। द्रव्याणामक्षराणां च संयोगवियोगशक्तिमनन्तां प्रश्नादिभिर्ज्ञातुमशक्यमायुर्वेदादिकमपर्यालोच्य द्रुतमवितथमभिधत्ते इति। एवं तावत्—

सर्वज्ञोऽयमिति ह्येवं तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ॥
तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैरपि गम्यते ॥ १ ॥

सर्वज्ञो नायमित्येतत्पुनर्ज्ञातुं न शक्यते ॥
नास्तिकैः परचेतांसि साक्षात्कर्तुमशक्तकैः ॥ २ ॥

सर्वत्र सर्वदा कश्चित्सर्वज्ञो नेत्यपि स्फुटं ॥
सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितैः कथ्यते कथं ॥ ३ ॥

सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितैरप्यनुमानादुपमानादर्थापत्तेः शब्दा-
दभावप्रमाणाद्वा सर्वत्र सर्वदा सर्वज्ञाभावः प्रतीयत इत्येत-
दप्ययुक्तं। तथाहि शब्दस्य तावदेवंविषये प्रामाण्यमेव
नास्ति कार्यार्थे तस्य प्रामाण्यात्। अनुमानादेरपि सर्वज्ञा-
भावप्रतिपत्तिर्नासर्वज्ञस्य कल्प्यते। तथाहि— न तावद-
नुमानादसर्वज्ञस्य सर्वज्ञाभावप्रतीतिर्युक्ता। अनुमानं हि ज्ञात-
संबंधस्यैकदेशदर्शनादेकदेशांतरेऽसन्निकृष्टेऽर्थे बुद्धिर्न चासर्व-
ज्ञत्वे। न कस्यचिद्धेतोः सहभावदर्शनमात्राद्विपक्षव्यतिरे-
कनिश्चयमंतरेण संबंधः प्रतिपत्तुं शक्यते। नापि वागादि-
मान् न कश्चित्सर्वज्ञो दृष्ट इत्यनुपलंभाद्व्यतिरेकनिश्चयद्वारेण
संबंधः प्रतीयत इति युक्तं। स्वसंबंधिनोऽनुपलंभस्यानैकां-
तिकत्वात्। सर्वसंबंधिनोऽसंभवात्। सर्वज्ञाभावस्यासिद्धौ
सर्वज्ञस्य वागादिमत्त्वेन स्वयमुपलब्धेः सर्वज्ञांतरेणोपल-
ब्धेश्च संभवात। सर्वज्ञस्य कस्याचिदप्यभावात्सर्वसंबंधिनोऽ-
नुपलंभस्य संभवः स्यादिति चेत्कुतः प्रमाणात्सर्वज्ञस्याभाव-
गतिः। यदि प्रमाणांतरात्तदेवोच्यतां किमनुमानेन? अनु-
मानाच्चेदनुमानमेवाज्ञातसंबंधस्येत्यादि पुनरपि तदेवावर्तत इति
चक्रकप्रसंगः। तस्मादसंभव एव सर्वसंबंधिनोऽनुपलंभस्य।
संभवे वा तस्य सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितेन ज्ञातुमशक्यत्वाद-
सिद्धिः। तस्मात्सर्वात्मज्ञानवत्सर्वसंबंधिनोऽनुपलंभस्य सिद्धि-
र्युक्ता इति तस्यैव स्वसंबंधिनः सर्वसंबंधिनो वाऽनुपलं-

भाव्यतिरेकसिद्धेरनुमानात्सर्वज्ञाभावगतिरिति स्थितं । न सर्वज्ञानुमानेष्वेष दोषः समानः अनुमानांतरेष्वनुपलंभ-व्यतिरेकेण व्यतिरेकप्रसाधकस्य प्रमाणांतरस्य भावात्। नाप्य-र्थापत्त्या सर्वज्ञाभावस्यासर्वज्ञेन प्रतीतिर्युक्तिमती । यतः-

प्रमाणषट्कविज्ञातो यत्रार्थोऽनन्यथा भवन् ॥
अदृष्टं कल्पयेदर्थं सार्थापत्तिरुदाहृता ॥ १ ॥

सा चेत्थंभूतार्थापत्तिः प्रमाणषट्कविज्ञातस्यार्थस्यानन्य-थाभवने सिद्धे सति व्याप्रियेतासिद्धे वा ? यद्यसिद्धे तदा स येन विनाऽपि भवति तमपि किं न कल्पयेत् ? येन विना स न भवति तमपि कल्पयेत् । सतोऽप्यनन्यथा-भवनस्याविज्ञातस्याविद्यमानाविशेषात्प्रमाणषट्कविज्ञातस्यार्थ-स्यानन्यथाभवनमसिद्धमपि स्वशक्त्यैवादृष्टं कल्पयतीति चेर्त्तर्हि लिंगस्याप्यविनाभावनियमोऽसिद्धः स्वशक्त्यैव किं न लिंगिनं गमयेत् । एवं सर्वमेवानुमानमर्थापत्तिरेव स्यात् । तथाच प्रमाणषट्कसंख्या निवर्तेत इति । अथ सिद्धेऽ-नन्यथाभवने सा व्याप्रियते अत्रापि प्रमाणषट्कविज्ञातस्या-साध्यात्कुतो व्यतिरेकनिश्चयो यतोऽनन्यथाभवनस्य सिद्धिः स्यात् । अनुपलब्धेश्चेन्न । स्वसंबंधिनोऽनुपलंभस्यानैकांति-कत्वात्सर्वसंबंधिनोऽसंभवात् । सर्वज्ञाभावस्यासिद्धौ सर्वज्ञस्य वागादिमत्त्वेन स्वयमुपलब्धेः सर्वज्ञांतरेणोपलब्धेश्च संभ-वात् । सर्वज्ञस्य कस्यचिदप्यभावात्सर्वज्ञसंबंधिनोऽनुपलंभस्य

संभवः स्यादिति चेत् स्यादेतद्यदि कुतश्चित्सर्वज्ञाभावः सिद्धः स्यात् । प्रमाणांतरात्तदभावसिद्धिश्चेत्तदेवोच्यतां किमर्थापत्त्या । अर्थापत्तेश्चेत्सा प्रमाणषट्कविज्ञातस्यार्थस्यानन्यथाभवने सिद्धे सति व्याप्रियेतासिद्धे सतीत्यादि पुनरपि तदेवावर्तत इति चक्रकप्रसंगः । तस्मादसंभव एव सर्वसंबंधिनोऽनुपलंभस्य । संभवे वा तस्य सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितेन प्रतिपत्तुमशक्यत्वादसिद्धिः । तस्मात्सर्वात्मज्ञानविज्ञानवत एव सर्वसंबंधिनोऽनुपलंभस्य सिद्धिर्युक्तेति । तस्यैव स्वसंबंधिनः सर्वसंबंधिनो वाऽनुपलंभादसाध्याद्व्यतिरेकासिध्याऽनन्यथाभवनसिद्धेरर्थापत्त्या सर्वज्ञाभावगतिरिति युक्तं । नाप्युपमानादसर्वज्ञः सर्वज्ञाभावमवैति । उपमानं हि सर्वान् पुरुषानिदानींतनानसर्वज्ञानुपलभ्य तत्सादृश्योपमानेन शेषाणामप्यसर्वज्ञत्वसाधनं । न चासर्वज्ञो ऽसर्वज्ञत्वेनेदानींतनान् सर्वज्ञानुपमानभूतानुपमेयभूतांश्च शेषानशेषान् साक्षात्कर्तुं क्षमः येन तत्रोपमानं प्रवर्तेत । उपमानं हि उपमानोपमेययोरध्यक्षत्वे सादृश्यालंबनमुदेति नान्यथेति सर्वज्ञ एवोपमानात् सर्वज्ञाभावमवगच्छतीत्यभ्युपगंतव्यं ॥ तथा अभावप्रमाणादपि यथा च सर्वज्ञ एवाभावप्रमाणात्सर्वज्ञाभावं प्रतिपत्तुं समर्थस्तथा प्रागेव निवेदितं । तदेवमसर्वज्ञेनापि सर्वज्ञोऽयमिति प्रतिपत्तु शक्यते सर्वज्ञाभावस्त्वसर्वज्ञेन ज्ञातुं न केनचित्प्रमाणेन पार्यत इति स्थितं ।

अथवा माभूत्सर्वज्ञोऽयमिति प्रतिपत्तिस्तथापि न कश्चिद्दोषः । न सर्वज्ञोऽयमित्यप्रतिपद्यमानः कथं तद्वचस प्रामाण्यमवगच्छति कथं वा तदुक्तमनुतिष्ठतीति चेन्न ब्रूमः सर्वज्ञत्वावगमपूर्वकं तदुपदेशस्य ग्रहोपरागमुक्तिमार्गादिविषयस्य प्रामाण्यनिश्चयं येनायं दोषः स्यात् । किं तु संवादबलात्तथा निश्चितप्रामाण्याच्च तदुपदेशालिंगभूताद्योऽस्य प्रणेता स सर्वज्ञ इत्यवगमः । तदनेन यदुक्तं—

सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ॥
कथं तदुभयं सिध्येत्सिद्धमूलांतराहते ॥ १ ॥

इति तन्निरस्तं । नापि कारकपक्षेऽन्योन्याश्रयत्वं बीजांकुरवदनादित्वात्सर्वज्ञागमप्रवाहस्य ॥ तदनेनापि यदुक्तं—

नर्ते स आगमात्सिध्येन्न च तेनागमो विना ॥
दृष्टांतोऽपि न तस्यान्यो नृषु कश्चित्प्रतीयत इति ॥१॥

तदप्यपास्तं । तस्मात्

यैरुक्तं केवलज्ञानमिंद्रियाद्यनपेक्षिणः ॥
सूक्ष्मातीतादिविषयं सूक्तं जीवस्य तैरदः ॥ १ ॥

इति सर्वज्ञसिद्धिः कृतिर्भट्टानंतकीर्तेः । मंगलमस्तु भव्यजनाय । श्रीत्रैविद्यसमंतभद्रगुरवे नमः ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः